नवभारत टाइम्स प्रकाशन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जून, १९९०, मूल्य : दस रुपये

सारिका

✦ इस अंक में...
रामेश्वर शुक्ल अंचल, शैलेश मटियानी,
मुज्तबा हुसैन, से. रा. यात्री, अभिमन्यु अनत,
नफीस आफरीदी, रामधारी सिंह दिवाकर,
तरसेम गुजराल, सूरज प्रकाश और
मैत्रेयी पुष्पा सहित चालीस
अन्य रचनाकारों की हिस्सेदारी .

● आबिद सुरती का उपन्यासः

आकाश के उस पार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

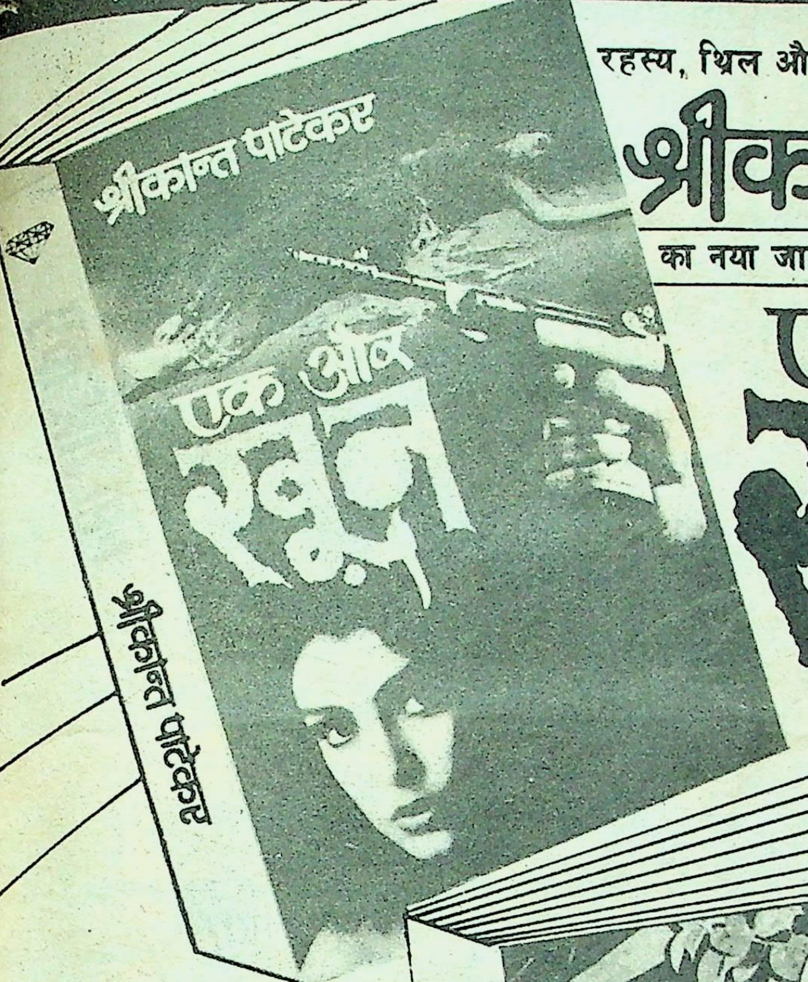

रहस्य, थ्रिल और सस्पैंस से भरपूर

जिनकी कलम का जादू आपका मन मोह चुका है।

श्रीकान्त पाटेकर

का नया जासूसी शाहकार

एक और खून

समीर के अन्य उपन्यास

टूटा घरौदा	10.00
शक	10.00
परख	10.00
कोशिश	10.00
धन दौलत	10.00
वचन की लाज	10.00
कलयुग की सीता	10.00
दूसरा गौतम	10.00
अंतिम सच	10.00
कोहरा	10.00
अधूरा सुहाग	10.00
बंदिश	10.00
तीन सहेलियां	10.00
शपथ	6.00
एक ही रास्ता	6.00
दूर के राही	6.00
प्यासी सीप	5.00
सुख दुख	6.00
आग	6.00
कलयुग का भीष्म	6.00
सुहाग की लाज	6.00
अधूरी पत्नी	6.00
छोटी बहू	6.00
पति परमेश्वर	6.00

महिलाओं की पहली पसंद
भावनाओं के कुशल चितेरे

समीर का नया उपन्यास

टूटा घरौंदा

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली

अप्रैल :1990

सर्वशुद्ध हल

1. अमृत लाल नागर, प्रदीप पंत, हरिशंकर परसाई.
2. पृष्ठ 10 पर 'सारिका' द्वारा जारी अपील.
3. कथा शिल्पी अमृत लाल नागर स्मृति शेष हो गये थे.
4. रमेश चंद्र शाह के 'किस्सा गुलाम'.
5. I शिवजी श्रीवास्तव II महावीर अग्रवाल III अज्ञेय IV रमेश चंद्र शाह V रानी राम सहाय VI धर्मानंद भंटु
6. 'वह भी'
7. I कोंपल कथा II राधेजी पर व्यंग्य नहीं लिखूंगा III यह पात्र इस अंक में नहीं है. IV वह भी V तलाश

हजारों प्रतियोगियों में इस बार सर्वशुद्ध हल कोई भी प्रतियोगी नहीं भेज सका है. एक अशुद्धि के साथ हल भेजने वाले एक मात्र प्रतियोगी को पुरस्कृत किया जा रहा है. यह प्रतियोगी हैं.

प्रदीप नारायण बालिया
अंतर राज्य पुलिस बेतार केंद्र,
यूनिट-8, नया पल्ली,
भुवनेश्वर (उड़ीसा)
पिन-751012

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िए और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए!

'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों से अनुरोध है कि वे पूर्तियां इसी पृष्ठ पर भेजें. इस बार के प्रश्न मई, 1990 के अंक पर आधारित हैं. पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि 25 जून, 1990 है. वहां के पाठक उल्लेख सहित पूर्तियां देर से भी भेज सकते हैं.

कथा पहेली

जून, 1990

निर्देश के अनुसार खाली स्थान भरिए

1. न्यायाधीश को निरुत्तर कर देने वाला कथा प्रसंग................ की...................... नामक रचना में आया है.
2. पृथ्वी थियेटर्स में लंबे समय तक जुड़े रहे रचनाकार की एक रचना इस अंक में प्रकाशित हुई है. यह रचना है.................. और रचनाकार हैं...................
3. क्रमवार प्रस्तुति न होने के कारण.......................... नामक रचना में कथा एवं चित्रों का तालमेल गड़बड़ गया है.
4. 'जैसे को तैसा' कहावत.......................... नामक रचना पर सटीक बैठती है.
5. सरकारी अधिकारियों के भ्रष्ट और गलीज व्यवहार का सही उदाहरण रचनाकार.................... ने अपनी रचना........................में बखूबी सामने रखा है.
6. उपन्यास.......................... के कथांश में एक स्त्री के दो स्वामी न हो सकने का तार्किक विश्लेषण किया गया है.
7. "प्रेमचंद की कहानियों के कथात्मक स्थैर्य (नैरेटिव काम) के अंतर्गत जो गति है, जो सहज योग क्षेम की अनुभूति है और जो सर्वाश्रित संवेदनीयता है, वह उनके कथानकों से विकसित होती है, विचार के बहिरंग ढांचे से नहीं." यह विचार.. के हैं.
8. शिल्प की दृष्टि से इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी.................... है.

नाम ....
पता ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

जनरुचि के 50 लघु विश्वकोशों की एक अनूठी संग्रहणीय शृंखला

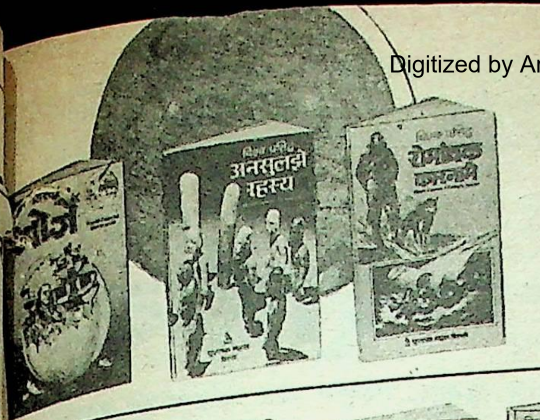

मूल्य: 18/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें मंगाने पर डाकखर्च माफ

■ प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री ■ प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित ■ सरस कथा शैली ■ फोटोटाइप सैट ■ बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई ■ बहुरंगी आवरण ■ वाजिब दाम

नये प्रकाशन

इस शृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करते हुए उसके ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार है।

उदाहरणार्थ **रोमांचक कारनामे** में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो **खोजें** में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। **अनसुलझे रहस्य** में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो **खेल और खिलाड़ी, 101 व्यक्तित्व** व वैज्ञानिक जीवनी-प्रधान पुस्तकें हैं। **विनाश-लीलाएं** व **दुर्घटनाएं** में मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है तो **गुप्तचर संस्थाएं, जासूस** व **जासूसी कांड** में जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं। **सभ्यताएं, मिथक एवं पुराण कथाएं** और **प्रेरक-प्रसंग** किसी भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ हैं तो **हत्यारे** में रक्त-पिपासु हैवानों की कथाएं हैं। **रोमांस-कथाएं** तथा **हस्तियों के प्रेम-प्रसंग** में लैला-मजनूं से लेकर हिटलर, कैनेडी, चार्ली चैपलिन, नेहरू जैसे व्यक्तियों के दिलों की धड़कनें हैं तो **अनमोल खजाने** में रहस्य और रोमांच से भरे खजाने हैं। **दुस्साहसिक खोज-यात्राएं** में कोलंबस, मार्को पोलो जैसे खोज-यात्रियों की गौरव-गाथाएं हैं तो **जन-क्रांतियां** में सभी महत्त्वपूर्ण क्रांतियों का ब्यौरा है। **भूत-प्रेत घटनाएं, अलौकिक रहस्य** तथा **मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे** पढ़कर आपकी रातों की नींद उड़ जायेगी। **कुख्यात महिलाएं** व **विलासी सुंदरियां** में मर्लिन मुनरो, जैक्लीन कैनेडी जैसी औरतों का निजी जीवन है तो **सनकी तानाशाह, राजनैतिक हत्याएं, तख्ता-पलट घटनाएं** व **आतंकवादी संगठन** में आपको विश्व-कूटनीति का असली चेहरा दिखाई देगा।

संक्षेप में कहें तो प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक सचित्र **मिनि एनसाइक्लोपीडिया** है।

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांगें। वी पी पी. द्वारा मंगाने के पते:–

पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली-110006

शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

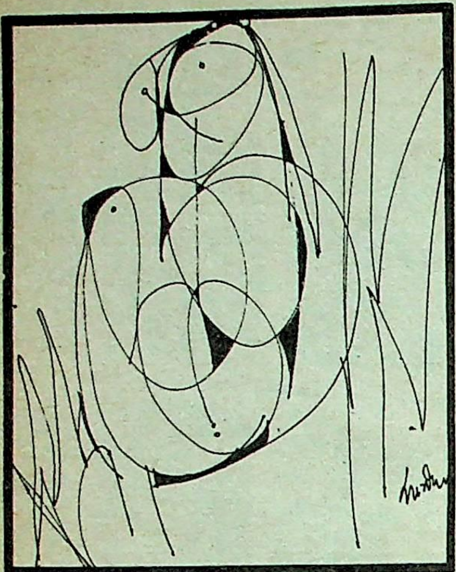

सीमांत उसके जीवन में एक निश्चित बदलाव लेकर आया है. उसने अपनी मित्र वंदना को सीमांत के बारे में बताया था. यह भी बताया था कि सीमांत के आने के बाद से वह हंस सकी है. वंदना उसके खिले चेहरे को देखकर कह रही थी, "तुम ऐसे ही हंसती रहा करो, कितनी अच्छी लगती हो हंसते हुए... मैं तुम्हारे सीमांत को देखना चाहती हूं."

कौन है यह सीमांत...? आखिर उसका कथा नायिका से रिश्ता क्या है?

कुसुम चतुर्वेदी की संपूर्ण उपन्यासिका

पड़ाव

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान

जुलाई, 1990

'वे मुख्यमंत्री की पार्टी के लोग थे और प्रचार के लिए उतरे थे कि जनता मुख्यमंत्री के साथ है...' क्या जनता को भी यह पता था कि वह मुख्यमंत्री के साथ है...?

वर्तमान जीवन की सच्चाईयों को बेनकाब करती गोविंद मिश्र, शशिप्रभा शास्त्री, मानिक बंद्योपाध्याय, गौरीशंकर कपूर, सुदर्शन नारंग, प्रदीप पंत, प्रबोध जोशी, केवल सूद और दानिश की कहानियां.

"...मुझे यह मानने में बिल्कुल हिचक नहीं कि मैं अब तक यह नहीं जान सका कि कहानी क्या होती है, और अच्छी कहानी किसे कहेंगे. कभी-कभी कल्पना किया करता हूं कि कहानी को एक चीख की भांति होना चाहिए, अंधेरे में उठती कोई चीख."

लेखन के इस मोड़ पर आकर कथाकार गोविंद मिश्र अपने आलेख में पड़ताल कर रहे हैं उन सूत्रों की जो रचना का प्रकाश देते हैं... 'आधे पहुंचकर...'

और साथ में

आपकी बात, कथा पहेली, कृतियां, कैसे-कैसे लोग, आलोचना की अंतर्यात्रा, फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, हलचल, लघुकथाएं, कविता 'पुरुषोत्तम' और 'लाल पसीना'.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान
वर्ष : 30, अंक : 457, जून, 1990

प्रकाशक:
रमेश चंद्र

संपादक:
अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक:
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

सीनियर मैनेजर विज्ञापन:
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिस्पांस:
डा. राजेंद्रपाल जैन

सीनियर ऑफीसर रिस्पांस:
शबनम अग्रवाल

रिस्पांस सहयोगी:
अशोक माथुर

प्रोडक्शन:
हरेंद्र सिंह नेगी
उदेश कुमार

आवरण एवं अंक सज्जा:
किनमिन

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था:
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय:
डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग, बंबई-400001
फ्रेजर रोड, पटना
अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर
33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1
13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट, कलकत्ता-700062
'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6 डी नगामवक्कम हाई रोड, मद्रास-600034
88 महात्मागांधी रोड, बंगलूर
407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002

उपन्यास

12.
आकाश के उस पार
आबिद सुरती

"शराब की आदत तो मैंने छोड़ दी. लेकिन नोटों को भुलाना मुश्किल था. डॉक्टर को छोड़ने के बाद मैं एक होटल में रूम लेकर अकेली ही रहने लगी. पिंकी मेरे पेट में पल रही थी. और उसके लिए मुझे नोटों की जरूरत थी. आज तक वह जरूरत पूरी नहीं हुई. जब तक पिंकी शादी करके किसी अच्छे परिवार में नहीं चली जाती. मुझे ऐसे ही ··· जीना होगा."

नील खामोश हो गयी है. उसकी आंखों में खालीपन उतर आया है. उसके सामने वीरानी छलक उठी है. उसके चेहरे पर उदासी फैल गयी है.

आवरण पारदर्शी:
ओ.पी. कपूर

कथा-रचनाएं

32. जिज्जी:
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
38. बड़े होते लोग:
रामधारी सिंह दिवाकर
43. किराये का इंद्रधनुष:
सूरज प्रकाश
48. टाट का कफन:
नफीस आफरीदी
53. बेटी:
मैत्रेयी पुष्पा
56. टेलीविजन:
मुज्तबा हुसैन
58. जलता हुआ घर:
तरसेम गुजराल
71. राहत की एक सांस:
कुमार अंबुज

धारीवाही आयोजन

62. लाल पसीना:
अभिमन्यु अनत
68. पुरुषोत्तम:
भगवती शरण मिश्र

कविता

38. अंतःसलिला
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

विशिष्ट आयोजन

66. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ:
गोपाल चतुर्वेदी

75. कैसे-कैसे लोग:
से.रा. यात्री
78. आलोचना की पुनर्यात्रा:
सुधीश पचौरी
80. हिंदी कहानी के दो तोता मास्टर:
शैलेश मटियानी

स्थायी स्तंभ

4. कथापहेली
8. आपकी बात
84. कृतियां
88. हलचल

कापीराइट ©1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्मस्पर्शी कथाएं

सारिका का अप्रैल अंक पढ़ने का अवसर मिला. 'रंग बिरंगे लोग' में वास्तव में सभी पात्र अपने-अपने रंग में रंगे हुए लगे. विशेष आकर्षक रही—द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की 'दिशाहीन'. कथा के अंत में महसूस हुआ कि ममता के साथ लेखक न्याय नहीं कर पाया. जीवन भर कर्तव्य परायण रहने पर उसके जीवन को 'दिशाहीन' कर दिया गया.

'मुट्ठी भर रोशनी' बहुत ही भावुक कर गयी. 'सारिका' की विशेषता यही महसूस होती है कि इसमें मर्मस्पर्शी व भावुक कथाओं का समावेश रहता है.

□ **अंजनी कुमार बाजपेयी, जयपुर**

आम आदमी का द्वंद्व

अप्रैल अंक की सभी कहानियां पढ़ीं. 'लाडली' और 'युद्धविराम' कहानियां इस अंक की उल्लेखनीय कहानियां हैं. 'लाडली' में जहां यादवेंद्रजी की परंपरागत शैली और भाषा की सौंधी महक है वहीं 'युद्धविराम' में मानवजी ने एक आम आदमी के द्वंद्व को बड़ी बारीकी से उभारा है. कहानी का अंत बेहद प्रभावशाली और स्वाभाविक लगा. इस सशक्त रचना के लिए मानवजी को बधाई!

लघुकथाओं में 'शर्मह़या', 'उम्मीद', 'ब्रहम का रूप' और 'बड़ा कौन' अच्छी रचनायें हैं.

□ **कैलाश चंद्र शर्मा, कानपुर**

नये रचनाकारों की सशक्त अभिव्यक्ति

जिस तरह शारीरिक विकास के लिये पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है ठीक उसी तरह उचित मानसिक विकास हेतु अच्छे साहित्य की आवश्यकता होती है. इस क्षेत्र में 'सारिका' की अपनी परंपरा रही है और बुद्धिजीवियों में इस पत्रिका का अपना एक सुरक्षित स्थान है.

अप्रैल, 90 अंक में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता' खंड की आड़ लेकर जिस फूहड़ साहित्य को परोसा है, एकाएक विश्वास नहीं होता कि ये 'सारिका' है. 'लाडली' में अश्लील संवादों की पराकाष्ठा है. गालियां विहीन संवादों द्वारा भी क्षेत्रीय बोली' का पुट मिल सकता था. 'रंग बिरंगे लोग' (शीर्षक) में कहीं भी कुछ रंग बिरंगा नहीं लगा. अलबत्ता बदरंग-लोग यदि इस उपन्यासिका का नाम होता तो धक भी सकता था.

एक बार फिर निर्गुणजी ने 'ममता' के नाम से अपनी कलम का लोहा मनवा लिया. जबकि 'सरस्वती' अभी भी दिल-दिमाग पर छायी हुई है. साधुवाद!

नये रचनाकारों ने भी काफी सशक्त अभिव्यक्ति दी है. अपनी कलम को तेजेंद्र शर्मा (मुट्ठी पर रोशनी), विजय किशोर मानव (युद्ध विराम) एवं शैलजा (जो एक सपना था) की रचनाओं का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं.

□ **लोकेश बाजपेयी, विदिशा (म.प्र.)**

गांव की तस्वीर

अभी कुछ दिनों से 'सारिका' के पुराने अंकों को उलट-पलट रहा था, उसमें अंक 290, 1 से 15 अगस्त, 1981 हाथ आ गया. 'ग्रामीण कथाओं' के आइने में हमारा देश. अंक काफी अच्छा था, फिर से पढ़ा नयापन का अनुभव हुआ. श्री रामदरश मिश्र का साक्षात्कार तथा शिवप्रसाद सिंह जी के विचार 'ग्राम कथा लेखन' गांव आप बीती मिथलेश्वरजी की...

ग्रामीण कहानियों व साक्षात्कारों में गांव की वास्तविक तस्वीर आंखों के सामने घूमने लगी. आप शायद यह ने सोचने लगें कि अतीत का बारीकी से मूल्यांकन क्यों कर रहा हूं. वास्तव में आपसे मैं यह निवेदन करना चाहता हूं. तब से अब तक बीते हुए 10 वर्षों में हमारा ग्रामीण कथा लेखन कितनी प्रगति कर पाया है. हमारे आज के गांव जहां अब दूरदर्शन की पहुंच है, बिजली, सड़कों के बढ़ते साधन. पीने के पानी की सहूलियत का सरकार का प्रयत्न से कितना फर्क आया है. इस विषय में दस वर्ष बाद फिर से विशेषांक के माध्यम से साक्षात्कारों द्वारा प्रतिष्ठित लेखकों के माध्यम से, आप बीती तथा इस दस वर्ष के अंतराल में जो अच्छी कहानियां गांवों के जीवन के ऊपर लिखी गयी उनको समाविष्ट करके हम सभी वाचकों के सामने रखने की कृपा करें.

□ **ओमप्रकाश सिंह भदौरिया, गांधीनगर (गुजरात)**

यूं होता तो क्या होता?

'सारिका' के अप्रैल अंक में प्रकाशित लेखक अविनाश की उपन्यासिका 'यूं होता तो क्या होता' अधूरी कहानी पढ़ने को मिली. मजा किरकिरा हो गया. बीच में पेज नहीं थे. यह प्रकाशन या पेज ठीक से न होने के कारण ऐसा हुआ. इसे हम पूरा पढ़ना चाहते हैं. कैसे पढ़ने को मिलेगा. लेखक से पत्र व्यवहार किया तो उन्होंने लिखा मेरे पास एक ही प्रति है, आप बाजार से पता कीजिये! अब बताइये 'सारिका' संपूर्ण कहां मिलेगी. मेरे पास नयी प्रति है, परंतु कहानी अधूरी है. बीच के पेज नहीं हैं. ऐसी भूल से पाठकों को पश्चात्ताप होता है. बिना कसूर कहानी का मजा किरकिरा, क्या पूरी कहानी पढ़ने को मिलेगी?

□ **कृपाशंकर औदीच्य, फतेहपुर (उ.प्र.)**

उपेक्षित तीसरी परंपरा में एक और उपेक्षा

यह देखकर बड़ा सुखद अनुभव हुआ कि इस वर्ष विभिन्न पत्रिकाओं ने स्व. डा. देवीशंकर अवस्थी की कथा-समीक्षा के क्षेत्र में मौलिक देन को रेखांकित करने का स्तुत्य कार्य किया है. इसमें संदेह नहीं कि डा. अवस्थी कहानी-समीक्षा के लिए सर्वथा नये औजारों की खोज की सफल कोशिश कर रहे थे और उन्होंने कहानी विधा को अलग महत्ता दिलाने का जो कार्य किया, उसका ऐतिहासिक महत्व है. यह दुर्भाग्य रहा कि उनके द्वार प्रतिपादित कथा समीक्षा के औजारों पर आगे बहुत कारगर काम [न] हुआ. 'सारिका' के अप्रैल, 1990 [अंक] में सुधीश पचौरी का लेख [...] अवस्थी के दाय को सही परिप्रे[क्ष्य में] प्रस्तुत करने का प्रयास करता है. [...] मुझे यह लेख पढ़ते समय [...] लगता रहा कि हम [...] 'सुपरलेटिव्ज' में बातें करते हैं [...] 'सुपरलेटिव्ज' किसी व्यक्ति [...] वस्तुनिष्ठ महत्ता का निषेध करते [...] यह बात बहुत महत्व नहीं रखती [...] अगर आज डा. अवस्थी जीवित [होते] तो डा. नामवर सिंह का क्या [...] होता? क्या यह जरूरी है कि [...] कथा समीक्षा में किसी को बड़ा [...] करना चाहते हैं तो पहले डा. नाम[वर] सिंह को उससे छोटा सिद्ध करें. [...] नामवर सिंह ने कहानी समीक्षा लि[खी] उसमें उन्होंने कविता के औजारों [का] प्रयोग किया तथा वह समीक्षा [...] अंतर्विरोधों का शिकार है, उस [पर] अक्सर चर्चा होती ही रहती है. [...] तो चर्चा डा. अवस्थी द्वारा प्रतिपा[दित] कथा मानों पर होनी चाहिए. सुधी[श] पचौरी निश्चय ही एक सुधी [...] समीक्षक हैं. किंतु लेख में वे कहीं-[कहीं] अतिरेकवादी हो गये हैं और वे [...] की जिस तीसरी परंपरा की बात [कर] रहे हैं, वे स्वयं भी उसी का पोषण [कर] रहे हैं.

मैं एक उदाहरण देना [चाहता] हूं—मेरा मतलब किसी [...] छोटा-बड़ा करना नहीं है और न [...] तय करना है कि कथा-समीक्षा [की] परंपरा किससे प्रारंभ होती है [...] लिखते हैं, "यदि यह टिप्पणी [...] पहले लिखी जाती तो भी (और [...] भी) यह अवधारणा प्रस्तुत की [...] थी कि हिंदी कथा-समीक्षा [की] वास्तविक शुरुआत नामवर सिं[ह से] नहीं, देवीशंकर की कथा-समीक्षा [से] होती है. यों नयी कहानी की स[...] दुष्यंत कुमार की टिप्पणियों से हो[ती] है. ऐसे ही राजेंद्र यादव याद कर[...] कि हिंदी कथा-समीक्षा का [...] 'किन्ही शिलीमुखजी' से होता है. [...] तरह देखेंगे तो कथा-समीक्षा [...] भारतीय उत्स 'वेदों' में [...] गिरेगा." (सारिका, अप्रैल, 90 [...] 76-77) यहां सुधीश पचौरी [...] "किन्ही शिलीमुखीजी' लिखना [...] उपेक्षा का निर्वाह है जिसकी [...] अवस्थीजी के संदर्भ में भर्त्सना [...] रहे हैं. मैं यहां निवेदन यह [करना] चाहता हूं कि हिंदी समीक्षा [...] प्रारंभिक दौर में जिन समीक्षकों [ने] हिंदी समीक्षा को अपना मौलिक [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी अकादमी, दिल्ली
का महत्वपूर्ण प्रकाशन

'इन्द्रप्रस्थ कहानी संग्रह'

- इस संग्रह में वरिष्ठ पीढ़ी के एवं युवा पीढ़ी के कहानीकारों की रचना-दृष्टि एक साथ ही पाठकों के लिए उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है ।

- लगभग 300 पृष्ठ के इस कहानी संग्रह में 35 कहानियां संकलित की गई हैं ।

- ये कहानियां जहां आज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का आईना प्रस्तुत करती हैं, वहीं जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने अंक में समेटते हुए मानवीय रिश्तों, संवेदनाओं और परिवेश से भी जुड़ी हुई हैं ।

- कृपया अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए ।

- रॉयल डिमाइ आकार में पक्की जिल्द सहित संग्रह का मूल्य केवल 100/- रु, जिसे सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा नीचें दिये गये पते पर भेजा जा सकता है ।

- अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

—डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव,
हिन्दी अकादमी,
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरैंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110 002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्र स्वरूप प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य किया उनमें रामकृष्ण शिलीमुख भी एक थे. 'आर्यभाषा और संस्कृति', 'आलोचना समुच्चय', 'कला और सौंदर्य', 'काव्य जिज्ञासा', 'निबंध प्रबंध', 'प्रसाद की नाट्यकला', 'सुकवि समीक्षा', आदि शिलीमुखजी की प्रतिद्ध कृतियां हैं. बाद में उनके प्रतिनिधि समीक्षात्मक निबंधों का संग्रह 'शिलीमखी' नाम से डा. विजयेंद्र स्नातक ने संपादित किया. शिलीमुखजी की लिखी समीक्षाओं की महत्ता आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी स्वीकार की थी. उनकी विख्यात कृति 'सुकवि समीक्षा' के विषय में शुक्लजी ने लिखा है, "पं. रामकृष्ण शुक्ल ने अपनी सुकवि समीक्षा में कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, बिहारी, भूषण, भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद कर अच्छे समीक्षात्मक निबंध लिखे हैं." (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 624, संवत 1997 का संस्करण). शिलमुखजी साहित्य और उसकी समालोचना को सहजात मानते हैं तथा मानसिक और साहित्यिक विकास के साथ-साथ समालोचना और समालोचक का विकास भी आवश्यक मानते हैं. वे समालोचना के लिए शास्त्र के ज्ञान को अपर्याप्त मानते हैं तो साहित्य की पाश्चात्य कसौटियों को भी वे अपूर्ण मानते हैं. वे समालोचना की अपनी राह बनाते हैं. शिलीमुखी के लिए साहित्य में व्यक्त मानव हृदय के साथ पाठक का संवाद स्थापित करने का प्रयास समालोचना करती है. उस काल में शिलीमुखीजी ने हिंदी आलोचना को शास्त्र मुक्त विचार और अभिव्यंजना पद्धति का नया वैभव प्रदान किया जबकि स्वयं शुक्लजी शास्त्रीय अध्ययन और पांडित्य आदि पर बल दे रहे थे. शिलीमुखजी की समीक्षा दृष्टि की संपन्नता का पता तो इसी बात से लग जाता है कि जब शुक्लजी छायावाद का 'शैली की विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना' कह कर नकार-सा रहे थे उस समय शिलीमुखीजी छायावाद के बारे में ये विचार रख रहे थे, "जड़ अथवा अमूर्तों के वर्णन में कहीं-कहीं अधिक लाक्षणिकता आ जाने से बहुत से लोगों के लिए कथन में जो एक अस्पष्टता पैदा हो जाती है, उसी को वे छायावाद कहने लगते हैं. ऊपर के उदाहरण में (जलधि-लहरियों की अंगड़ाई बार-बार जाती सोने.) इस प्रकार की लाक्षणिकता खूब है परंतु उसमें अस्पष्टता नहीं है." (आलोचना-समुच्चय—रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख, पृ. 223)

पर मैं शायद मुख्य बिंदु से भटक गया हूं. मैं कहना यही चाहता हूं कि हिंदी समीक्षा के निर्माण में जिन लोगों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, उनमें शिलीमुखजी भी एक हैं, पर अगर उन्हें भी उपेक्षा ही मिली तो किया क्या जाए? जिस संदर्भ में सुधीश पचौरी ने "किन्ही शिलीमुखजी' वाली बात कही है, अब उस पर आइए—शिलीमुखीजी ने 'आधुनिक हिंदी कहानियां' नाम से एक संग्रह संपादित किया था जिसका प्रकाशन काल 1928 के आसपास है. उस संग्रह में उन्होंने प्रसाद, विनोद शंकर व्यास, प्रेमचंद, सुदर्शन, हृदयेश आदि की कहानियां को संकलित किया था. किंतु इस संग्रह का मूल महत्व शिलीमुखजी द्वारा लिखी गयी लंबी भूमिका में था क्योंकि यह भूमिका जैसे हिंदी कहानी की विकास यात्रा की छोटी-सी अवधि में ही इस विधा को स्वतंत्र सत्ता प्रदान कराने का हिंदी में प्रथम प्रयास था. इस भूमिका में उन्होंने समान आधार भूमि वाली विधाओ से कहानी की पृथकता प्रस्तुत करने का प्रयास किया जैसे उपन्यास और कहानी का अंतर स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, "जन-साधारण का यह विचार कि उपन्यास और कहानी में एक मात्र आकार का ही भेद है, बड़ा भ्रामक है. यह सत्य है कि आकार की दृष्टि से कहानी को एक विशिष्ट परिधि के भीतर रहना पड़ता है परंतु केवल इतने से ही कहानी और उपन्यास का बेद निर्धारित नहीं होता. ऊंट और खरगोश के भेद को समझने के लिए केवल यह कहने से ही काम नहीं चल जाएगा कि एक बडा होता है और दूसरा छोटा." आधुनिक हिंदी कहानियां', भूमिका, पृ. 9-10) तो फिर अंतर कहां है? शिलीमुखजी ने कहानी का मूल रूप वृत्त वर्णन को माना है तथा उसकी प्रेरणा के रूप में हृदय की वृत्तियां के प्रकाशन एवं उसके प्रति उत्सुकता की सहज मानवीय प्रवृत्ति को स्वीकार किया है. (वही, पृ. 6) इस भूमिका में वे कहानी के स्वरूप, अवयव, रचना पद्धति तथा विषय आदि पर नये ढंग से विचार करते हैं और उनका यह ... कहानी के अंतरंग और बहिरंग ... वस्तुपरक ढंग से समझने का ... आधार प्रदान करता है. कहानी के ... विभिन्न तत्वों पर विचार करते ... कहानी का आधार तत्व 'संवेदना' ... स्वीकार करते हुए कहते हैं कि ... में एक संवेदना की प्रस्तुति ... कथाकार का मुख्य उद्देश्य होता ...

...हो सकता है कि राजेंद्र ... का कहना गलत हो कि कथा ... का आरंभ शिलीमुखजी से हो ... किंतु यह तय है कि कहानी पर ... सुचिंतित आलेख हिंदी में इससे ... नहीं मिलता.

मेरे यह सब कहने से ... देवीशंकर अवस्थी की देन का ... कम नहीं हो जाता, पर मैं ... परंपरा की एक और स्मृति 'किन्ही शिलीमुखजी' के महत्व की ... संकेत करना चाहता हूं. साथ ही ... भी निवेदन करना चाहता हूं कि ... अवस्थी द्वारा प्रतिपादित औजारों ... भी हमें वस्तुपरक दृष्टि से ... करना चाहिए क्योंकि 'सुपरलेटिव' ... का प्रयोग एक दूसरे अतिवाद ... जन्म देता है. माना डा. अवस्थी ... कथा समीक्षक के नये औजारों ... खोज की दिशा में एक नयी दृष्टि ... पर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए ... उन्होंने 'एक पति के नोट्स' (महेंद्र ... भल्ला) जैसी कहानी में आधुनिक ... दृष्टि का आरोपण करने का प्रयास ... किया था, पर यह कहानी हिंदी ... कभी भी एक नये दिशाबोधक ... कहानी प्रमाणित नहीं हो सकी ... काल की जिन कहानियों की चर्चा ... एक प्रकार से क्लासिक कहानियों ... रूप में करते हैं, उनमें इस कहानी ... नहीं उल्लेख नहीं होता. उनके औजार ... भले गलत न रहे हों पर उन्होंने ... उनका गलत प्रयोग तो किया ही. ... पति के नोट्स' और 'यह मेरे ... नहीं' (धर्मवीर भारती) कहानियों ... तुलना ही गलत थी क्योंकि भारती ... कहानी का बोध यदि 1950 के ... पर है तो महेंद्र भल्ला की कहानी ... यथार्थ गढ़ा हुआ और कृत्रिम है. ... पंक्तियों के लेखक ने उन्हीं ... 'लहर' (अक्टूबर 65) में एक टिप्पणी ... में यह बात कहीं थी. साथ ही मुझे ... स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं ... डा. अवस्थी हिंदी कहानी के ... को बड़ी पैनी दृष्टि से समझने-परखने ... का प्रयास कर रहे थे और ... कथा-समीक्षा के नये मानदंड ... को आकुल थे

□ हेतु भारद्वाज, नीमकाथाना.

क्या आप

अपने घर को कम खर्च में सजाना चाहते हैं. कमरों में सही प्रकार की फर्नीचर सैटिंग चाहते हैं. परदों, दीवारों व फर्नीचर में सही तालमेल चाहते हैं. हर कमरे में बहुपयोगी अलमारियां चाहते हैं. सही प्रकार की योजनाओं की जानकारी चाहते हैं तो हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

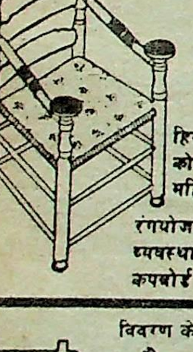

गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें.
सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें.
आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं.
कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं.
अपनी योग्यता बढ़ाएं तथा घर भी सजाएं
बेडरूम, ड्राइंग/डाइनिंग, रसोईघर, आंगन आदि की सजावट स्वयं कम खर्च में करें.
हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन का एकमात्र कोर्स
महिलाओं, गृहिणीयों, एवं छात्र-छात्राओं के लिए सर्वोत्तम.
रंगयोजनाओं, बहुपयोगी बिल्ट-इन फर्नीचर, परदे, प्रकाश व्यवस्था, नयी सजावट सामग्री, पौधों, फर्नीचर-अरेन्जमेन्ट, कपबोर्ड तथा अलमारियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :—

AID

एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन

10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007

R K SWAMY/PCR/5789 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

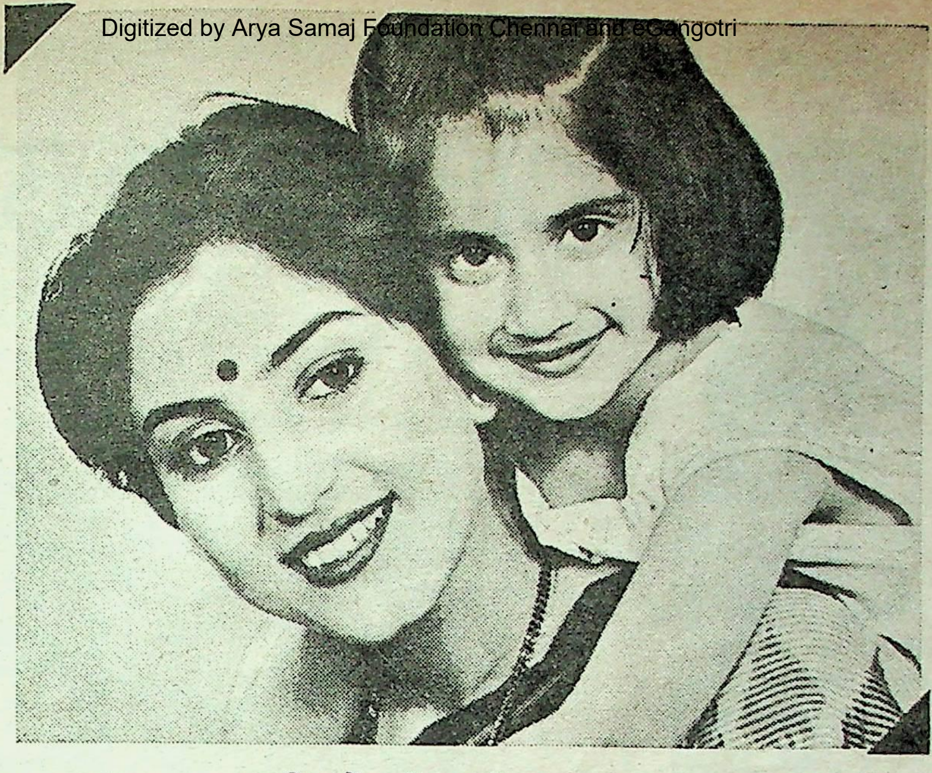

क्या आपकी बेटी बीस साल बाद भी आपको इतना ही चाहेगी?

क्यों नहीं?

उसके भविष्य के लिए आपने सब कुछ तो किया है. उसकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबंध किया है. उसके विवाह के लिए पैसे भी जमा करने शुरू कर दिए हैं.

पर कुकिंग गैस और मिट्टी के तेल के लिए क्या किया?

जब आपकी बेटी अपना घर बसायेगी तब तक उनके भंडार तो शायद ख़त्म हो जाएंगे!

हां, आप उन्हें बचा कर रख सकती हैं. हर रोज़ उनकी बचत करके—भविष्य के लिए, अपनी लाड़ली बेटी के लिए.

ईंधन बचाने के लिए नीचे दिए हुए सरल तरीके अपनाएंगी तो आपकी बेटी हमेशा आपके गुण गायेगी.

- **ईंधन बचाने वाले नूतन गैस/मिट्टी के तेल के स्टोवों का उपयोग करें.**
- **स्टोव जलाने से पहले पकाने की सब सामग्री तैयार करके पास रख लें.**
- **जहाँ हो सके वहाँ प्रेशर कुकर का इस्तेमाल करें.**
- **उबाल आते ही लौ कम कर दें.**
- **पकाने के लिए चौड़े, कम गहरे बर्तनों का इस्तेमाल करें.**
- **बर्तनों को ढक कर खाना पकाएं.**

अधिक जानकारी चाहिए तो हमारी पुस्तिकाएं मुफ़्त मंगाने के लिए आज ही हमें पत्र लिखें.

नाम ____________________

पता ____________________

____

शहर __________ ज़िला __________

PCRA

पेट्रोलियम कंज़रवेशन रिसर्च एसोसिएशन
पोस्ट बॉक्स नं. 572
नई दिल्ली-110 001 फ़ोन : 3315868

R K SWAMY/PCRA/5789 HIN

अपनी बेटी के लिए गैस/मिट्टी का तेल बचाइए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश के उस पार

आबिद सुरती

जन्म: 5 मई, 1935 राजुआ (सौराष्ट्र) लेखक, चित्रकार और कार्टूनिस्ट के रूप में प्रख्यात. पिछले तीन दशकों से हिंदी व गुजराती की विविध पत्र-पत्रिकाओं में लेखन. रेडियो व बंबई दूरदर्शन के लिए नाट्य लेखन. बंबई दूरदर्शन द्वारा तीन उपन्यासों पर टेली फिल्में. प्रमुख कृतियां: 'राधे-राधे हम सब आधे' (नाट्य लेखन व निर्देशन) 'तीसरी आंख' (क्रहानी) विविध: फिल्म सर्टिफिकेशन बोर्ड, फिल्म राइटर्स ऐसोसिएशन, और ऐसोसिएशन ऑफ राइटर्स एंड इलस्ट्रेटर्स फॉर चिल्ड्रेन दिल्ली के सदस्य. अब तक पच्चीस उपन्यास, दो क्रहानी संग्रह, तीन नाटक, एक यात्रा वृत्त, बारह कार्टून और कुछ संग्रह बाल-पुस्तकें प्रकाशित. 'रावण रेखा' और 'दलदल' उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य. संपर्क: 60/1, हिल रोड, बांद्रा, बंबई-400 050

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे शरीर पर कई घाव हैं. मैं सैनिक नहीं हूं. शायद आपको हैरत होती होगी? मेरे शरीर पर कैसे घाव हैं? सवाल भी उठते होंगे. संदेह भी होता होगा.

आइए! आपको मैं अपना पहला घाव दिखाता हूं. इधर, मेरे सामने बैठिए. मैं आपका ज्यादा वक्त नहीं लूंगा. जरा अपनी उंगली दीजिए. इधर टांकों पर हल्के से रखिए. चमड़ी उबड़-खाबड़ लगती है न? इस घाव की भेंट मुझे डॉक्टर ने दी है.

मेरे पेट में एक गांठ है. भयानक गांव. उस गांठ का दर्द भी भयानक है. दर्द शुरू होते ही मैं बिस्तर पर मछली की तरह तड़पने लगता हूं. मेरी अंतिम घड़ी मेरे पास दौड़ी आती है. लोग उसे मौत कहते हैं.

कभी मौत सर्जन का चाकू लेकर आती है. और सर्जन मौत का नकाब पहने सिर पर खड़ा हो जाता है. मेरे डॉक्टर के चेहरे पर कभी मैं ऐसा ही मौत का काला नकाब देख लेता हूं. उसने मेरे जिस्म में चाकू घुमाकर मेरे अंदर की गांठ निकाली है. लेकिन अभी तक वह तय नहीं कर पाया कि मैं ठीक हुआ हूं या नहीं! मुझे इसकी परवाह नहीं.

भगवान में मुझे अचल श्रद्धा है. मेरी मौत निश्चित समय पर आयेगी. समय से पहले नहीं. दोस्तो, मैं जवान हूं. मेरे अंग-अंग में बिजली भरी है. डॉक्टर का चाकू मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता. कुछ बिगाड़ा भी है तो सिर्फ इतना कि मैं पहले की तरह शाम के वक्त वॉटर-स्की नहीं कर सकता. बहुत जल्दी थक जाता हूं.

आज मैं बहुत थका हुआ हूं. कल ही मद्रास लौटा हूं. मैं मद्रास में रहता हूं. यही मेरा घर है. मेरी बीवी है. मेरा बच्चा है. जिसे मैं अपना कह सकूं वह सब कुछ यहीं है. यहां के रास्तों पर से गुजरते हुए कभी बचपन की यादें मुझे घेर लेती हैं.

मेरे बचपन के दिनों से हांगकांग जुड़ा है. उसे घेरता समंदर जुड़ा है. बचपन से ही मुझे समंदर से लगाव रहा है. बचपन से क्यों? यह मैं नहीं जानता. मेरे साथ मुझ जैसे कई और बच्चे थे. मगर शायद ही उन्होंने समंदर की ओर प्यार से देखा हो ऐसा मुझे याद है.

मेरे महान पिता हांगकांग में कई करोड़पति में से एक थे. रहने के लिए आलीशान बंगला, घूमने-फिरने के लिए आलीशान वातानुकूलित कारें, भूख लगने पर आलीशान खाना और सोने के लिए झीने, रेशमी पर्दों के बीच सजाया हुआ आलीशान गोलाकार पलंग. दोनों पैर पसारकर वे सपाट सोते और उन नथूने गुस्सैल बुलडॉग की तरह गुर्राने लगते.

पैंसठ साल की उम्र में पैंतालिस साल के जवान लगते थे. यह उनकी खूबी थी. उनका जिस्म पहाड़ी था. आजाद था. उस उम्र में भी अगर किसी सोलह साल की लड़की से ब्याह करते तो कम-से-कम एक दर्जन बच्चों के बाप बनने की कुव्वत रखते थे. डर किसे कहते हैं, यह वे कभी भी जान न सके. सच कहूं तो मेरे पहलवान पिता, भगवान और मेरी मम्मी के अलावा किसी से नहीं डरते थे.

मैं न अपनी मम्मी से डरता था न अपने पिता से. पिता यह बात जानते थे. मम्मी भी अनजान नहीं थीं. शायद इसीलिए उन दोनों को मेरी फिक्र लगी रहती थी. समंदर से दूर रखने के लिए वे अपनी ओर से पूरी कोशिशें करते और मैं उन सब कोशिशों पर पानी फेरकर समंदर में उतर जाता. पेट में घुसते चाकू की तरह.

उस वक्त मेरी उम्र बारह साल से ज्यादा नहीं थी. मैं नायलोन की एक चड्डी पहनता और कमर में टारजन की तरह एक छुरा बांधता. टारजन की फिल्मों में कई बार मैंने खतरनाक मछलियों के साथ की लड़ाई देखी थी. टारजन को अपने छूरे से शार्क जैसी खूनी मछलियों को चीरते देखा था. उन दिनों वह बहुत स्वाभाविक लगता था.

शो-विंडो में झांकता हुआ मैं ट्रैफिक सिग्नल-पार कर लेता हूं. मेरी नजर तमिल सेना के जुलूस पर पड़ती है. दूर से चीखता हुआ वह मेरी ओर आ रहा है. ट्रैफिक का रूट बदलता जाता है.

चौड़ी सड़क पर मैं एक भी गाड़ी नहीं देखता. दूकानों के शटर नीचे गिर चुके हैं. दरवाजे बंद हो गये हैं. खिड़कियां बंद हो गयी हैं. जुलूस मेरे सामने से गुजरने पर मैं फुटपाथ के किनारे खड़ा हो जाता हूं.

मेरी नजरों में फुटपाथ पर चलता एक चेहरा आ जाता है. मैं साफ नहीं देख पाता. सामने के फुटपाथ पर ऑफिस से निकले स्त्री-पुरुषों की भी भीड़ है. चेहरा पल-भर के लिए दिखता है तो दूसरे पल और चेहरे उसे ढक देते हैं. वह चेहरा चंद्रमा जैसा है और बादलों से छिपता-छिपाता आगे बढ़ रहा है. मैं अपनी आंखें टिकाता हूं.

कभी मेरी नजर में सिर्फ जामुनी साड़ी का टुकड़ा पड़ता है तो कभी कंधे पर खेलते कटे बाल. कभी मैं चेहरे का सिर्फ एक हिस्सा ही देख लेता हूं.

फुटपाथ पर के लोगों के बीच से रास्ता बनाती लड़की अन्नादुराई के बुत की ओर कदम

कभी मौत सर्जन का चाकू लेकर आती है. और सर्जन मौत का नकाब पहने सिर पर खड़ा हो जाता है. अपने डॉक्टर के चेहरे पर कभी मैं ऐसा ही मौत का काला नकाब देख लेता हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आपको संभालते ही उसने मेरी ओर देखा और थोड़ी सिकुड़ गयी. सफेद साड़ी के पल्लू से झटपट आंसू पोंछ उसने मुस्कराने की कोशिश की. उसमें भी वह नाकाम रही. तब पीठ फेरकर बाहर निकल गयी.

बढ़ा रही है. मैं उसके समानांतर चलता हूं. हम दोनों के बीच चौड़ी सड़क है. नारे लगाता जुलूस है. पुलिसों की कॉर्डन है.

जुलूस के स्टेशन की ओर चले जाने पर सड़क सूनी पड़ जाती है. रास्ते के बीच में पड़े कागजों के टुकड़े सांय-सांय करती हवा में करवटें ले रहे हैं. एक कुत्ते को सुनसान सड़क के बीच के दौड़ते हुए मैं देखता हूं.

मद्रास की यह सड़क, सड़क है या मेरा धड़कता दिल? मेरे दिल में भी खामोशी है. सन्नाटा है. वीरानी है. किसलिए? मैं नहीं जानता. किसलिए?

मैं शादीशुदा हूं. मेरी एक बीवी है. मेरा एक बच्चा है. दोनों को मैं चाहता हूं. नील कौन है? मुझे भी यही जानना है: नील कौन है?

'हंप्टी-डंप्टी नर्सरी' आते ही मेरे पैर कुछ पल के लिए रुक जाते हैं. 'ट्रिप्लिकन हाई रोड' के विस्तार में यह एक ऐसी नर्सरी है जिसके बच्चों को कोरोनेशन कॉन्वेंट स्कूल में ज्यादा तकलीफ के बिना एडमिशन मिल सकता है, यहां पढ़ाने का तरीका आधुनिक है. दूसरे, एक दो अध्यापिकाएं मेरी पहचान की हैं. मैंने अपने राजू का दाखिला यहीं करवाया है.

पहले दिन राजू के गले में उसके नाम का कार्ड बांधकर मैं ही उसे यहां ले आया था. मेरी तरह दूसरे कई मां-बाप अपने-अपने बच्चों को लाये थे.

नील के साथ मेरी पहली मुलाकात यहीं हुई थी. मैं उससे परिचित न था. वह भी मुझे जानती न थी. और हम दोनों एक ही नर्सरी में दाखिल हुए बच्चों के माता-पिता थे.

नील की आंखें गीली थीं. मैं उसका चेहरा देख रहा था. क्यों? शायद, वह भीगा हुआ था इसलिए. शायद यहां दूसरा कोई न था इसलिए.

अपने आपको संभालते ही उसने मेरी ओर देखा और थोड़ी सिकुड़ गयी. सफेद साड़ी के पल्लू से झटपट आंसू पोंछ उसने मुस्कराने की कोशिश की. उसमें भी वह नाकाम रही. तब पीठ फेरकर बाहर निकल गयी.

उन काली कजरारी आंखों में न जाने ऐसा क्या था कि उसका असर मेरे दिलो-दिमाग पर काफी समय तक छाया रहा. कई बार उन आंखों को अपनी आंखों के सामने रख उन्हें मैंने ग़ौर से देखा. मुझे लगा वे आंखें साधारण न थीं.

अंजु कहती थी, मम्मी होने के नाते राजू को नर्सरी में ले जाने का फर्ज उसका है. और पहले दिन ही मैंने उसे प्यार से ना कह दिया. "रोज सुबह मैं ही उसे ले जाऊंगा." मैंने कहा था, "इसलिए कि यही वक्त मेरा समंदर जाने का है." अंजु को थोड़ा-सा बुरा लगा था. हम दोनों में थोड़ी तकरार भी हुई थी. इस तरह की किटकिट-पिटपिट का मैं आदी हो गया हूं.

दूसरे दिन भी राजू को लेकर मैं आया और राजू भरपूर आवाज में रो रहा था. ओह गॉड! यह रोना, ये आंसू, ये चीखें... मुझसे बर्दाश्त नहीं होते. "राजू! प्लीज... तू रोना बंद करेगा या फिर कल से तेरी मम्मी को तेरे साथ भेजूं?"

मैं दरवाजे तक पहुंचूं, उससे पहले मेरी नजर [illegible] पर पड़ी.

उसके साथ छोटी बच्ची को देख मुझे हैरत हुई. वह रो नहीं रही थी. एक दिन में कोई बच्चा स्कूल का आदी हो जाये, यह मेरे लिए वास्तव में हैरत की बात थी. राजू को शांत करने के लिए मैंने उस बच्ची की ओर इशारा करके कहा, "देख राजू, यह बच्ची कितनी सयानी है. तेरी तरह ऊधम नहीं मचाती. अब चुप भी हो जा."

उसने कुछ पल के लिए उस बच्ची की ओर देखा. मैंने नील की आंखों में देखा और राजू का रोना फिर शुरू हो गया. अध्यापिका ने हाथ बढ़ाकर राजू को अंदर खींच लिया. नील की बच्ची भी अंदर चली गयी, फिर एक बार हम दोनों एक दूसरे के सामने आ गये.

"आपकी बेटी काफी समझदार है." मैंने शुरुआत की.

वह सिर्फ मुस्करा भर दी. उस मुस्कान के कई मतलब निकलते थे. उनमें से एक: मिस्टर! मुझे आपकी बातों में दिलचस्पी नहीं.

शायद यह सच भी हो.

वह सीढ़ियां उतर गयी. कार में उसे लिफ्ट ऑफर करने की मेरी हिम्मत न हुई.

मैं कार में बैठा. स्टार्ट की. नहीं हुई. फिर की. फिर भी नहीं हुई. मेरी फोर्ड कार का यह ऐतिहासिक मॉडल है.

थोड़ी कोशिशों के बाद कार आगे बढ़ने लगी. कुछ दूर जाने पर मेरी नजर नील पर पड़ी. फुटपाथ पर चलने की बजाय वह सड़क पर चल रही थी. अपनी अफलातून कार उसके करीब लेकर मैंने हिम्मत से रोकी. पहले तो वह चौंक गयी. लेकिन मेरे चेहरे पर नजर पड़ते ही उस पर आदतन फीकी मुस्कान दौड़ गयी.

"स्टॉप पर लंबी क्यू है?" मैंने बेवकूफ की तरह उससे पूछा और मुझे थोड़ा-सा पछतावा भी हुआ. बस के लिए लंबी क्यू थी. और वह साफ दिखायी दे रही थी.

उसने मेरा अपमान न करते हुए 'हां' कहा. लेकिन कार में बैठने की इच्छा नहीं दिखायी. मैं उलझन में पड़ गया. उसकी समझ में भी यह न आया कि उसे क्या कहना चाहिए?

"कहां रहती हो?" अंत में मैंने ही पूछा.

"यहीं, पास में."

"आई सी!" कार स्टार्ट कर मैंने दौड़ा दी.

मरीना बीच, समंदर का किनारा आया. मेरा 'शेड' आया. कार मैंने रेत के पास पार्क की और मेरे कानों से नारे टकराये

"हांगकांग बाला सेठ! मुर्दाबाद...!"

"गरीबों का दुश्मन! मुर्दाबाद....!"

"देश का दुश्मन! मुर्दाबाद...!"

मछेरे हाथ में काले झंडे लिये शेड के दरवाजे [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़े थे. मेरे लिए यह नया अनुभव न था. ये मछेरे रोज सवेरे मेरे वर्कर्स के आने के वक्त शेड के दरवाजे पर आकर खड़े हो जाते थे. नारे लगाते थे. गालियां बकते थे. और घंटे भर बाद बिखर जाते थे.

मैं बेफिक्र था. कानून मेरे साथ था. कानूनन मैंने रेत में टेंपरेरी शेड खड़ा किया था. शेड में तेइस वर्कर्स काम करते थे. तैरता रेस्तरां बनाने की मेरी योजना आकर ले रही थी. तैरता रेस्तरां तैयार होने पर मैं उसे जहाज की तरह किनारे से एक फलांग दूर ले जाने वाला था.

नारे लगाते मछेरों के बीच से रास्ता बनाकर मैं बेहिचक शेड में दाखिल हो गया. दरवाजे पर खड़े गुरखे ने जोरदार सलाम मारा. कांट्रेक्टर के आदमी अपने काम में मशगूल थे. कोई रंदा मार रहा था तो कोई मेजरिंग टेप से नाप ले रहा था.

आज चीफ आर्किटेक्ट भी आया था और तैरते रेस्तरां के तैयार हिस्सों के बारे में कांट्रेक्टर से चर्चा कर रहा था. उसके हाथ में प्लान था और होंठों के बीच सिगरेट.

"हैलो?"

दोनों ने मेरी ओर वेजिटेबल मुस्कान फेंकी. कांट्रेक्टर ने मेरे सामने प्रोग्रेस रिपोर्ट रखी.

"दुबे!" मैंने उससे कहा, "आज वर्कर्स कम क्यों लग रहे हैं?"

"हम भी यही चर्चा कर रहे थे." उसने आर्किटेक्ट की ओर इशारा करते हुए कहा, "मछेरों के दबाव और धमकियों की वजह से वर्कर्स घटते जा रहे हैं. अगर हालात ऐसे ही रहे तो मुझे शक है, हम वक्त पर काम पूरा नहीं कर सकेंगे."

मैं सोच में पड़ गया.

शेड के पिछले दरवाजे से बाहर आकर मैं समंदर में कूदा. रोज की तरह आज भी दो-चार गोते मारे और रेत में पैर फैलाकर लेट गया.

पानी का जीव पानी के बिना जी नहीं सकता. मैं भी पानी के जीवों में से एक हूं. जन्म माटी पर हुआ यह अलग बात है. स्वभाव से जलचर हूं और कोई मुझे मछली की औलाद कहेगा तो मैं बुरा नहीं मानूंगा.

ज्यादा वक्त सनबाथ न लेकर मैं सीधा 'शयद्रापेट' पहुंच गया. यहां मेरा दफ्तर है.

"गुड मॉर्निंग, सर!" मेरी टेबुल पर आज की पोस्ट रखते हुए मेरी स्टैनो ने कहा. "आपके लिए ट्रंक कॉल थी."

"कहां से?"

"उदयपुर."

"कोई मैसेज?"

"आपकी कल की मीटिंग कैंसल कर दी गयी है."

"नयी तारीख दी?"

"नहीं. कल या परसों फिर संपर्क करेंगे."

मीटिंग कैंसल होने का मुझे गम न हुआ. सच कहूं तो खुशी ही हुई. भीतरी खुशी वजह? राजू. नर्सरी जाते वक्त तो वह खूब ऊधम मचाता था. लेकिन नर्सरी से छूटते ही उसका चेहरा उम्र-कैद से लौटे क़ैदी-सा खिल उठता. उछलता, कूदता आकर वह मुझसे लिपट जाता. अंजु उसके जूते-जुराब उतार उसके सामने चप्पल रखती. उसकी युनिफॉर्म बदल उसे घर के कपड़े पहनाती. फिर सूरज डूब जाता. फिर एक नया सूरज निकलता.

जल्दी से नाश्ता निपटाकर मैं फटाफट तैयार भी हो गया.

"अंजु! ओ अंजु!"

"जी?" किचन से आकर अंजु मेरे सामने खड़ी हो गयी.

"अभी तक राजू को तैयार नहीं किया? कब मैं उसे नर्सरी छोड़ूंगा और कब ऑफिस पहुंचूंगा?"

अंजु चुपचाप पासवाले कमरे में गयी. फौरन वापस भी आयी. उसके हाथ में कैलेंडर था. मेरे सामने रखते हुए उसने सवाल किया. "इसे क्या कहते हैं?"

आज इतवार था. बेवकूफ की तरह मैं राजू को नर्सरी ले जाने के लिए तैयार खड़ा था. उल्लू की तरह कभी अंजु के चेहरे को तो कभी कैलेंडर के लाल आंकड़ों को देख रहा था.

"पापा!" राजू ने दौड़ते हुए आकर मुझसे पूछा, "आज मुझे कहां ले जायेंगे?"

उसका मन सुबह से ही बैंड-स्टैंड जाने को था. मेरा मन दोपहर के खाने के बाद थोड़ा आराम कर शाम को जाने का था. अंजु ने कहा—उसकी इच्छा ही नहीं. मैंने वजह पूछी. उसके पास कोई वजह न थी. "बेचैनी हो रही थी." यह कोई वजह नहीं हुई.

"एक गोली खा लो न!" मैंने उसे सलाह दी. लेकिन अंजु जानती थी. एक दो गोलियों से फर्क नहीं पड़ेगा. बोतल सहित सारी गोलियां गले से नीचे उतारने पर भी फायदा नहीं होगा. दिन पर दिन उसका शरीर फूलता जा रहा था. किस डॉक्टर में ताकत थी, उसे फूलने से रोके?

"एक दिन मैं गुब्बारे की तरह फूट जाऊंगी."

अपने तनहा पलों में अंजु कभी यह जुमला कह डालती है. मैं मजाक समझता हूं. गुब्बारे की तरह गुब्बारा फूटता है. पानी का बबूला फूटता है. किसी ने जीते-जागते इंसान को गुब्बारे की तरह धड़ाम से फूटते हुए कभी देखा या सुना है?

राजू को मैं अपनी बगल की सीट पर बैठाकर बैंड-स्टैंड की ओर कार दौड़ा गया. आज छुट्टी का दिन होने की वजह से सड़कें सूनी थीं. हम बहुत जल्द बैंड-स्टैंड पहुंच गये. साईसों की कतार के पास मैंने कार पार्क की. राजू अपने फेवरेट पोनी को ढूंढ़ने लगा. सफेद, उजले पोनो के सिवा वह दूसरे किसी भी पोनी पर बैठना पसंद नहीं करता था.

साइस ने उसे पोनी पर बैठाया. उसके हाथ में लगाम के साथ एक छोटी छड़ी भी दी. पोनी ने राउंड शुरू किया.

राजू खुश था. छुट्टी के दिन कौन-सा बच्चा खुश नहीं होगा? चार राउंड पूरे होने पर मैं राजू के साथ

नील ने धारे से एक गुब्बारे की डोर अलग कर छोड़ दी. गुब्बारा हवा में उलट-पलट होता ऊपर गया. हम दोनों ऊंचे आकाश में तैरते जाते गैस के गुब्बारे को देखते रहे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बगीचे में दाखिल हुआ. मैंने बैठने के लिए एक बेंच ढूंढ़ी. राजू झूले की ओर दौड़ गया.

सिगरेट का गुबार छोड़ते हुए मेरी आंखों में नील का चेहरा उभर आया. आंखें भर आयीं. न जाने क्यों अचानक उसकी याद आ गयी? नील से मेरी सिर्फ दो मुलाकातें हुई थीं. वे भी नर्सरी में. न वह मुझसे परिचित थी. न मैं उससे. फिर भी मैं उसे क्यों याद करता था? शायद उसकी आंखें...

राजू की मीठी आवाज मेरे कानों से टकराते ही मैंने उसकी ओर देखा. दौड़ते-दौड़ते वह मेरी तरफ आ रहा था. उसके हाथ में एक बच्ची का हाथ भी था. मैंने ध्यान से उस बच्ची को देखा. मेरी हैरत का पार न रहा. वह बच्ची नील की बेटी थी. नील कहां थी?

बच्ची के साथ राजू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया. "पापा!" उसने गहरी सांसें लेते हुए कहा, "यह मेरी दोस्त है. क्लास में मेरे पास ही बैठती है."

बुझी हुई सिगारेट को जूते तले दबाते हुए मैंने दोनों के सिर पर प्यार से हाथ फेरा. मेरी आंखें नील को तलाशती दूर तक फैल गयीं. कहीं भी नजर न आयी तो मैंने बच्ची से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"पिंकी."

"वाह! कितना बढ़िया नाम है." फिर, मैंने धीरे से जोड़ा, "पिंकी! तुम्हारी मम्मी तुम्हारे साथ नहीं आयी?"

जवाब में उसने सिर्फ उंगली उठा दी. मैंने उस दिशा में देखा. नील थोड़े फासले पर एक बेंच पर बैठी थी. उसका सिर एक ओर झुक गया था.

उसे जगाने की इच्छा न हुई. उसे डिस्टर्ब करने की हिम्मत भी नहीं हुई.

पिंकी ने कहा—उसे गैस के गुब्बारे बहुत पसंद हैं. राजू ने कहा—उसे बाजा खरीदना है. राजू को मैंने बाजा दिलाया. पिंकी के लिए आधा दर्जन गैस के गुब्बारे खरीदकर मैंने डोर उसके हाथ में थमा दी. पिंकी खुश होकर उछलती-कूदती दौड़ी. मैं उसे रोकूं इससे पहले वह नील तक पहुंच भी गयी.

"मम्मी! मम्मी! मम्मी!"

बस, वह ज्यादा कुछ न बोली, बोलने की जरूरत भी नहीं थी. नील चौंककर गैस के गुब्बारे देखती रही. नील परेशान चेहरे से पिंकी की आंखों में झांकती रही. पिंकी की उंगली फिर उठी. नील की नजरें मेरी ओर, मेरे चेहरे पर, मेरी आंखों में दौड़ आयी, इस बार मुस्कराने की मेरी बारी थी. मैं मुस्कराया. उसने आंखें मिचमिचायीं.

मैं राजू के साथ उसके सामने आकर खड़ा हो गया. पिंकी गुब्बारों की डोर नील के हाथ में सौंपकर झूले की ओर दौड़ गयी. राजू उसके पीछे दौड़ा. पलक झपकते ही दोनों गायब भी हो गये.

"मैं बैठ सकता हूं?"

उसने सिर्फ इशारे से 'हां' कहा. मैं थोड़ा-सा फासला रखकर उसके पास बैठ गया. गुब्बारों की डोर पकड़े हुए वह खामोश बैठी थी. वह कुछ बोलती क्यों नहीं? शायद उलझन में होगी. मेरी चुप्पी भी मुझे खटकने लगी. धड़कनें पल पल तेज होती जाती थी.

नील ने धीरे से एक गुब्बारे की डोर अलग कर छोड़ दी. गुब्बारा हवा में उलट-पलट होता ऊपर चला गया. हम दोनों ऊंचे आकश में तैरते जाते गैस के गुब्बारे को देखते रहे. देखते ही देखते कलाबाजियां खाता गुब्बारा आंखों से ओझल हो गया.

नील ने दूसरे गुब्बारे की डोर अलग की. फिर तीसरे की. फिर चौथे की. एक के बाद एक सभी गुब्बारे आकाश में तैरने लगे. तैरते-तैरते ओझल होने लगे. हो गये. हमने आंखें झुकायीं एक दूसरे की आंखों में देखा. नील ने अपना चेहरा घुमा लिया. बाल चेहरे पर फैल गये. गर्दन मेरे सामने उभर आयी.

मैंने एक तिल देखा. दोनों कंधों के बीच गर्दन पर वह चिपका था. उस तिल को छूने की अपनी इच्छा को मैं रोक न सका. मैंने सिर्फ उंगलियों के पोर ही रखे और उसकी पूरी पीठ कांप उठी. धीरे-धीरे फिर उसका चेहरा मेरे सामने आया.

पिंकी कहीं से अचानक दौड़ती हुई आकर मेरी गोद में बैठ गयी. उसके पीछे आते हुए राजू से यह बर्दाश्त न हुआ. उसने जिद की. 'पिंकी को नीचे उतारो. मुझे अपनी गोद में बैठाओ.' मैंने उसे भी उठाकर अपनी गोद में लिया. दोनों मेरे एक-एक हाथ में समा गये.

शाम ढल गयी. नील बालों को ठीक करती खड़ी हुई. दोनों बच्चों के साथ मैं भी खड़ा हो गया. धीरे-धीरे चलते हम बगीचे से बाहर आये.

नील एक भी शब्द कहे बगैर मेरी कार की अगली सीट पर बैठ गयी. पिंकी पिछली सीट पर थी. राजू को भी मैंने उसके पास बैठाया. दोनों बच्चे खिड़की के एक-एक शीशे के पास खड़े हो गये. कार स्टार्ट कर मैं 'बीच रोड' की ओर दौड़ा गया.

नील अभी भी खामोश थी.

"तुम्हें कहां जाना है?" आखिर मुझे ही पूछना पड़ा. नील ने ग्लोब सिनेमा का पता दिया. 'पाईक्राफ्ट रोड' के कॉर्नर से कार दौड़ाते हुए मैं 'नोबल चेंबर्स' के पास आ पहुंचा. नील चुपचाप बाहर निकली. पिंकी को साथ लिया और सामने के मकान की सीढ़ियां चढ़ गयी.

अपनी कार स्टार्ट करने में मैंने थोड़ा वक्त लिया. इस दौरान मेरी आंखें 'नोबल चेंबर्स' पर टिकी रहीं. मैंने देखा, एक बंद फ्लैट में रोशनी होते ही खिड़की के शीशे रोशन हो गये. धीमे से खिड़की खुली. नील पल भर के लिए दिखायी दी और खिड़की वापस बंद हो गयी.

बैंड-स्टैंड पर जो मजा राजू को आज आया, वैसा पहले कभी नहीं आया. ऐसा उसकी चाल, उसका दमकता हुआ चेहरा कह रहा था.

घर से कब्र तक

मेरी उम्र

□ आबिद सुरती

मेरी उम्र आ... जितनी सोचते... होंगे उससे... थोड़ी ज्यादा ही है. मेरे बाल अब का... नहीं रहे. सच कहूं तो... बाल ही नहीं रहे... चमड़ी जले हुए कागज-सी हो गयी है. चेहरे पर कई टेढ़ी मेढ़ी झुर्रियां पड़ गयी हैं. आंखें अंदर और अंदर धंसती जाती हैं. डॉक्टर कहता है—मोतिया है. चश्मा बेकार हो गया है... आंखें भी कहां का... की रही है... वॉकिंग-स्टिक... लाल रंग लगवाने... दिन अब ज्यादा... नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मम्मी! मम्मी!" घर आकर उसने अंजु से कहा, "आज है न, मेरी एक दोस्त है न, पिंकी उसका नाम है न, वह बैंड स्टैंड आयी थी. पापा ने उसे इतने सारे गुब्बारे दिला दिये. फिर है न, हम खूब खेले, खूब दौड़े."

अंजु ने सवालिया नजरों से मेरी ओर देखा. मैंने उसके फूले हुए जिस्म को देखा. पिछले एक हफ्ते से अंजु नेचर क्योर ट्रीटमेंट ले रही थी. उसकी खुराक भी बदल गयी थी. दूध और मौसंबी के रस के अलावा वह दूसरा कुछ भी नहीं खा सकती थी. खाने की उसे जबर्दस्त इच्छा होती और यह मुझसे अनजान न रहता. वजह कि अंजु स्वभाव से पेटू थी.

पिछले कुछ दिनों से अंजु की एक शिकायत बढ़ती जा रही थी. वह कहती थी, अब मैं उससे पहले जैसा प्यार नहीं करता. डबल बैड पर सोये-सोये मैं सोच रहा था—अंजु की शिकायत गलत नहीं थी. मेरा उसके प्रति प्यार दिन-ब-दिन घटता जा रहा था. लेकिन उसकी वजह थी. दिन-ब-दिन उसका जिस्म फूलता जा रहा था उसका क्या?

अंजु में एक खूबी यह थी कि वह सोयी हो तब उसकी खुली आंखें देख कोई कह नहीं सकता था कि वह नींद में होगी! मैं सिर्फ तजुर्बे से कह सकता था.

तड़के मेरी आंखें खुलते ही मैंने फिर एक फ्रैश नजर उसके जिस्म पर डाली. अभी उसके खर्राटे जारी थे. उसका जिस्म बढ़ने के बाद उसकी नींद दुगनी हो गयी थी. थकान भी दुगनी लगती.

मैं नहाकर बाथरूम से बाहर निकला. शर्ट को पैंट में डालते हुए मेरी नजर ड्रेसिंग टेबल के आइने से सीधी अंजु पर दौड़ गयी. अभी भी वह सो रही थी. लेकिन जागते हुए. उसके हाथ में मेरा तकिया था. दोनों हाथों के बीच में भींचा हुआ.

आया ने राजू को तैयार किया. हम डायनिंग टेबल की कुर्सी पर बैठ गये. नाश्ते में राजू ने दूध और थोड़े बिस्किट और कॉर्न फ्लेक्स लिये. मैंने सिर्फ चाय पी.

अपने जूतों का फीता बांधकर मैंने ब्रश के दो हाथ मारे. राजू ने बस्ता उठाते अंजु को 'टाटा' किया. अंजु ने लेटे-लेटे ही मुस्कराने की कोशिश की और उसमें वह कामयाब भी हो गयी. हम नीचे आकर कार में जा बैठे.

दूर से नर्सरी का रंग नजर आते ही राजू के चेहरे का रंग बदलना शुरू हो गया. कैडबरी का मीठा स्वाद करेला हो गया. चुस्त जिस्म कमजोर पड़ने लगा. नर्सरी आने तक तो वह कठपुतला बन गया.

मैंने कार रोकी और उसने पहली सिसकी ली. हम कार से बाहर निकले और वह जोर-जोर से रोने लगा. रोना बढ़ता गया. चीखें बढ़ती गयीं. मैंने लाचार होकर उसे अध्यापिका के हाथ में सौंप दिया. एक नजर मैंने भीतर भी डाली.

अभी पिंकी नहीं आयी थी. मैं दीवार के सहारे खड़ा हो गया. आज मैं वक्त से दस मिनट पहले आ पहुंचा था. मैंने एक सिगरेट होंठों के बीच दबाकर लाइटर क्लिक किया.

पहली सिगरेट खत्म होने पर उसे जूते के नीचे मसल मैंने दूसरी जलायी,कोई मेरे पैरों से लिपट गया था. मैंने नजरें नीची कीं. वह पिंकी थी. उसके हाथ में कैडबरी रखते हुए मैंने नील के सामने नजर उठायी. नहीं, यह नील नहीं थी. पिंकी के साथ आया आयी थी. आया का बरसाती बादलों जैसा गहरा चेहरा देखकर मेरा चेहरा पीला पड़ गया.

नील आज क्यों नहीं आयी? एक के बाद एक सवाल उठते गये. गिरते गये. सिगरेट की राख झड़ती गयी. कार के पहिये गोल-गोल घूमते गये.

ऑफिस में पहुंचते ही स्टेनो ने डाक का पुलिंदा मेरे सामने रख दिया. मैंने कोट उतारकर हैंगर में लटकाया. कुर्सी पर बैठा और एक के बाद एक लिफाफा खोलने लगा. पुलिंदे में खत से ज्यादा मासिक पत्रिकाएं थीं. थोड़ी-सी विदेशी भी थीं.

दोपहर बाद ऑफिस में ज्यादा न रुक मैं कार में बैठा और सीधे घर की ओर दौड़ा गया.

राजू खिलौने की ट्रेन की पटरी जोड़ रहा था. कमरे के बीच में वह बैठा था. ट्रेन की पटरी उसके अतराफ गोलाकार में जुड़ गयी थी. इंजिन में चाबी भरकर उसने पटरी पर रख दिया. ट्रेन का सफर शुरू हो गया. ट्रेन पटरी पर गोल-गोल घूमने लगी. राजू ताली बजाने लगा.

मेरी जिंदगी भी इस ट्रेन की तरह गोल-गोल चक्कर काट रही थी. सुबह जहां से दिन शुरू करता था, रात को वहीं लौट आता था. दुनिया गोल है. मेरी जिंदगी गोल थी. अंजु का जिस्म भी गोल-मटोल था.

"उदयपुर से आपकी ट्रंक कॉल थी." अंजु ने आराम कुर्सी पर से कहा.

"कुछ खास?"

"आपकी मीटिंग उन्होंने शनिवार को रखी है."

शनिवार के बीच में अभी दो दिन बाकी थे. शुक्रवार को एक्सप्रेस से निकलने का मैंने तय कर डाला. कल गुरुवार था.

राजू सुबह उठकर मेरे साथ नर्सरी जाने के लिए चल पड़ा. कल की तरह आज भी वह खामोश था. नर्सरी का दरवाजा देख वह ऊधम मचायेगा इसका मुझे पूरा यकीन था.

दरवाजे में घुसते ही उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे. मुझे उसके चेहरे को नजरअंदाज करना पड़ा. मानो मैंने वे आंसू देखे ही नहीं थे. वह भी चुपचाप अंदर चला गया.

मेरी नजर आया के साथ आती पिंकी पर पड़ी. मेरे पैर उसकी ओर बढ़े. उसके हाथ में जल्दी से केडबरी का स्लेब थमा मैंने आया से पूछ लिया, "तुम्हारी मालकिन साथ नहीं आयी?"

उसने सिर्फ 'ना' कहा.

"तबीयत तो ठीक है न?"

घर से कब्र तक

मुखराम

दौलत थी तब लोग मिस्टर मुखराम कह-कर पुकारते थे. अच्छा लगता था. पर वे दिन ज्यादा न टिके. दौलत गयी और साथ में मेरे नाम को भी थोड़ी-सी 'ट्विस्ट' करती गयी. मुखराम, मूरखराम हो गया. अब तो मुझे न कोई कोई मुखराम कहता है न मूरखराम. माफ कीजिएगा, कोई कुछ कहता ही नहीं. मैं आऊं कि जाऊं. मैं खड़ा रहूं या बैठूं, मैं हंसूं कि रोऊं, किसी को जरा भी फर्क नहीं पड़ता. हां, कभी 'बूढ़ाऊ' जैसा शब्द कानों से टकराकर दिल के आरपार उतर जाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

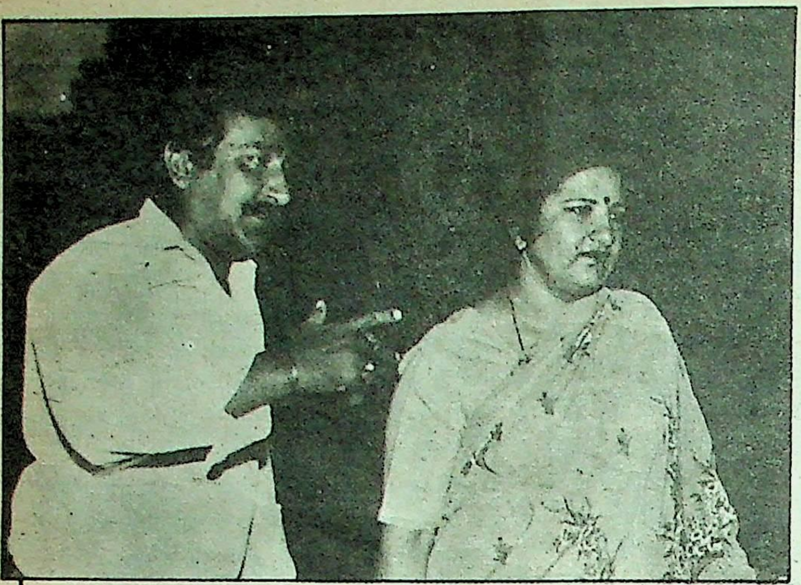

तड़के मेरी आंखें खुलते ही मैंने फिर एक फ्रैश नजर उसके जिस्म पर डाली. अभी उसके खर्राटें जारी थे. उसका जिस्म बढ़ने के बाद उसकी नींद दुगनी हो गयी थी. थकान भी दुगनी लगती.

"उसने कोई जवाब नहीं दिया. आखिर मैंने कह दिया, "शाम को मैं मिलने आऊंगा. संदेश दे देना."

एक भी शब्द कहे बिना आया वापस चली गयी.

सूरज ढलने से पहले ही मैंने अपनी अफलातूनी कार को गोलाबारी की आवाजों के साथ स्टार्ट कर नील के घर की ओर दौड़ा दिया.

'नोबल चेंबर्स' के सामने आते ही मेरी आंखें ऊपर उठ गयीं. नील के फ्लैट की खिड़कियां बंद थीं. अंदर की बत्तियां भी बंद होने की वजह से खिड़की के शीशे धुंधले लग रहे थे.

लिफ्ट में खड़े होकर मैं तीसरी मंजिल पहुंच गया. मेरे खयाल से यह सामनेवाला फ्लैट ही नील का था. पर... पर वहां ताला क्यों था? नील इस वक्त कहां गयी होगी?

मैंने पड़ोसी की डोरबैल के बटन पर उंगली रख दबायी दरवाजे खुलने पर एक प्रौढ़ आदमी हाथ में कोई पत्रिका लिये मेरे सामने खड़ा था. मोटे फ्रेम के चश्मे के पीछे से उसकी छोटी-छोटी आंखें मुझे गौर से निहार रही थीं. उसने सिर्फ बनियान और हाफ पैंट पहन रखा था.

"आपको किससे काम है?" मेरे कुछ पूछने से पहले उसने सवाल किया.

मैंने कहा, "नीलम से." और आगे जोड़ा, "आप बता सकते हैं, अभी वह कहां गयी होगी?"

"सॉरी जेंटलमैन!" उसने कहा, "वह तो फ्लैट खाली कर आज ही चली गयी."

उसके शब्द मेरी रीढ़ की हड्डी को कंपाते हुए लिफ्ट की रफ्तार से नीचे उतर गये. नील फ्लैट खाली कर चली गयी? इंपोसिबल! नामुमकिन! मुझे उसके शब्दों पर यकीन नहीं हो रहा था. मैंने उससे एक साथ कई और सवाल पूछ डाले. क्यों चली गयी? कहां चली गयी? उसका नया पता आप जानते हैं? वह मद्रास में ही है या शहर छोड़कर चली गयी?

उससे मुझे सिर्फ इतनी ही जानकारी मिली. नील के बारे में इस मकान में किसी के पास कोई जानकारी नहीं थी. वजह? सिर्फ चार महीने प[illegible] वह यहां रहने आयी थी.

बीच-रोड की सुनसान सड़क पर मेरी कार [illegible] बढ़ रही थी. कहां जाऊं? यह तय नहीं था. [illegible] कार आगे और आगे बढ़ रही थी. यह तय था, [illegible] मुझे जल्दी घर नहीं जाना था.

शहर की भयानकता में भी एक आकर्षण हो[illegible] इसका मुझे आज पहली बार एहसास हुआ. रात [illegible] अंधेरों में भी एक कशिश थी जो आज से पहले [illegible] कभी नहीं जानी.

रात का एक बज गया था. कल मुझे उदयपु[र] जाना था. तड़के एक्सप्रेस पकड़नी थी. अभी मैंने अपना सूटकेस भी तैयार नहीं किया था. मैं कार [illegible] की दिशा में दौड़ा गया.

उदयपुर की मुलाकात मैंने सोची थी उतनी कामयाब नहीं रही. ऊंचे तबके के अधिकारियों [illegible] सामने प्लान बिछाकर उनको समझाने की करीब-करीब सारी कोशिशें मैं कर चुका था. उ[illegible] मैंने यह भी बताया कि तैरता रेस्तरां मोबाइल [illegible] एक जगह से दूसरी जगह ले जाना मुमकिन हो[illegible] जरूरत पड़ने पर उसे पानी से बाहर भी निकाला [illegible] सकेगा. फिर भी उनके गले से मेरी बात नहीं उ[illegible]

दो दिनों की लंबी चर्चा के बाद हमारी मीटिंग [illegible] समाप्त हुई नतीजा? भविष्य में एक और मीटिंग [illegible] और वह आखिरी होगी. पिछली तीन मीटिंगों का [illegible] भी मुझे यही दिलासा देकर हुआ था.

इस बार मैंने धमकी दी कि अगर अगली मीटि[ंग] में फैसला नहीं निकला तो मैं अपनी योजना वाप[स] लूंगा. मेरी चेतावनी का असर उन पर ज्यादा न हुआ. वे गिलहरी की तरह हंसे और हंसते-हंसते [illegible] साथ लंच लिया. शाम की गाड़ी पकड़ मैं वापस मद्रास चला आया.

आज का सारा दिन मैंने इधर-उधर भटकक[र] बरबाद किया. लेकिन इसका मुझे दुख नहीं. मैंने [illegible] को देखा है. नील मद्रास में है. नील ने सिर्फ घर बदला है. किसलिए? इस सवाल का जवाब मेरे [illegible] नहीं. अचानक गायब हो जाने की वजह?

यही जानने के लिए मैं जुलूस चीरता पुलिस [illegible] कोर्डन तोड़ता, गिरता पड़ता, लोगों की गालियां खाता, सामने फुटपाथ तक दौड़ गया था. अगर तमिल सेना का जुलूस बीच में अड़ा न होता तो [illegible] आसानी से उस जामुनी साड़ी के कभी झलकते [illegible] छिपते टुकड़े तक पहुंच सकता था.

उदयपुर से आने के बाद पूरा महीना बीत [illegible] इस बीते महीने में जिंदगी की दौड़ के अ[illegible] बताने लायक और कुछ भी नहीं घटा. न [illegible] कैसे जिंदगी के इस रुटीन से मेरा जी परेशानी महसूस करता है. कभी इससे घबराकर मैं किसी कॉफी हाऊस में चला जाता हूं. घंटों तक अकेला [illegible] रहता हूं.

कॉफी पीकर मैं खड़ा हो जाता हूं. मेरा जी [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल्का हो गया है. मेरे सिर से एक बोझ उतर गया है. काउंटर पर बिल चुकाकर मैं कॉफी हाऊस से बाहर निकलने लगता हूं और मेरी नजर नील पर पड़ती है.

कुछ फासले पर वह किसी आदमी के साथ बैठी है. दोनों के बीच कॉफी के कप रखे हुए हैं. नील सिगरेट फूंक रही है. हां, सिगरेट ही है उसके हाथ में और वह भी किंग साइज.

धीरे-धीरे मैं नील की टेबल के सामने आकर खड़ा हो जाता हूं. "नील! नील!" यह होंठ खुल जाते हैं.

उसके पास बैठा आदमी कभी मुझे देखता है तो कभी नील को. नील उसके हाथ पर अपना हाथ रखते हुए मुझे कहती है, "ऐ मिस्टर! इस तरह आंखें फाड़-फाड़कर क्या देख रहे हैं.? न मेरा नाम नील है, न मैं आपको जानती हूं." आवाज भी वही है.

"नील!" मेरे होंठ खुल जाते हैं. "मुझे छल कर तुम्हें क्या लाभ होगा, यह तो मैं नहीं जानता. लेकिन मुझे इतना यकीन है कि जो नील कुछ पलों के लिए मेरी जिंदगी में आयी थी वह तुम ही हो! तुम ही पिंकी की मां हो और तुम..."

नील खुलकर हंस देती है, "मिस्टर!" और कहती है, "मैं कुंवारी हूं और जिंदगी भर कुंवारी रहने की मैंने कसम खायी है. आपको धोखा हुआ है. कृपा कर हमें हमारी कॉफी पीने देंगे तो मैं आपकी आभारी होऊंगी."

दोनों मेरे सामने देखे बगैर ही कॉफी के कप उठाकर घूंट-घूंट पी जाते हैं. मैं नील के चेहरे पर नजर गड़ाए ज्यों का त्यों बैठा रहता हूं. नील के साथ बैठे आदमी को मेरी मौजूदगी खटकती है.

पहली बार मैं उसकी तरफ नजरें घुमाता हूं. उसने टेढ़ी धारियोंवाले लाल स्वेटर पर कोट पहना है. कोट के सारे बटन खुले हैं. उसका चौड़ा सीना मैं साफ देख सकता हूं. उसके छोटे बाल, कई मुक्के खाकर चपटी हुई नाक, उभरे हुए चिकबोन से, वह कोई बॉक्सर होगा, इतना अंदाजा मैं लगा लेता हूं.

नील से मैं फिर सवाल करता हूं, "क्या नोबल चेंबर्स में तुम नहीं रहती थी?"

जवाब में वह सिगरेट का कश लेकर धुएं का गुबार मेरे चेहरे पर फेंकती है.

"मिस्टर!" बॉक्सर बोल उठता है, "आप पागलखाने से निकलकर तो नहीं आये न? अब एक भी लफ्ज बोले तो..."

जुमला वह पूरा नहीं करता. मैं समझ जाता हूं. अपनी कुर्सी से आहिस्ता-आहिस्ता खड़ा हो जाता हूं. मुझे कुछ याद आया है. मैं अचानक कहता हूं, "नील नाम की औरत की पीठ पर दोनों कंधों के बीच एक तिल था. जाने से पहले मैं एक बार वह तिल देखकर यकीन करना करना चाहता हूं."

नील चौंक जाती है. मैं जल्दी से कदम बढ़ाकर उसकी पीठ पीछे आता हूं. मैं उसके बाल उठा उसकी गर्दन पर नजर डालूं उससे पहले बॉक्सर अपनी कुर्सी से उठ मेरे जबड़े पर एक घूंसा जमा देता है.

जबड़े पर हाथ रख मैं खड़े होने की कोशिश करता हूं. बॉक्सर खड़े होने में मेरी मदद करता है. उसका इरादा मुझे दूसरा घूंसा जमाना है. उसका हाथ फिर ऊपर उठता है. मैं उसे रोक उसके पेट में एक लात जमा देता हूं. नील खड़ी हो जाती है.

चीते की फुर्ती से आगे बढ़ मैं तीन एक घूंसे और जमाता हूं. कॉफी हाऊस का माहौल तंग हो गया है. करीब-करीब सारी टेबलें खाली हो गयी हैं. लोग दीवार से सटकर खड़े हैं.

मैं एक आखिरी मुक्का मारकर उसे खामोश करता हूं. दीवार से टिककर खड़ा उसका जिस्म धीरे-धीरे फिसलता हुआ फर्श पर ढेर हो जाता है.

नील पर मैं एक सरसरी निगाह डालता हूं. जैसे कुछ हुआ न हो ऐसे वह सिगरेट फूंकती दीवार के सहारे खड़ी है.

दूसरे दिन मैं अपने सोलिसिटर के ऑफिस में पहुंच जाता हूं. यहां मेरी मुलाकात मिस्टर गुणवंत से होती है. गुणवंत प्राइवेट डिटेक्टिव हैं. विदेशों में प्राइवेट डिटेक्टिव हर नुक्कड़ पर दिखाई देते हैं. भारत में भी उनका वजूद होगा इसकी मुझे कल्पना नहीं थी.

सोलिसिटर को मैं पूरी जानकारी देता हूं. कानूनन मुझे मरीना बीच पर थोड़ी-सी जगह मिली है. समंदर के बीच तैरता रेस्तरां खड़ा करने की इजाजत मिली है. अब मुझसे यह गुंडागर्दी बर्दाश्त नहीं होती. अब तक मेरा डेढ़ लाख रुपया डूब चुका है.

"मिस्टर क्षितिज!" सोलिसिटर सिगार सुलगाते हुए मेरी ओर देखता है, "मछेरों के विरोध की वजह क्या है?"

"सही वजह यह है कि समंदर में तैरता रेस्तरां खड़ा होने पर मछेरों का तस्करी का धंधा बंद हो जायेगा."

गुणवंत हमारी बातें गौर से सुन रहा है.

सोलिसिटर फिर सवाल करता है, "मछेरों ने

नील चौंक जाती है. मैं जल्दी से कदम बढ़ाकर उसकी पीठ पीछे आता हूं. मैं उसके बाल उठा उसकी गर्दन पर नजर डालूं, उससे पहले बॉक्सर अपनी कुर्सी से उठ मेरे जबड़े पर एक घूंसा जमा देता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानूनन कोई कदम उठाया है?"

मैं 'हां' कहकर जोड़ता हूं, "उन्होंने यूनियन खड़ी की है और स्टे ऑर्डर लाने की तैयारी में हैं. वैसे भी मेरा कारोबार करीब-करीब बंद हो गया है."

"स्टे ऑर्डर आने दो. फिर कानूनन लड़ लेंगे."

"इससे पहले कुछ हो नहीं सकता?"

"पुलिस की मदद मिल सकती है."

फिल वक्त पुलिस का इंतजाम स्वीकार कर मैं खड़ा हो जाता हूं. मेरे साथ गुणवंत भी उठता है. हम दोनों साथ-साथ ऑफिस से बाहर निकलकर फुटपाथ पर उतर जाते हैं.

"आपको कहां जाना है?" मैं कार का दरवाजा खोलते हुए उससे पूछ लेता हूं. वह मुझे अन्नादुराई स्क्वेयर पर छोड़ने को कहता है. मैं उसे अपनी बगल की सीट में बिठाकर कार दौड़ा जाता हूं.

"आपको जल्दी तो नहीं?" कॉफी हाउस पर नजर पड़ते ही मैं कार की रफ्तार कम करता हूं. वह 'ना' कहता है.

कॉफी के एक-एक कप हमारे सामने रखे हुए हैं. मुझे बॉक्सर के साथ वाली फाइट अचानक याद आती है.

गुणवंत को मैं नील के बारे में बताता हूं. नर्सरी की हमारी पहली मुलाकात से आखिरी फाइट तक का वाकया उसे सिलसिलेवार सुनाता हूं. वह दिलचस्पी से सुनता रहता है. बीच-बीच में अपनी डायरी में कुछ नोट करता जाता है. नील का पुराना पता भी वह लिख लेता है.

"कहिए," मैं सवाल करता हूं, "इस केस में आप मेरी क्या मदद कर सकते हैं?"

"मुझे सिर्फ इतना जानना है. नील कौन है? क्या है? कहां है?"

"बस?" गुणवंत सिगरेट सुलगाते हुए मुस्कराता है,,"मैं आपको यह भी बताऊंगा कि वह क्या थी? कौन थी? कहां थी? उसके पूरे इतिहास की फाइल मैं आपकी टेबल पर तस्वीरों के साथ रख दूंगा. लेकिन इसके लिए कम से कम एक महीने का वक्त आपको देना होगा."

दूसरे दिन से मैं अपना स्वभाव बिल्कुल बदल लेता हूं. एक नया सहनशील आदमी बन जाता हूं. अंजु कुछ भी बोले, कितने भी कड़े लफ्जों में कहे, मैं सिर्फ मुस्करा देता हूं. ताकि उसे आगे कुछ बोलने का मौका न मिले. लेकिन उससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ा.

अंजु की दिमागी हालत सुधरने के बजाय दिन-रात बिगड़ती गयी. अब उसके रोजमर्रा के कार्यक्रम बदल गये हैं. रोज शाम को वह बेशर्मी से भेलपूरीवाले के पास दौड़ जाती है. रात को देर तक बालकनी में खड़ी रहती है. दोपहर तक बिस्तर में पड़ी रहती है. खाने के वक्त कहती है—भूख नहीं. बेवक्त आया को थाली परोसने का हुक्म देती है. कभी बाल बनाती है. कभी उसके बाल खुले ही रहते हैं. मुझे लगता है वह पागल हो जायेगी.

एक रात मैं बालकनी में जाकर उसके बगल में खड़ा हो जाता हूं. थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहकर शुरुआत करता हूं, "अंजु! कल इतवार है. राजू को मैं पुंडी-डेम ले जानेवाला हूं. तुम्हें हमारे साथ चलना पड़ेगा."

"और नहीं जाऊं तो?" वह सामने सवाल फेंकती है.

"मुझे दुख होगा."

"तुम्हारे साथ जाने से मुझे दुख होगा उसका क्या?"

"डार्लिंग, तुम्हें हो क्या गया है?"

"कुछ भी नहीं."

"क्या मैं तुम्हें प्यार नहीं करता? पति होने के नाते मैंने अपने फर्ज में कहीं कोई कमी रखी है? अंजु डार्लिंग, मुझे एक बार, सिर्फ एक बार बता दो कि तुम्हें क्या खटकता है और उस कांटे को मैं अपनी जिंदगी से हमेशा के लिए खींच बाहर करूंगा."

मेरे लफ्जों का असर मैंने जितना सोचा था, उससे कुछ थोड़ा ज्यादा ही होता है अंजु नाराज नहीं होती. तू-तड़ाक से जवाब भी नहीं देती.

"क्षितिज," उसके होंठ कांपते हैं, "कभी-कभी मैं भी यही सोचती हूं. एक पति अपनी पत्नी के लिए जो कुछ करता है, उससे ज्यादा तुम मेरे लिए कर रहे हो. फिर भी मेरा मन मुझे क्यों डंस रहा है? कुछ कमी, कुछ अधूरेपन का एहसास क्यों होता है? वह 'कुछ' क्या है? यह मैं खुद नहीं जानती. मैंने ऐसी कई औरतें देखी हैं जिनके पास कुछ नहीं. घर में खाने के लिए एक जून की रोटी भी नहीं. फिर भी उनके चेहरे, उनके जिस्म फीके नहीं लगते. वजह? जो 'कुछ' मैं चाहती हूं, वह उनके पास है. कभी मुझे ऐसा भी लगता है, मैं पागल हूं. क्योंकि मैं क्या चाहती हूं यह मुझेद खुद नहीं पता." कहते-कहते वह रो देती है.

मैं उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरता हूं. उसकी पीठ पर हाथ फेरता हूं. दोनों हाथों के बीच मुंह छिपाकर वह पलंग पर लेट जाती है. धीरे-धीरे उसकी गीली आंखें बंद हो जाती हैं. मैं देर तक जागता, सोचता रहता हूं.

मैं एक कमजोर इनसान हूं. मेरी सारी ताकत का मेल जीरो है. विशाल सागर को चित करने का गर्व भले ही मैं लूं, एक आम औरत का मन न पाने का अफसोस भी मुझे कम नहीं. सारी रात मैं करवटें बदलता पड़ा रहता हूं.

सुबह अंजु को लेकर मैं पुंडी डेम जाने के लिए चल देता हूं. राजू हम दोनों के बीच सीट पर खड़ा है. अफलातून तेजी से आगे बढ़ रही है. मैं पिकनिक के मूड में हूं. राजू का उत्साह भी कम नहीं. अभी तक अंजु अपना मूड माहौल से एडजस्ट नहीं कर पायी.

"पापा!" राजू पूछता है, "पिकनिक का कोई गाना नहीं सुनाओगे?"

"तू साथ गायेगा?"

घर से कब तक

रिटायर्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूम्रपान करने की इच्छा होने पर खलनायक जैसा डॉक्टर का चेहरा सामने आ जाता हो तो आप क्या करेंगे?

खासतौर से लंबे और उबाऊ दिन, आपके आसपास बनता अकेलेपन का गहरा घेराव, आपके सिर पर झूलते निराशा के बादल, आपके साथ-साथ दौड़ती लाचारी और आपके आगे-आगे दौड़ती मौत. मौत से आप मिल नहीं सकते. लाचारी के चंगुल से आप बच नहीं सकते. आप संघर्ष करें और आखिर थक कर नीचे गिर पड़ें. आप बेबसी से थोड़ी दूर बैठी और आपकी हालत पर हंसती मौत को दया की नजर से देखें. तब कहीं से भी कोई कहेगा—बूढ़े को मौत भी नहीं आती! इसे आप कौन-सी लाइफ कहेंगे? □

वह 'हां' कहता है. "मम्मी! आप भी गाओगी न?"

अंजु 'ना' नहीं कहती.

"रेडी?" मैं कहता हूं. "एक, दो और..." तीन कहने से पहले ही राजू शुरू हो जाता है:

"फोर्टीन ग्रीन बोटल्स, हैंगिंग ऑन द वॉल
इफ वन ग्रीन बोटल ऐक्सीडेंटली फॉल्स."

मैं और अंजु उसके साथ-साथ गाने लगते हैं:

"फोटींर्न ग्रीन बोटल्स, हैंनिंग ऑन द वॉल
इफ वन ग्रीन बोटल ऐक्सीडेंटली फॉल्स."

"थर्टीन ग्रीन बोटल्स..." राजू पूरी ताकत लगाकर ऊंची आवाज में चिल्ला रहा है. अंजु बीच में अटक-अटककर फिर शुरू हो जाती है. मेरे खयाल से गाने के बोल वह भूल चुकी है. मैं आखिर तक राजू का साथ देता हूं. गाना पूरा होते ही राजू तालियां बजाने लगता है.

अंजु उसे खींचकर अपनी गोद में बिठा लेती है. राजू का मन खिड़की के पास बैठने का है. अंजु खिसककर मेरे पास आ जाती है. मैं अपना बायां हाथ उसके गले में डाल देता हूं. मुझे सिर्फ एक हाथ से ड्राइव करता देख अंजु मेरा हाथ उठाकर वापस स्टीयरिंग पर रख देती है. उसकी यह हरकत मुझे अच्छी लगती है.

पुंडी डेम आने पर मैं फूलों से भरे बाग के सामने कार रोकता हूं.

राजू फूलों पर मंडरा रही एक तितली के पीछे दौड़ जाता है. हम दोनों दूब पर चद्दर बिछाकर बैठ गये हैं. अंजु की आंखों में आज से पहले मैंने कभी इतना प्यार नहीं देखा. उसकी आंखें किसी अनजानी रोशनी में जगमगा रही हैं.

मुझे एहसास होता है. जो 'कुछ' अंज की आंखों में है, वह मेरी आंखों में नहीं. उस 'कुछ' को मैंने रोशनी का नाम दिया है. लेकिन वह रोशनी नहीं. फिर भी कुछ चमक रहा है. कुछ जगमगा रहा है. शायद वह उसका प्यार हो. शायद वह उसके भीतर की चेतना हो. शायद वह उसका धड़कता दिल हो.

अंजु वही 'कुछ' अभी भी मेरी आंखों में खोज रही है. वह मेरे भीतर है फिर भी सतह पर क्यों नहीं आता?

"पापा! पापा!"

राजू के हाथ में तितली आ गयी है. वह दौड़ता हमारे पास आ रहा है. अचानक उसका एक पैर दूसरे पैर में उलझते ही वह—गुलांट खाकर दूब की चद्दर पर गिर पड़ता है. तितली उसके हाथ से छूटकर उड़ जाती है. वह उदास चेहरे से ऊपर और ऊपर जाती तितली को देख रहा है. मैं उसकी आंखों में आंसुओं की बूंदें देखता हूं.

उसे फुसलाकर अपनी गोद में लेते हुए अंजु कहती है, "राजू बेटा, बोल, हम लोग कौन-सा गेम खेले?"

"चोर-सिपाही." राजू तुरंत बोल उठता है. उसकी आंखों में दिखते आंसू उल्टे पैर दौड़ गये हैं.

"पापा!" वह कहता है. "मैं चोर हूं. मैं दौडूंगा. आप दोनों सिपाही मुझे पकड़ना."

राजू एक, दो और तीन कहकर दौड़ जाता है. हम दोनों आंख मिचौली करते मानो दौड़ न पा रहे हों ऐसे उसके पीछे चल रहे हैं. चलते-चलते मैं अंजु को गुदगुदी भी करता जाता हूं.

गुलमोहर का पेड़ आने पर राजू उसके इर्द-गिर्द घूमने लगता है. हम भी पेड़ के आसपास फेरे लेने लगते हैं. मुझे हमारी शादी के फेरे याद आ जाते हैं. वे फेरे मैंने गंभीरता से लिये थे. जबकि उस वक्त मेरी इच्छा इतनी ही रफ्तार से फेरे लेने की थी. मेरा बस चलता तो मैं अंजु को गुदगुदी कराते दौड़ा जाता.

"क्या हुआ?" अचानक तने को थाम अंजु खड़ी हो जाती है तो मैं पूछ लेता हूं.

थोड़ी देर तक वह खामोश खड़ी रहती है. हांफती रहती है, "सीने में थोड़ा-सा दर्द हो रहा है." ऐसी शिकायत भी वह करती है. मैं उसे सहारा देकर नीचे बैठा देता हूं. उसकी सांसें दोगुनी हो गयी हैं. वह लगातार गहरी सांसें ले रही है.

राजू उसके पास खड़ा होकर फटी-फटी आंखों से देख रहा है.

"क्या होता है, अंजु?" कुछ न सूझने पर मैं फिर पूछ लेता हूं.

वह पानी मांगती है. मेरे पैर कार की ओर तेजी से बढ़ जाते हैं. हमारा वॉटर बैग और टिफिन कार में ही हैं. तुरंत ही मैं वॉटर बैग के साथ वापस लौटता हूं. उसकी सांस मंद हो गयी है. मैं उसे दूब पर लिटाते हुए उसका सिर अपनी गेद में ले लेता हूं. घूंट-घूंट करके उसे पानी पिलाता हूं. चार घूंट से ज्यादा वह पी नहीं पाती. उसका धड़कता दिल रुक गया है. उसकी सांसें रुक गयी हैं. उसकी आंखें अब भी खुली हैं. लेकिन वह 'कुछ' जो उनमें रोशन था पिघल गया है. धीरे-से मैं उसकी पलकें गिरा देता हूं.

अंजु बगैर की जिंदगी मुझे उदासी से भरी और बोझिल लगती है. कमरे के घुटन भरे माहौल में एक बोझ तैरता है. यह बोझ कभी मेरे सिर पर आ बैठता है तो कभी मेरे कंधों पर. मैं डबल बैड में सोता हूं और यह बोझ मेरे सीने पर उतर आता है.

अंजु की मौत के बाद मैंने अपने रोजमर्रा के कामों में भी तब्दीली कर ली है. पहले मैं काम खत्म कर सीधा घर लौटता था. अब मैं घर से नफरत करता हूं. घर से जितना हो सके,दूर रहने की कोशिश करता हूं. अगर मेरी जिंदगी में राजू नहीं होता तो मैं घर वापस लौटने की सोचता ही नहीं.

राजू तैयार होकर मेरे पास आता है. राजू अब अपने हाथों से तैयार होना सीख गया है. अपने हाथों से नाश्ता भी कर लेता है.

हम दोनों नर्सरी पहुंच जाते हैं. राजू का रोना, राजू की शरारतें भूतकाल बन गये हैं. वह अब जिद भी नहीं करता. उसके सिर पर प्यार से हाथ फेर मैं उसे दरवाजे तक छोड़ आता हूं. वह चुपचाप दाखिल हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है. मैं बाहर आता हूं. मेरी कार मरीना बीच की ओर दौड़ जाती है.

शेड के बाहर पुलिस का पहरा बैठ गया है. पुलिस का संरक्षण होने पर भी ये कारीगर काम करने को तैयार नहीं. गुरखा अभी तक कैसे टिका है, यह मेरे लिए एक सवाल है.

"साहब!" वह कहता है, "अब तालपत्री की जरूरत पड़ेगी."

उसकी बात गलत नहीं. बरसात का मौसम शुरू होते ही शेड में पानी टपकना शुरू हो जायेगा. लकड़ी का अधूरा काम और जो कुछ फर्नीचर तैयार पड़ा है, वह कभी सड़ जायेगा. तैरता रेस्तरां तैरने से पहले डूब जायेगा.

शेड मुझे अभी से कब्रिस्तान लगता है. यहां का माहौल, यहां की खामोशी, यहां की आबोहवा, यहां के चप्पे-चप्पे में उदासी है. इसके बावजूद मैं काफी देर तक यहां बैठा रहता हूं. मेरी आज की जिंदगी और शेड में ज्यादा फर्क नहीं.

मैं दफ्तर में दाखिल होता हूं. दफ्तर में ज्यादा काम न होने से मैं कुर्सी की पीठ पर सिर टिकाकर आंखें मींच लेता हूं. बंद आंखों के सामने स्टेनो आकर खड़ी हो गयी है. वह अफसोस जताती है. मैं उसकी ओर देखे बगैर ही उसे दरवाजा दिखा देता हूं. टेलीफोन की घंटी बज उठती है. "हैलो?"

फोन सोलिसिटर का है. वह पूछ रहा है. "आज का टाइम्स पढ़ा?"

"कुछ खास?"

"क्या आप कुछ भी नहीं जानते?"

पिछले एक हफ्ते से मैंने कुछ भी नहीं पढ़ा. सोलिसिटर कहता है: "आज के टाइम्स में खबर छपी है कि आपके तैरते रेस्तरां की योजना सरकार ने कैंसल कर दी."

"अब?" मैं पूछता हूं.

"कोर्ट में लड़ लेंगे."

दूसरे दिन दफ्तर में दाखिल होते ही मेरी नजर गुणवंत पर पड़ती है. स्टेनो के पास बैठकर वह गप्पें लड़ा रहा है. पल भर के लिए उल्टे पांव वापस दौड़ जाने की इच्छा होती है. लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता. वह कमबख्त मेरे सामने बैठा है.

मेरे साथ केबिन में दाखिल होते ही वह औपचारिकता दिखाता है. "आई एम सॉरी." वह कहता है. "आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, यह जानकर मुझे वास्तव में दुख हुआ."

"आप महीने से पहले आ गये."

"काम पंद्रह दिन में खत्म हो गया." बताते हुए नील की फाइल वह मेरी टेबल पर रखता है. साथ में उसका बिल भी है. मैं फाइल को एक ओर खिसकाकर बिल उठाता हूं. पांच सौ रुपये मैंने उसे एडवांस दिये थे. हजार बाकी हैं. चैक साइन कर मैं उसके सामने रखता हूं. वह मेरा आभार मानता है.

कांपते हाथों से मैं लाल रंग के रिबन की गांठ खोलता हूं. फाइल खुल जाती है. उसमें पच्चीस से ज्यादा टाइप किये हुए पन्ने हैं. साथ में तस्वीरों ... एक लिफाफा भी है.

मैं एक कमजोर इनसान हूं. मेरी सारी ताकत का मेल जीरो है. विशाल सागर को चित करने का गर्व भले ही मैं लूं, एक आम औरत का मन न जीत पाने का अफसोस भी मुझे कम नहीं

संक्षिप्त में: नील एक बिखरे परिवार की बेटी ... भारत-पाक विभाजन के साथ उसके मां-बाप का बटवारा हो गया. कौन जाने उसकी मां कहां गायब हो गयी. पिता के साथ वह पाकिस्तान की सीमा ... दिल्ली आयी. उसके पिता बीवी के गम में पागल होकर गुजर गये. बनवारी लाल नाम के किसी ... के यहां वह पलकर बड़ी हुई. सत्रह साल की उम्र ... वह एक लड़के के साथ मद्रास चली आयी. कुछ महीने उस लड़के के साथ बिताकर वह फिर एक बार बेसहारा हो गयी.

तब से अब तक की उसकी जिंदगी कॉलगर्ल की थी. कभी वह होटल में रहती थी तो कभी फ्लैट लेकर. आखिरी पन्ने पर उसका आखिरी पता ... मैं फाइल बंद कर देता हूं. कुछ देर के लिए मेरी आंखें भी बंद हो जाती हैं. नील का भूतकाल जानने के बाद मुझे उससे नफरत न होकर हमदर्दी होती ...

नील मुझे दिलोजान से चाहती है. लेकिन उसकी आत्मा उसे मेरे पास आने से रोकती है. कचोटती ... उसकी जिंदगी कलंकित है! उसी जिंदगी में मुझे शामिल कर वह मुझे दुखी नहीं करना चाहती. ... ही सुख की खातिर, मेरी ही आबरू की खातिर वह मुझसे दूर-दूर-दूर चली गयी है.

ये सब जानने के बाद भी वह एक हकीकत से अनजान है. यारो, उसकी जिंदगी मैली है, उसका मन नहीं. उसके दिल में कहीं भी कोई छलकपट नहीं, दगा नहीं. उसके संस्कार किसी गिरी हुई औ... के नहीं. बस, सिर्फ एक मौके की उसे तलाश है. ... मौका मिलने पर जिंदगी फिर पवित्र हो सकती है. पाप धुल सकते हैं.

आज का मेरा कार्यक्रम राजू को नर्सरी छो... नील की खोज में जाने का है. नील का ... मेरी डायरी में लिखा है. नील की तस्वीरोंवाला लिफाफा मेरे कोट की जेब में है. नील के विचार मेरे दिमाग में घूम रहे हैं. नील मुझे पहचानने से इनकार तो नहीं करेगी? फिर किसी बॉक्सर से हाथापाई तो नहीं होगी? दिमागी तौर ... मैंने अपने आपको तैयार कर लिया है. हाथापाई ... लिए भी मैं पूरी तरह तैयार हूं. हाथापाई मेरी जि... है. मेरे जिस्म के घाव इसका सबूत हैं.

पौंडी बाजार रोड पर कार पार्क कर मैं अपनी डायरी में पता देखता हूं. एक सरसरी निगाह मक... पर डालता हूं. यह वही मकान है जिसकी तस्वीर मेरी जेब में है. मैं सीढ़ियां चढ़ जाता हूं.

दूसरी मंजिल के तीन नंबर के फ्लैट का बंद दरवाजा मेरे सामने है. डोर बैल की बटन दबाकर दरवाजा खुलने का इंतजार करता हूं. भीतर की धड़कनें अचानक बढ़ जाती है. न जाने क्यों मेरा जिस्म कंपकंपी महसूस करता है.

आहिस्ता से दरवाजा खुलता है. नील चौखट ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच फ्रेम होकर खड़ी है. उसकी आंखें, उसका चेहरा, उसके होंठ, खामोश हैं. एकटक हम एक दूसरे को देखते रहते हैं.

एक भी शब्द बोले बगैर वह अंदर की ओर कदम बढ़ाती है. मैं उसके पीछे दाखिल होकर बैठक के एक सोफे के पास खड़ा हो जाता हूं. वह मेरे सामने सिर झुकाकर एक कुर्सी के सहारे खड़ी है.

मैं शुरुआत करता हूं. ''पिंकी कहां गयी?''

''स्कूल.''

फिर लंबी और बेदर्द खामोशी हमारे बीच फैल जाती है.

''आपकी तबीयत कैसी है?'' नील ने शायद बॉक्सर के साथ हुई हाथापाई को मद्दे नजर रखते हुए यह सवाल किया होगा. मुझे जवाब देने की जरूरत नहीं लगती.

उसका चेहरा करुण हो जाता है. मुझे लगता है वह रो पड़ेगी. उसकी आंखों में गीलापन चमक रहा है. यह पानी की परत धीरे-धीरे शक्ल ले रही है. आंसुओं की बूंदें सिर उठा रही हैं. आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकल उसके गालों पर से नीचे बह रही हैं.

मैं खड़ा होकर उसके बगल की कुर्सी पर बैठ जाता हूं. अपने रूमाल से उसका भीगा चेहरा पोंछता हूं. मेरे गले में अपने दोनों हाथ डालकर वह खुलकर रो पड़ती है. प्यार से मैं उसकी पीठ थपथपाता हूं. वह रोती रहती है. सिसकियों से छलकती खामोशी फिर एक बार हमारे बीच दौड़ जाती है. बाकी रह जाती है, थोड़ी-सी ठंडी आहें और थोड़े से आंसू.

डोरबैल बजते ही वह संभल जाती है. दरवाजा खुलता है. पिंकी दौड़कर उसके हाथों में समा जाती है. पिंकी को गोद में लिये वह मेरे पास आती है. आया चुपचाप रसोई में चली गयी है. पिंकी मेरे चेहरे को एकटक देख रही है.

''पहचानती है, अंकल को?'' नील उसकी हैरत भरी छोटी-छोटी आंखों में देख पूछती है.

पिंकी तुरंत बोल उठती है, ''केड्बरी वाले अंकल.''

नील हम दोनों को अकेले छोड़ किचन में चली जाती है.

''पिंकी!'' मैं पूछता हूं, ''तेरी चाक्लेट में से मुझे हिस्सा नहीं देगी?''

''नहीं!'' वह बोल उठती है, ''यह... यह तो मेरे लिए है. नये अंकल ने दी है. कहा है, किसे भी न देना. मम्मी को भी नहीं.''

'नये अंकल' शब्द कानों से टकराने पर मेरी आंखें थोड़ी बेचैनी महसूस करती हैं. नील के ग्राहक, जिन्हें वह दोस्त भी कहती है, पिंकी के लिए 'अंकल' समान हैं. पिंकी के लिए मैं भी एक अंकल हूं. पिंकी की नजर में सभी अंकल बराबर हैं.

नील चाय के दो कप लेकर वापस आती है. पिंकी मेरी गोद से फिसलकर किचन में दौड़ जाती है. मैं और नील चाय के घूंट लेते हुए चुपचाप बैठे हैं. इस बार नील ही मौन तोड़ती है.

''क्षितिज!''

''हूं...?''

''अंजना के बिना राजू को सूना-सूना नहीं लगता?''

मैं चौंक उठता हूं. अंजना के स्वर्गवास की खबर नील तक कैसे पहुंची?

''किसने बताया?'' मुझसे पूछे बिना नहीं रहा जाता.

''एक डिटेक्टिव मैंने भी रोका था.'' जवाब देकर वह मेरी शक्ल टटोलती है. उसकी आंखें चुपके-चुपके हंस रही हैं.

घर पहुंचकर मेरे पैर दरवाजे में रुक जाते हैं. आया और राजू 'चोर सिपाही' खेलते हों, इस तरह डाइनिंग टेबल के आसपास दौड़ रहे हैं.

दूध का कप टेबल पर गिरा है. उसकी धार टेबल पर से बहती हुई फर्श पर टपक रही है. खाने की थाली उल्टी पड़ी है. सब्जी की प्याली का निशाना बनने के कारण दीवार पर चिपकी सब्जी नजर आती है. बाकी प्याली के साथ नीचे पड़ी है.

मुझ पर नजर पड़ते ही आया तुरंत मेरे पास दौड़ आती है. राजू उलटी दिशा में दौड़ जाता है. अब वह बिगड़े शहजादे की तरह दोनों हाथ कमर पर रखकर सामने की दीवार के सहारे खड़ा है.

''पापा!'' आया मुझसे कुछ कहे, इससे पहले वह चिल्लाता है, ''मैं दूध नहीं पीऊंगा! नहीं पीऊंगा! नहीं पीऊंगा!''

आगे बढ़कर मैं उसके सामने घुटनों के बल बैठ जाता हूं. ''बेटा राजू!'' अपने दोनों हाथों के घेरे में लेकर मैं उसे प्यार से पूछता हूं, ''मैं पिलाऊं तो पीयेगा.?''

वह साफ 'ना' कहता है.

राजू को मैं कोल्डड्रिंक हाउस में ले जाकर दो गिलास मिल्कशेक का ऑर्डर देता हूं. राजू खामोश बैठा है. लेकिन उसके भीतर काफी उलझनें फैली हों, ऐसा उसका चेहरा जाहिर करता है.

मिल्कशेक के दो गिलास हमारी टेबल पर आने पर राजू के सामने मैं एक गिलास खिसकाता हूं.

''पापा!'' वह कहता है, ''आप मुझे रोज रात में यहां क्यों नहीं लाते?''

''कल से तुझे रोज ले आऊंगा.''

''पापा, आप बहुत अच्छे हैं.''

''राजू!'' मैं फिलोसफी झाड़ता हूं, ''हम भले हों तो हमें सभी लोग भले लगेंगे.''

वह बोल उठता है, ''अपनी आया अच्छी नहीं.वह मुझे गोद में बिठाकर दूध नहीं पिलाती.''

मैं खामोश हो जाता हूं. राजू के चिड़चिड़ेपन और जिद की सही वजह अब मेरे सामने आती है. राजू को मां की जरूरत है. आया अपनी मर्यादा में सब कुछ करती थी. फिर भी आया, आया होती है. मां, मां होती है.

''राजू!'' मिल्कशेक का गिलास खत्म करके मैं

नील मुझे दिलोजान से चाहती है. लेकिन उसकी आत्मा उसे मेरे पास आने से रोकती है. कचोटती है. उसकी जिंदगी कलंकित है. उसी जिंदगी में मुझे शामिल कर वह मुझे दुखी नहीं करना चाहती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खामोशी तोड़ता हूं, "मैं तेरे लिए एक बढ़िया-सी मम्मी ले आऊं तो तुझे खुशी होगी?"

जवाब में वह सिर झुकाकर रो पड़ता है. मम्मी के बिना उसकी जिंदगी वाकई सूनी है. मुझे उसकी सूनी जिंदगी में फिर खुशियां भरनी होंगी. मुझे दूसरी शादी करनी होगी.

दूसरे दिन राजू को नर्सरी छोड़ मैं नील के घर पहुंच जाता हूं. पिंकी के लिए आज मैंने ढेर सारे खिलौन खरीदे हैं. साथ में कैड्बरी लेना भी मैं भूला नहीं. दरवाजा खुलते ही नील का मुस्कराता चेहरा मेरे सामने आता है. सभी पैकेट तिपाई पर रखकर मैं सोफे पर बैठ जाता हूं.

नील मेरे सामने खड़ी है. बालों में कंघी फेर रही है. खिलौनों के पैकेट मैं एक के बाद खोलता जाता हूं. चाबीवाले बंदर में चाबी भरता हूं. बंदर तालियां बाजाता तिपाई पर नाचने लगता है. गुड़िया कमर हिलाने लगती है. बैंड मास्टर बाजा बजाता है. मोटर तिपाई से कूदकर कछुए की तरह उलटी पड़ी है. ट्रेन को मैं फर्श पर रखता हूं. पटरी बिना ही वह बाल्कनी तक दौड़कर उलट जाती है.

नील मेरी हरकतों को बच्चे की मासूम निगाहों से देख रही है, "अभी कुछ बचा है?" जेब से चॉकलेट निकालकर मैं उसके सामने करता हूं.

मेरे हाथ से चॉकलेट लेकर वह तिपाई पर रख देती है. फिर खुद भी मेरे सामने सोफे पर बैठ जाती है, "इन सबकी जरूरत थी?"

मैं सिर्फ इशारे से 'हां' कहता हूं. "नील!" और बोलता हूं, "तुम्हें कभी ऐसा लगा है कि किसी को तुम्हारी भी जरूरत है?"

एकटक वह मेरी आंखों में देख रही है. उसकी पलकें बार-बार खुलती गिरती जाती हैं, "किसे जरूरत है?" वह पूछ बैठती है.

"राजू को." मैं बोल उठता हूं, "मेरे राजू को एक ऐसी मां की जरूरत है जिसकी आंखों से प्यार छलकता हो. जिसका चेहरा ममता से भरा हो. जिसका बदन सुडौल और सपनों में रंगा हो. जिसकी गर्दन सुराही जैसी हो. जिसकी कमर का होना न होना, दोनों बराबर हों. जिसकी मीठी आवाज मेरे सूने घर को फिर हंसता-गाता कर दे. नील, तुम ये सब कर सकोगी, इसमें मुझे जरा भी शक नहीं.

नील अभी खामोश बैठी है. स्थिर नजरों से मेरी आंखों में देख रही है. उसने सपने में भी सोचा न होगा कि अरेबियन नाइट का कोई राजकुंवर अपनी अफलातून कार में सवार होकर उसके द्वार आयेगा.

"क्षितिज!" उसके होंठ खुलते हैं, "मुझे एक रात सोचने का वक्त दें."

अगले दिन चम-चम करती मेरी अफलातून आसानी से दौड़ती बड़े-बड़े रास्तों को पार करती, पोंडी बाजार रोड पर आती है. हाथ में साड़ी का पैकेट दबाकर झटपट सीढ़ियां चढ़ ऊपर आते मुझे ज्यादा देर नहीं लगती.

आया मेरे सामने खड़ी है. वह मुझे बैठने के लिए कहती है. मैं अंदर दाखिल होकर सोफे पर बैठ जाता हूं. नील बाल संवारती मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है. थोड़ी देर बाद बैठ भी जाती है. हम दोनों खामोश हैं. आज की चुप्पी मुझे न जाने क्यों खटकती है.

उसकी नजर तिपाई पर पड़े पैकेट पर पड़ती है, "इसमें क्या है?"

मैं सिर्फ 'साड़ी' ही कहता हूं.

"जामुनी?"

"बिलकुल सही." फिर जोड़ता हूं, "तुम्हारे घर खाली हाथ न आने की मुझे आदत-सी हो गयी है."

वह हंस देती है. टेलीफोन की घंटी बज उठती है.

"हैलो?" रिसीवर कान से लगा वह शुरुआत करती है, "आज नहीं, नहीं. नहीं... मिस्टर साहनी... कभी नहीं, भूल जाइए." बेदर्दी से क्रेडल पर रिसीवर पटक वह मेरे सामने देखती है.

मैं मतलब की बात पर आता हूं, "चौबीस घंटे पूरे हुए!"

"हूं."

"क्या सोचा?"

"काफी कुछ."

"फिर?"

"जवाब में ना मिली."

अचानक मुझे अपने आप से ही नफरत हो जाती है. मुझे लगता है. जिंदगी मजाक नहीं. मुझे उसे उसके गंभीर रूप में स्वीकारना होगा. मुझे अपने जरूरत से ज्यादा आशावादी स्वभाव को सुधारना होगा. उम्मीद का एक जर्रा दिखते ही मैं उम्मीदों की इमारत खड़ी कर देता हूं. ये जर्रे बिखर जाते ही इमारत भी धंस जाती है और तब मुझे काफी पीड़ा होती है.

उसकी आंखें मेरी आंखों में घुसकर भीतर के राज जानने के लिए जूझ रही हैं. वह जान गयी है. इस वक्त मेरा दिल चुपके-चुपके सिसक-सिसककर रो रहा होगा.

"क्षितिज!" अपनी आंखों को फैलाकर वह दबी आवाज में फिर कहती है, "आपकी भलाई सोचने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंची हूं."

"मैं भी कैसा बेवकूफ आदमी हूं. "मेरे होंठों पर फीकी मुस्कान उभरती है, "अपनी भलाई भी मैं खुद नहीं समझता."

मैं खड़ा होकर धीरे-धीरे दरवाजे की ओर बढ़ाता हूं.

"नील!" मेरे पैर दरवाजे तक आकर रुक गये हैं, "हमेशा तुम मेरी भलाई चाहती आयी और मैं तुम्हें चाहता आया. तुम मुझसे दूर-दूर भागती रही और मैं तुम्हारे गरीब आता गया. इतना करीब कि मैं तुम्हें राजू की मां के पवित्र रूप में देखने लगा. मगर नहीं. कई मर्दों की सांसों से खेलनेवाली औरत को एक मर्द का प्यार कैसे खुश कर सकता है."

मेरी पीठ पीछे उठनेवाली सिसकियां मैं सुन सकता हूं. "बस, मुझे और कुछ नहीं कहना. हां, इतना

खोली में...

कहीं तो रह... चाहिए न! ... मुसीबत ... इस जिंदगी की नहीं ... इसके बाद ... परेशानी है. जीवन ... मुक्ति न मिली ... वापस कमरा ढूंढने ... लिए आना पड़ता है ... किसी के भीतर ... बसाना पड़ता है ... ओखा मिर्ची का ... देकर भगा दे ... वापस नया घर ढूंढने ... की चिंता. यह तो ऐसे ... ही चलता रहता है ... डरें नहीं. मेरी आत्मा ... की अवगति नहीं ... मिलेगी इसका ... यकीन है. इस दुनिया ... में मैंने किसी का ... बिगाड़ा नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूर कहूंगा. गुडबाय एंड गुड लक.'' नील फफककर रोने लगती है. मैं सीढ़ियां उतर जाता हूं.

मेरी कलाई घड़ी में दोपहर के साढ़े बारह बजे हैं. कहां जाऊं! घर पहुंचूंगा और राजू मुझसे पहला ही सवाल करेगा—'पापा, मम्मी कहां है?' मैं क्या जवाब दूंगा?

मैं चुपचाप मरीना बीच चला जाता हूं. चौकीदार गुरखा शेड के गेट पर बैठा-बैठा बीड़ी फूंक रहा है. मैं अंदर दाखिल हो जाता हूं. अंदर वीराना है.

शेड को खाली करने की मुद्दत पूरी हो चुकी है. उसके बाद दो और नोटिस मिल चुके हैं. इस हफ्ते में मैं अपने बनाये हुए सपने को अपने हाथों टुकड़े-टुकड़े कर समंदर में नहीं बहाऊंगा तो नगरपालिका के कसाई आकर उसकी कब्र यहीं खोद देंगे.

मैं थोड़े से कागज जलाकर इमारत के एक हिस्से के नीचे रखता हूं. थोड़े से और कागज जलाकर दूसरे कोने में फेंकता हूं. धीरे-धीरे लकड़ियां सुलगने लगती हैं. शोर मचाती हवा आग की लपटों को थोड़ी ही देर में चारों ओर फैला देती है. गुरखा ''आग-आग'' चिल्ला रहा है. मैं पिछले दरवाजे से खिसककर बाहर निकल जाता हूं.

लोग दूर-दूर से दौड़कर आग देखने आ रहे हैं. चारों ओर के मकानों की खिड़कियों और बाल्कनी में खड़े परिवार हैरत से देख रहे हैं. फुटपाथ से दूर हजारों की भीड़ इकट्ठी हुई है. तमाशा है, यारो. मेरे सुलगते दिल का तमाशा और भीड़ से दूर रेत में बैठा-बैठा मैं सिगरेट के कश ले रहा हूं.

जीने के लिए मेरे पास एक ही वजह है और वह है राजू. जिंदगी में राजू न होता तो शायद अब तक मेरे शेड की तरह मैं भी जलकर राख हो जाता. शायद मैंने नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या कर ली होती.

ऐसे डरावने विचार सूरज की किरणों के साथ आकर मुझे घेर लेते हैं. मैं घबराकर किसी दोस्त की खोज में निकल पड़ता हूं. किसी भी दोस्त के साथ बैठ, देर तक शराब पीता हूं. दोस्त न मिलने पर मैं अकेला ही 'बार' में चला जाता हूं.

शराब मैं अपना दुख भुलाने के लिए नहीं पीता.

मेरा रोजमर्रा का टाइम टेबल अब पहले जैसा नहीं रहा. मैं रोजाना दफ्तर जाता था. अब शायद ही जाता हूं. कभी चंद मिनटों के लिए तो कभी घंटों के लिए. घंटों बैठा-बैठा सोचा करता हूं टेलीफोन की घंटी बज उठती है क्षितिज! तुम्हारे शेड में आग लग गयी, यह जानकर दुख हुआ. हरेक फोन करनेवाला शख्स इसी एक जुमले से शुरुआत करता है. मैं रिसीवर को वापस क्रेडल पर रख देता हूं.

उन दोस्तों से जरूर बातें करता हूं, जो इसके अलावा किसी और विषय पर चर्चा करना चाहते हों. मसलन, आज रात एल्फिंस्टन थियेटर में जाऊंगा या कैबरे देखने? आज वहां बैठकर शराब पीनी है? आज किसी तवायफ के कोठे पर जाने का विचार है या नहीं?

रात बीत जाती है. सुबह घर पहुंचता हूं. आया मुझे अजीब नजरों से देखा करती है. मेरे जीवन में आये परिवर्तन ने उसे चौंका दिया है. वह मुझे बहुत कुछ कहना चाहती है लेकिन मेरे सामने उसकी जबान नहीं खुलती. आजकल राजू का सारा बोझ उसके सिर आ गया है. राजू के प्रति अपने फर्ज में मैं अधिक लापरवाह हो गया हूं. मेरे नशे की वजह भी अब वह नहीं रहा.

दफ्तर में मैं झोंके ले रहा हूं. स्टेनो उबासियां ले रही है. चपरासी कहीं गायब है. शायद वह टेरेस पर बैठी मेहतरानी के साथ बीड़ी फूंकता होगा. यह स्टेनो, भी क्यों कहीं चली नहीं जाती? यहां क्या काम है उसके लिए?

टेलीफोन की घंटी बज उठती है. हाथ बढ़ाकर मैं रिसीवर उठाता हूं, ''हैलो?''

फोन किसी दलाल का है. पूछ रहा है, ''आज रात का क्या कार्यक्रम है?''

मैं कहता हूं, ''कुछ भी नहीं.''

वह कहता है एक लड़की का उसने इंतजाम किया है.

शाम को मुझे लेने वह दफ्तर आ पहुंचता है. उसके आने की वजह उसका अपना डर है. कहीं शाम का अपाइंटमेंट मैं भूल गया तो उसका ठोस कमीशन डूब जायेगा.

रात ग्यारह बजे से पहले ही वह मुझे होटल में ले आता है. नशे में लड़खड़ाता मैं एक ओर खड़ा रहता हूं. वह काउंटर पर जाकर मेरा रूम नंबर पता कर आता है. मैं उसके कमीशन के सौ रुपये एडवांस देता हूं. बीस के पांच नोट गिनता वह बाहर निकल जाता है. मैं लिफ्ट में दाखिल होता हूं. होटल नौ मंजिला है. मुझे जिस रूम में जाना है. वह नौवीं मंजिल पर है. नौवीं मंजिल प्यार करने से आत्महत्या करने के लिए ज्यादा बेहतर होती है.

मैं दरवाजा खटखटाता हूं. तुरंत ही दरवाजा खुल जाता है. एक लड़की मेरे सामने खड़ी है. आकर्षक है. जवान है. खूबसूरत है. सुडौल भी है. उसकी आंखें नील की आंखों से मिलती हैं. उसका चेहरा भी नील जैसा है. उसके बाल कटे हुए और कंधों पर बिखरे हैं.

मैं आंखें मिचमिचाता हूं. दस पैग का नशा उतर जाता है. मैं साफ देखता हूं मिनी स्कर्ट में नील मेरे सामने खड़ी है. हम दोनों एक दूसरे के चेहरों को चौड़ी आंखों से देख रहे हैं. हम दोनों अजीब हालात के शिकार हुए हैं और इस बात का हमें एहसास है.

नील पीठ फेरकर, धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई डबलबैड के किनारे बैठ जाती है. मैं दरवाजा बंद कर दरवाजे के सहारे वहीं खड़ा रह जाता हूं. उसकी आंखें सूनी दीवारों को घूर रही है. उन..: उन आंखों में मैं पानी देखता हूं. आंसुओं की बूंदें आकार लेकर

एहसास

वही शाम. वे ही रंग. वही डूबता सूरज. वही चहलपहल. वही लंबी परछाईयां. वे ही सिर पछाड़ती मौजें. वही गर्जन. इन सबका मैं मजा नहीं ले सकता. कुछ-कुछ कल्पना कर सकता हूं. दिन पर दिन मेरी सोचने की ताकत कमजोर होती जा रही है. अब मैं पहले की तरह लफ्जों को बुन नहीं सकता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरे की दोनों ओर बह जाती है. मुझे हैरत होती है. नील रो रही है.

अचानक वह भीगा चेहरा मेरे सामने करती है. भीगी आंखें सीधी ही मेरी आंखों में उतर जाती हैं, "आपने मुझे खरीदा है. अब सोचना क्या?"

"जिस्म की खोज में मैं यहां नहीं आया."

"कॉलगर्ल से कोई दिल की उम्मीद नहीं रखता."

"रो क्यों रही हो?"

"मुझे यहां किसलिए बुलाया?"

"किस्मत में शायद..."

"मेरा मजाक उड़ाने?" मेरे जवाब की परवाह किये बगैर वह बोलती जाती है, "मैंने शादी के लिए इंकार किया इसलिए? मुझे जलील करने? मुझे अपनी दौलत की ताकत दिखाने?"

"नील!" मैं उसे रोकता हूं. "यह तुम्हारी गलतफहमी है." आगे बढ़ मैं डबल बैड पर बैठ जाता हूं, वह मेरे करीब बैठी है. खामोशी उतर आती है. हौले से वह मेरी गोद में सिर रखकर पैर पसार लेती है. देर तक वह चुपचाप लेटी रहती है. मैं उसके घुंघराले बालों से खेलता रहता हूं.

बैरा कॉफी के दो कप के साथ दाखिल होता है. अब नील दीवार की टेक लगाये बैठी है. उसके दोनों हाथों ने घुटनों को बांध रखा है.

"क्या सोच रही हो?" नये सिरे से मैं शुरुआत करता हूं."

"जिंदगी के बारे में." उसकी आवाज खोयी-सी है, "कहां जन्म हुआ. कहां पली. क्या बनने के अरमान थे. क्या बन गयी."

मैं ध्यान से सुनता हूं. मुझे उसकी बातों में दिलचस्पी है. कॉफी का एक कप उठाकर उसके सामने रखते हुए मैं फिर सवाल करता हूं, "क्या सोचा था?"

"सोचा तो काफी कुछ था. बचपन से ही नर्सिंग की ओर था. लेडी डॉक्टर बनने की इच्छा थी. लेकिन हम सोचते कुछ हैं और किस्मत में कुछ और ही लिखा होता है.

"भारत-पाक का बटवारा हुआ. तब हम लाहौर में रहते थे. लाहौर छोड़ना पड़ा. जहां जन्म हुआ वह जन्मभूमि छोड़ अमृतसर जाती ट्रेन में हम चढ़ बैठे. अचानक पापा को खयाल आया. मम्मी हमारे साथ नहीं थीं. न जाने भीड़ में वह हमसे कब बिछुड़ गयी. ट्रेन चल चुकी थी.

"पापा के साथ मैं दिल्ली आयी. दिल्ली में मेरे अंकल का घर था. हम उनके यहां ठहरे. उनके भरोसे ही हम दिल्ली आये थे. पापा की हालत अजीब हो गयी थी. बीवी की जुदाई वे झेल न सके. दिमागी तौर पर वे बीमार होते गये. आखिर पागल होकर मर गये.

"आर्थिक रूप से मेरे काका ठोस नहीं थे. एस.एस.सी. तक मैं पढ़ सकी. कॉलेज में भर्ती होने के मेरे सपने भीतर ही रह गये. फिर भी मैं निराश नहीं हुई. मैंने नर्सिंग का कोर्स किया और एक सार्वजनिक अस्पताल में भर्ती हो गयी."

'नये अंकल' शब्द कानों से टकराने पर मेरी आंखें थोड़ी बेचैनी महसूस करती हैं. नील के ग्राहक, जिन्हें वह दोस्त भी कहती है, पिंकी के लिए 'अंकल' समान हैं. पिंकी के लिए मैं भी एक अंकल हूं.

"फिर।"

"फिर.... एक डॉक्टर से प्यार हो गया. मैं बेवकूफ की तरह उसके पीछे पागल बनी थी. मेरे भोलेपन का फायदा उठाकर वह मुझे मद्रास ले आया. यहां काफी रंगीनी थी. एक के बाद एक कीमती शराब की बोतलें खुल रही थीं. युवक, युवतियां खुलकर पी रहे थे. जिंदगी में पहली बार मैंने व्हिस्की का स्वाद चखा, इच्छा न होने पर भी मुझे थोड़ी-थोड़ी पीनी पड़ी. और उसके कई कारण थे.

"पहला यह कि मेरा बॉय फ्रेंड चाहता था. दूसरा यह कि सभी पी रहे थे तीसरा यह कि मुझे दूसरी युवतियों की तरह दिखावा करना था: नये समाज में नये तरीके से जीना मैं भी जानती हूं. धीरे-धीरे हमारे बीच का फासला बढ़ता गया. एक साल साथ रहने के बाद मैंने इतना तो जान लिया था कि मेरा बॉय फ्रेंड मुझे चाहता नहीं. फिर... फिर तो मैं अकेली ही पार्टियों में जाने लगी. मेरे संपर्क बढ़ते गये. बढ़ते-बढ़ते नया रूप लेते गये. मुझे बुलाने के लिए अब पार्टी की जरूरत नहीं थी. बस, थोड़े से नोट और थोड़ी-सी शराब चाहिए.

"शराब की आदत तो मैंने छोड़ दी. लेकिन नोटों को भुलाना मुश्किल था. डॉक्टर को छोड़ने के बाद मैं एक होटल में रूम लेकर अकेली ही रहने लगी. पिंकी मेरे पेट में पल रही थी. और उसके लिए मुझे नोटों की जरूरत थी. आज तक वह जरूरत पूरी नहीं हुई. जब तक पिंकी शादी करके किसी अच्छे परिवार में नहीं चली जाती, मुझे ऐसे ही जीना होगा."

नील खामोश हो गयी है. उसकी आंखों में खालीपन उतर आया है. उसके सामने वीरानी छलक उठी है. उसके चेहरे पर उदासी फैल गयी है.

"नील!" मुझसे एक सवाल पूछे बिना नहीं रहा जाता, "अगर तुम्हारी जिंदगी ऐसी ही रही तो पिंकी का भविष्य तुम कैसे सुधार सकोगी?"

"मैं उसे बोर्डिंग स्कूल भेजने की फिराक में हूं. उसके रहने और पढ़ने की व्यवस्था वहां है."

"सही." मैं कहता हूं, "लेकिन एक दिन तो उसे पता चलेगा ही कि उसकी मां यानी कि तुम कौन हो क्या हो? क्या तुम्हें यकीन है, अपने आपको तुम उसकी नजरों में पवित्र रख पाओगी."

"क्या करूं?"

"जिंदगी बदल डालो."

"यह कहना आसान है."

"और करना भी मुश्किल नहीं." मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूं, "तुम्हारी परेशानी मैं समझ सकता हूं, नील, इसीलिए कहता हूं. तुम्हारी और पिंकी की जिम्मेदारी की फिक्र आज से मेरी है. मेरी दौलत का सही उपयोग हो सके, उससे ज्यादा खुशी की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है?"

नील सोच में पड़ जाती है. वह मेरे सिर पर बोझ बनना चाहती नहीं होगी इसकी मैं कल्पना कर सकता हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नाल!" मैं फिर विनती करता हूं, "मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूं. तुम दोनों को जहां रहना हो वहां रहो. लेकिन सुखी रहो."

नील की जिंदगी नयी धुरी पर चढ़ने की कोशिश कर रही है. जाले के सहारे चढ़ती मकड़ी की तरह वह चढ़ती है. गिरती है. फिर वह नयी कोशिश शुरू कर देती है. उन कोशिशों से झांकती भावनाओं से मैं अनजान नहीं.

रोज शाम हम दोनों मिलते हैं.

नील कहती है: नयी जिंदगी उसे अब तक रास नहीं आयी. मैं कहता हूं: धीरे-धीरे रास आ जायेगी. जिंदगी गलत रास्ते पर चलने के लिए वक्त नहीं लेती, सही रास्ते पर आने के लिए लेती है.

किचन से नील मेरे लिए एक कप चाय लेकर आती है. गर्म-गर्म चाय के मैं घूंट भरता हूं. नील फिर कहती है, कभी-कभी उसे ऐसा लगता है जैसे वह किसी बंधन में बंधती जा रही हो. उसकी जिंदगी सिकुड़ती जा रही हो. उसकी सीमाएं मर्यादित होती जा रही हों.

मैं फिर जवाब देता हूं: उन मर्यादाओं में बसी बेतहाशा खुशी को वह एक दिन जान सकेगी. लूट सकेगी. मुझे इसमें जरा भी शक नहीं.

चाय के घूंट पर घूंट भरता हुआ किसी महात्मा की तरह मैं भाषण झाड़ रहा हूं. हजारों की भीड़ मेरे सामने बैठी हो, ऐसा धोखा होता है. शक यह भी है इतनी अकलमंदी मुझमें कहां से आयी?

हम रविवार का कार्यक्रम बनाते हैं. बहुत दिनों से मैं पिकनिक पर नहीं गया. राजू ने भी इस बारे में एक से ज्यादा बार मुझसे शिकायत की है. हम पुंडी डेम जाने का तय करते हैं.

रविवार की सुबह मैं राजू को लेकर नील के घर के नीचे आ पहुंचता हूं. नील खिड़की में तैयार खड़ी है. फौरन वह पिंकी के साथ नीचे आ जाती है. आज उसने गहरे जामुनी रंग की वही साड़ी पहनी है जो मैंने उसके लिए खरीदी थी.

पिंकी को देखते ही राजू रंग में आ जाता है. नील को मैं अपने पास बैठाता हूं. दोनों बच्चे पिछली सीट पर बैठे हैं. कार स्टार्ट होकर गोला-बारूद फोड़ती आगे बढ़ जाती है.

"पापा! पापा!" राजू कह रहा है, "हम मम्मी के साथ पुंडी गये थे, तब आपने कौन-सा गाना गया था?"

अफलातून तेजी से आगे बढ़ रही है. रास्ता खुला और चौड़ा है. कभी रास्ते में गड्ढा आने पर कार के सारे ही स्पेयर पार्ट चीख उठते हैं.

"फिफ्टीन ग्रीन बोटल्स, हैंगिंग ऑन द वॉल..." हकीकत में राजू को यह गीत गाना था इसलिए वह खुद शुरू हो जाता है. "इफ वन ग्रीन बोटल, "डेंटली फॉल्स..."

हम सभी एक आवाज में बोल उठते हैं: फोर्टीन ग्रीन बोटल्स..." और कार उछलती, कूदती, हंसती, गाती आगे और आगे और आगे धंसती जाती है. पिंकी गाते-गाते तालियां बजा रही है. नील चुटकियां बजाकर ताल दे रही है. मैं अपने जूतों से संगीत परोस रहा हूं.

चौड़ी सड़क रेलवे के समानांतर हो जाती है. पीछे से आ रही एक्सप्रेस की सीटी की आवाज हमारे कानों में गूंज उठती है. खटाखट, खटाखट, खटाखट आवाजें करता एंजिन थोड़े से पलों में बाकी डिब्बों के साथ आगे निकल जाता है.

"स्पीड कम क्यों हो गयी?" राजू बोल उठता है.

पिंकी कुछ भी नहीं कहती. मैं ही कहता हूं. "पंक्चर." एंजिन का मोटरमैन हंसता हुआ हाथ हिलाता ट्रेन को दौड़ा जाता है.

हम सभी कार से बाहर निकल चहल कदमी करते हैं. रास्ते के दोनों ओर खेत है. छायादार कुछ पेड़ हैं. नील बास्केट में से चद्दर निकालकर करीब के एक पेड़ के नीचे बिछाती है. फिर आती है. दोनों बच्चों के साथ बास्केट भी खेत में ले जाती है. बच्चों की पिकनिक की शुरुआत यहीं से हो जाती है.

नील फिर मेरे पास आती है. 'जैक' का सहारा देकर मैंने कार थोड़ी-सी ऊपर उठा ली है. टायर के बोल्ट मैं खोल रहा हूं. "मैं कुछ मदद कर सकती हूं?" वह पूछ रही है.

दूर से आती एक फिएट हमारे सामने आकर अचानक रुकने पर मैं चौंक जाता हूं. दनादन कार के दरवाजे खुलते हैं. तीन लड़के बाहर कूदकर नील के पास दौड़े आते हैं.

"हाय मिस लता." पहला कहता है.

"हीईईईईई, मिस लता!" दूसरा कहता है.

"हैलो मिस लता." तीसरा बोल उठता है.

मेरे अचरज का पार नहीं रहता. नील, कभी नील है तो कभी मिस सिमसन, कभी मिस लता है तो कभी मिस घटा.

तीनों नौटंकिये एक साथ झुककर, अपनी फिएट की ओर हाथ बढ़ाकर कहते हैं: "मैम साहब की सेवा में सेवकों की कार हाजिर है."

"ऐ मिस्टर!" मुझसे बर्दाश्त नहीं होता. मैं दहाड़ उठता हूं, "मैं कोई गायब इनसान नहीं."

पहला नील से पूछता है. "यह उल्लू कौन है?"

दूसरा कहता है. "इसने कितने दिये?"

तीसरा तुरंत ही जोड़ता है. "इसके सौदे से हमारा सौ का एक नोट और."

मैं बाहें चढ़ाता हूं. नील मुझे रोककर उन तीनों से कह देती है. "अब मैं मिस लता नहीं रही."

"तब?" तीनों एक साथ बोल उठते हैं.

"मेरा नाम मिस नीलम है."

"लता कहां गयी?" पहला पूछता है.

"मर गयी." दूसरा ही जवाब देता है.

"उसका मुर्दा भी कुछ बुरा नहीं." तीसरा बोल उठता है. और मेरा एक ही मुक्का पड़ने पर वह उछलकर सीधा फिएट के खुले दरवाजे से अंदर धंस जाता है. दूसरे दोनों भौंचक्के रह जाते हैं.

लोग दूर-दूर से दौड़कर आग देखने आ रहे हैं. हजारों की भीड़ इकट्ठी हुई हैं. तमाशा है, यारो. मेरे सुलगते दिल का तमाशा और भीड़ से दूर रेत में बैठा-बैठा मैं सिगरेट के कश ले रहा हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

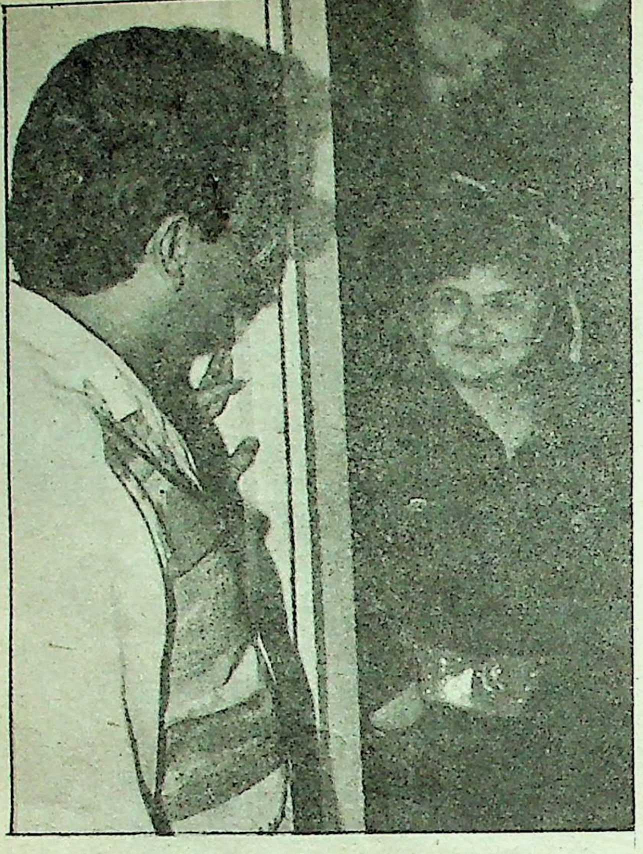

"आई सी." पहला संभलते हुए कहता है, "लड़ना हमें भी आता है."

दूसरा नीचे पड़ा पत्थर उठा लेता है. तीसरा फिएट में से लोहे की सलाख लेकर वापस आ गया है

मनोज! विनोद! फिरोज! नील थोड़ी ऊंची आवाज में उन्हें ललकारती है, "यह तुम्हें शोभा नहीं देता."

"क्या हक था इसे किसी सज्जन पर हमला करने का?" पहला पूछता है.

नील शांति से तीनों को कहती है, "इसे सभी हक हैं."

तीनों फिएट में बैठकर "लांग लिव [illegible]" का नारा लगाते दौड़ा जाते हैं.

"क्षितिज!" दूर जाती फिएट को देख नील कहती है, "मुझे आपकी फिक्र होती है. ऐसे आप बार-बार गुस्सा होंगे तो कोई आप पर हमला कर देगा."

"तो क्या मुझे खामोश बैठा रहना चाहिए?"

"मैं यह नहीं कहती."

"कोई तुम्हें जलील करे और मैं कायर की तरह देखता रहूं. ऐसा तुम्हारा कहना है?"

"आप फिर गुस्सा हो गये हैं."

"तुम्हारी तरह शांत रहना मुझे नहीं आता." नील को मेरी यह बात अच्छी नहीं लगती. उसे जवाब देना है. लेकिन वह चुप रहने में ही अपनी अक्लमंदी समझती है.

हम वापस कार मृं बैठते हैं. कार पिकनिक स्पॉट की ओर न दौड़ाकर मैं शहर की ओर मोड़ता हूं. फिर भी नील खामोश बैठी रहती है.

राजू और पिंकी चिल्ला रहे हैं.

"पापा! पापा!"

"अंकल!" अंकल!"

दोनों शोर मचा रहे हैं. स्टीयरिंग को काबू में रखने में मुझे काफी तकलीफ हो रही है. फिर भी नील खामोश है. मैं चिल्लाता हूं, "राजू पिंकी!" दोनों बच्चे कांप उठते हैं.

दूसरे दिन मैं अपने सोलिसिटर के ऑफिस पहुंच जाता हूं. इस बार मुझे कोई आलीशान टोटका नहीं आजमाना. अब कि कम से कम पांच सयानों से मश्वरा करूंगा और तभी नये धंधे में छलांग लगाऊंगा.

"कहिए मिस्टर, क्षितिज." सोलिसिटर की सिगार बोल रही है, "आज अपॉइंटमेंट के बिना अचानक मेरी याद कैसे आ गयी?"

मैं अपनी नयी योजना पेश करता हूं. मेरा विचार टिनफूड की फैक्ट्री खोलने का है. जिसमें खास कर समुद्री जीवों को टिन के एअर-टाइट डिब्बों में बंद कर देश विदेश एक्सपोर्ट किया जा सके. "आपकी क्या राय है?"

"आपको तजुर्बा है?" मैं 'ना' कहता हूं. सिगार पफ: पफ करती पटरी बदलती है, "मेरी एक बात मानेंगे?"

"कहिए."

"फैक्ट्री के झंझट में पड़ने के बजाय आप एक होटल क्यों नहीं खोलते?"

"होटल?"

"बिलकुल सही. गांधी बीच पर एक प्लॉट खाली पड़ा है. उसका मालिक मेरा क्लाइंट है. उसी ने कोई शरीफ ग्राहक ढूंढ़ लाने की मुझसे विनती की है."

सच कहूं तो सोलिसिटर का प्रस्ताव मुझे जंच गया है. लेकिन मैं जल्दबाजी करना नहीं चाहता. मुझे अभी और चार सयानों की राय लेनी है. नील शांत स्वभाव की है. मैं उससे सलाह लूंगा. गुणवंत डिटेक्टिव स्वभाव का है. मैं उससे भी मशवरा करूंगा. फिर आइने के सामने बैठक मैं अपने आप सवाल करूंगा. आखिर में राजू के सामने दो उंगलियां रखूंगा. एक का मतलब 'हां' होगा. दूसरी का 'ना'.

नील कोई किताब पढ़ती लंबे सोफे पर बैठी है. मेरे चेहरे पर नजर पड़ते ही वह किताब का पन्ना मोड़कर बंद कर देती है. मैं उसके सामने बैठ जाता हूं. एक लंबी उबासी लेकर वह मेरी आंखों में देखती है, "आज आपका चेहरा खुशगवार नजर आता है."

"आज मेरे पास एक नया प्रस्ताव आया है. किसी अच्छे होटल में बैठकर शांति से सोचें?"

कुछ मिनटों बाद हम कॉर्नर के होटल गीता में चाय पीते बैठे हैं. मैं शुरुआत करता हूं. गांधी बीच का प्लॉट और रईसों की बस्ती के बीच ज्यादा फर्क नहीं. एक छोटा-सा होटल वहां खड़ा किया जाये तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी टूरिस्टों के लिए भी वह आकर्षण बन सकेगा.

"पांच तारा एक होटल वहां पहले से है." नील बहस करती है, "उसके अलावा भी कई और होटल वहां बननेवाले हैं."

"हमारे होटल और उन होटलों के बीच थोड़ा-सा फर्क रहेगा." मैं उसे ब्यौरेवार जानकारी देता हूं, "सबसे पहले तो हमारे होटल में रहने की व्यवस्था से अधिक समंदर में मौज-मस्ती करने का प्रबंध होगा. विदेशी टूरिस्ट जो और होटल में ठहरेंगे, वे ही वॉटर स्पोर्ट्स के मजे लेने हमारे यहां सारा दिन गुजारेंगे."

वह कहती है, "आपकी यह योजना प्रैक्टिकल तो लगती है. फिर भी किसी तजुर्बेकार से राय लेने में हर्ज नहीं."

नील का प्रोत्साहन मिलते ही मैं जोश में आ जाता हूं, "इस स्कीम के तैयार होने पर तुम्हारे लिए भी काम होगा."

"हलो, मिस सिमसन." लफ्ज कानों से टकराते ही हम दोनों चौंक जाते हैं. बॉक्सर हमारे सामने खड़ा है. वह कब कैफे में दाखिल हुआ और कब से हमारे सामने खड़ा है, यह कहना मुश्किल है. मैं और नील एक दूसरे की ओर देखकर वापस अपनी योजना में मशगूल हो जाते हैं.

"हां, तो आप क्या कह रहे थे?"

"किचन का मैनेजमेंट तुम्हे संभालना होगा. बाद में..."

"सिमसन." बॉक्सर नील से कहता है, "इतनी जल्दी मुझे भूल गयी?"

"मिस्टर." मैं बोल उठता हूं, "आपसे कोई भूल हुई है."

"भूल?" बॉक्सर चौंकता है.

"सही. यह मिस सिमसन नहीं, नील हैं." कहकर मैं नील की ओर मुड़ता हूं.

"ओह नो!" बॉक्सर की आवाज थोड़ी ऊंची हो जाती है, "मिस सिमसन की रगरग से मैं वाकिफ हूं. यह मेरी गर्लफ्रेंड है."

"एक मिस्टर!" नील नया धमाका करती है, "ये मेरे पति हैं और मैं नीलम हूं. नीलम."

मैं करीब की टेबलवाले सज्जनों को संबोधित कर कहता हूं, "बेचारा... प्यार का मारा कोई मंजनू है. हरेक औरत में उसे अपनी लैला नजर आती है."

"नो.नो.नो." बॉक्सर अपनी बाहें चढ़ाता है.

"बैरा!" मेरी आवाज सुनकर तीन बैरों के साथ मैनेजर भी दौड़ आता है. "इन महाशय को जरा समझाकर बाहर ले जायें. वरना..."

तीनो बैरे उसे तीन ओर से जकड़ लेते हैं. बॉक्सर का चेहरा आग उगलता है. लेकिन वह लाचार है. तीनो बैरे उसे कसाई की गाय की तरह घसीटने लगते हैं. वह चिल्लाना शुरू करता है. "मैं पागल नहीं... इस चुड़ैल को मैं अच्छी तरह पहचानता हूं... यह, यह... कॉलगर्ल है. वेश्या है. मेरी सुनो... कोई तो मेरी बात..."

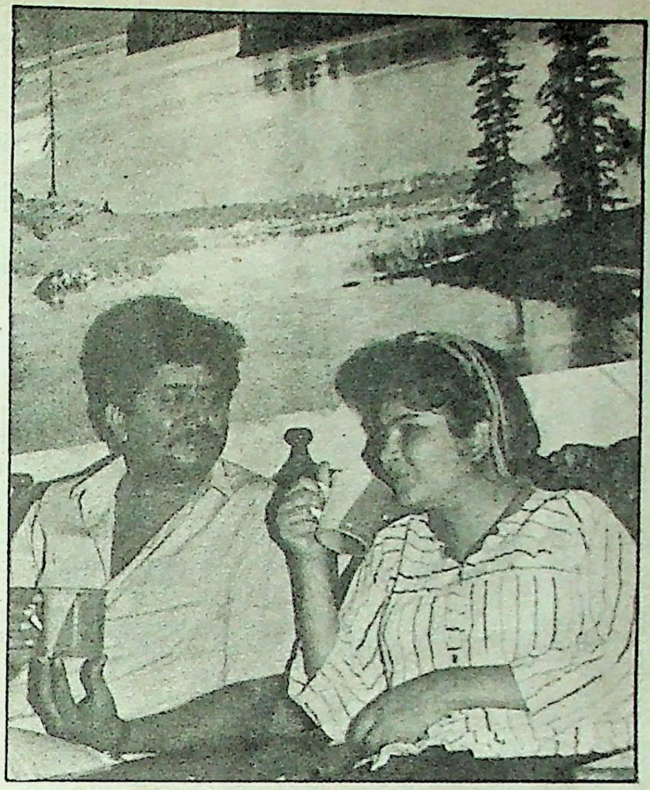

दरवाजे से बाहर फेंके जाने पर उसके शब्द बीच में ही टूट जाते हैं. हमारे लिए अब यहां बैठना मुमकिन नहीं. लोग नील की ओर शक भरी निगाहों से देख रहे हैं. नील के जिस्म को नजरों से कुरेद रहे हैं.

बैरे को बिल चुकाकर हम बाहर निल जाते हैं. सीधी फुटपाथ पर एक भी लफ्ज बोले बगैर कुछ कदम भरते हैं. आज की घटना ने फिर एक बार हमें खामोश कर दिया है. ढलते सूरज ने हमारे चेहरों पर कालिख पोत दी है. न जाने हमें कौन से जन्म में शांति मिलेगी? न जाने हमारी किस्मत में कहीं सुख लिखा है या नहीं? न जाने...

आह!

अचानक एक चाकू मेरे पेट में उतर जाता है. मैं दोनों हाथों से पेट पकड़ लेता हूं. नील के गले से चीख निकल जाती है. छलांगें भरता बॉक्सर एक गली में दौड़ जाता है.

मेरी आंखें खुलती हैं. मेरे पेट पर पट्टियां बंधी हैं पलंग पर मैं खामोश लेटा हूं. नील मेरे पास बैठी है. मेरे चेहरे को एकटक देख रही है. मेरी आंखें खुलते ही उसकी आंखें चमक उठती हैं. तुरंत ही वह दवाई की शीशी खोलकर मुझे पानी के साथ एक गोली निगल जाने को कहती है.

मैं उसके घर की दीवारों को देख कुछ कहने की कोशिश करता हूं. कहने के लिए मुझे कोशिश करनी पड़ती है. नील मुझे खामोश लेटे रहने को इशारा करती है. मैं मौन धारण कर लेता हूं.

एक हफ्ता बीत जाता है. अब मैं चल-फिर सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूं. नील के साथ बैठकर ताश खेल सकता हूं. बाल्कनी में खड़ा होकर रास्ते की चहल-पहल में दिलचस्पी ले सकता हूं. बच्चों के साथ शरारत कर सकता हूं. फिर भी नील कहती है अभी मैं पूरी तरह ठीक नहीं हुआ.

एक दिन मैं उससे कहता हूं, "हम मेरे घर रहने चलें."

"क्या, यह घर नहीं?" नील सामने सवाल करती है.

"यह घर है पर तुम्हारा नहीं."

"किसका है?"

"मिस सिमसन का. मिस लता का. मिस घटा का है." मैं शांति से जवाब देता हूं, "और तुम नील हो."

"और नील कौन है?"

"मेरी दोस्त?"

"नील सिर्फ आपकी नहीं, कइयों की दोस्त है. मैं जहां भी रहने जाऊंगी, मेरे दोस्त मुझे ढूंढ निकालेंगे.

एक ही सांस में बोलकर वह भीतर के कमरे में दौड़ जाती है. दोनों हाथों से सिर पकड़कर मैं वापस बाल्कनी में बैठ जाता हूं.

दिनों दिन हमारे झगड़े बढ़ते जाते हैं. नील मेरी एक भी बात मानने को राजी नहीं. नील के साथ सुलह करने की मेरी भी मर्जी नहीं. अब तो हम छोटी-छोटी साधारण बातों में उलझ जाते हैं.

मेरे घाव की पट्टियां खुल गयी हैं. अब मैं सीढ़ियां उतर सकता हूं. रास्ते पर वॉक ले सकता हूं. मैं अकेला नीचे आया हूं. आज मुझे अकेले थोड़ी-सी वॉक लेनी है. मैं थोड़ी-सी तनहाई चाहता हूं. अकेले में सारे झगड़ों का ढेर सुलगाकर मुझे नयी जिंदगी के बारे में सोचना है.

मुझे अंजु याद आती है. न जाने क्यों याद आती है. बस, याद आ जाती है. मैं कभी उसके चिड़चिड़े स्वभाव के बारे में उससे शिकायत करता था. वह चुपचाप सुन लेती थी. कभी वह गुस्सा होकर आग उगलती थी. आज मैं भी उन्हीं हालातों का शिकार हो गया हूं.

कॉर्नर की बुक-स्टॉल के पास आते ही मेरे पैर रुक जाते हैं. बिना वजह मैं किताबों के टाइटल पर नजरें दौड़ाता हूं. पेपरबेक और हार्डकवर की कई डिजाइनें मेरी आंखों के सामने हैं. मेरी नजर एक पॉकेट बुक के टाइटल पर टिक जाती है. किताब किसी भारतीय योगी की लिखी हुई है. मन की उलझनों को दूर करने के उसमें सरल उपाय दिये गये हैं.

ज्यादा सोचे बिना मैं वह किताब खरीदकर घर वापस आता हूं. नील शायद किचन में होगी या बाथरूम में. आया बच्चों को लेकर कहीं बाहर गयी है. मैं किताब पढ़ना शुरू करता हूं. इसमें योग के कई आसन दिखाये गये हैं. खासकर मन को शांति देनेवाले आसन का चैप्टर गौर से पढ़कर मैं फर्श पर लेट जाता हूं. किताब में ऐसे ही लिखा है.

●

चाय के घूंट पर घूंट भरता हुआ किसी महात्मा की तरह मैं भाषण झाड़ रहा हूं. हजारों की भीड़ मेरे सामने बैठी हो ऐसा धोखा होता है. शक यह भी है : इतनी अकलमंदी मुझ में कहां से आयी?

तब मुझे खयाल आता है, इसमें कपड़े पहनकर लेटने के लिए नहीं कहा गया. मैं अपने सारे कपड़े उतारकर सिर्फ अंडरवियर में फर्श पर लेट जाता हूं. दोनों हाथ मेरे शरीर मे छह इंच दूर रखता हूं. मेरे दोनां पैरों के बीच एक फुट का फासला है. मेरी आंखें बंद हैं. अब?

मैं बैठकर फिर किताब खोलता हूं. फिर एक बार चैप्टर पर सरसरी निगाह डालता हूं. लेकिन फिर एक बार मैं लेट नहीं पाता. नील हैरत से मेरे जिस्म को देखती सामने खड़ी है.

"यह क्या?" उसके होंठ खुलते हैं.

"योग." मैं जवाब देता हूं, "हजारों साल-पुराने अपने इस शास्त्र में तन और मन की शांति के उपाय दिये गये हैं."

बस, मुझे और कुछ कहने की जरूरत नहीं लगती. फर्श पर वापस लेटकर मैं अपनी आंखें मींच लेता हूं.

डोर बैल बज उठती है. मैं अपनी एक आंख खोलता हूं. नील मुझसे सारे कपड़े झटपट पहनने के लिए विनती करती है. मैं दूसरी आंख भी खोलता हूं. वह कहती है—आया वापस आयी होगी. शायद कोई और भी हो.

मैं सारे कपड़े जल्दी से पहन लेता हूं. नील दरवाजा खोलती है. "गंगाराम!" और बोल उठती है, "यहां कैसे आना हुआ?"

मेरे खयाल से गंगाराम किसी करोड़पति का नौकर है और कोई संदेशा लेकर इस वक्त आया है. नील से वह दबी आवाज में बातें कर रहा है.

मैं सिर्फ एक ही जुमला सुन पाता हूं, "गंगाराम! तू जा. मैं आ जाऊंगी."

गंगाराम जा चुका है. नील मेरे सामने खड़ी है. लाचार नजरों से वह मेरे सामने देख रही है. "क्षितिज", दबी हुई आवाज उठती है, "मुझे जाना पड़ेगा."

मेरा दिमाग चकरा जाता है.

"नहीं, मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगा."

"आप मुझे रोक नहीं सकते, क्षितिज!" वह ठंडे कलेजे से जवाब देती है. "आज मेरा जाना जरूरी है."

नील तिपाई पर पड़ा अपना पर्स उठाती है और मेरी ओर देखे बगैर बाहर निकल जाती है.

थोड़ी देर बाद साड़ी बदलकर वह मेरे सामने आती है और सोफे पर ढह जाती है. उसका चेहरा गंभीर है. "क्षितिज" बेदर्द खामोशी के कुछ लम्हों के बाद उसके होंठ कांपते हैं, "मिस्टर साहनी का स्वर्गवास हो गया."

मैं खामोश रहता हूं. मुझे किसी की मौत से दिलचस्पी नहीं. मुझे किसी की जिंदगी में भी अब रस नहीं रहा.

"उनकी इच्छा पिंकी को देखने की थी. आखिरी बार पिंकी को निहारने की थी. वह... वह अधूरी रह गयी." कड़ाके के साथ बिजली चमकते ही खिड़की के शीशे रोशन हो उठते हैं. मेरे जिस्म में जान आती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. मेरी आंखें खुल जाती हैं. मैं बैठा हो जाता हूं.

"क्षितिज. पिंकी के पापा का देहांत हो गया." आखिरी जुमला कहकर वह दीवार को ताक रही है. फिर खामोशी से छलकता एक दौर हमारे बीच फैल जाता है. काफी देर तक वह दीवार को घूरती खामोश बैठी रहती है अंधेरों से भरा आसमान बरसता रहता है.

"नील." मैं खामोशी तोड़ता हूं, "तुम शादी शुदा थी?"

वह 'ना' कहती है, "फिर भी मिस्टर साहनी पिंकी के पिता थे. मिस्टर साहनी... जिनके साथ मैंने नर्स का काम किया था, जिनके साथ मैं फरार होकर मद्रास आयी थी. उनके साथ मैंने सभी रिश्ते तोड़ दिये थे.फिर भी मैं उनकी आखिरी ख्वाहिश ठुकरा न सकी. वास्तव में मे थे मुझे आखिरी बार मिलना चाहते थे. मैं उनके अपार्टमेंट पहुंची और उन्होंने दम तोड़ दिया." कहते ही नील की आंखों में वीरानी उतर आती है.

"मिस्टर साहनी को तुम चाहती थी?"

"मैं... मैं किसी को नहीं चाहती. आपको प्यार करने के बाद सब कुछ भूल जाना चाहती हूं. आपसे नाता जोड़ने के बाद सभी रिश्ते मैंने तोड़कर चूर-चूरकर डाले हैं. फिर भी भूतकाल सामने आ जाता है. कदम-कदम पर टकराता है. न आप बर्दाश्त कर सकते हैं न मैं. मैं जानता हूं, आपको कितना दुख होता होगा. मेरी भी हालत वही है, क्षितिज."

"तुम्हारी बात सही है, नील." मैं होशोहवास में बात कर रहा हूं, "आज मैंने फैसला कर लिया है."

"कैसा?"

"इस घर को छोड़कर चले जाने का."

"कहां?"

"कहीं... दूर. जहां तुम होगी, तुम्हारा भूतकाल न होगा. जहां मैं होऊंगा. अपने बच्चे होंगे. तुम साथ आओगी न?"

"नहीं क्षितिज." वह भरोसे के साथ कहती है. "मैं यहीं रहूंगी. और एक दिन... एक दिन नया जन्म लेकर आपके पास चली आऊंगी. उस जन्म के साथ भविष्य होगा. भविष्य के सपने होंगे. आप होंगे. राजू होगा. पिंकी होगी."

शायद नील सच ही कहती हो! उसका भूतकाल जब तक जिंदा है, उसका मेरे साथ रहना ठीक नहीं. उसके लिए नहीं. मेरे लिए भी नहीं. सूरज की किरणों के निकलने के साथ घर में फिर एक बार गहरी उदासी घिर आती है. नील का मकान छोड़कर आज मैं अपने घर जानेवाला हूं. इस बात का दुख जितना मुझे है उतना उसे भी है.

नील आज अपने हाथों से ही नाश्ते की टेबल सजाती है. हम सब साथ बैठकर नाश्ता करते हैं कोई एक भी शब्द बोलता नहीं. कोई कुछ कहता नहीं. बच्चे भी खामोश हैं.

"पापा! पापा!" पिंकी खामोशी तोड़ती है. "पापा. पापा." राजू खामोशी तोड़ता है. दोनों पूछ रहे हैं. "इतवार को हम कहां चलेंगे."

पिछले एक महीने से उन्हें मैं कहीं ले जा न सका. नील भी घर से बाहर निकली नहीं. मुझे आज बिलकुल तंदुरुस्त और तैयार देख वे दोनों यह सवाल करें यह बिलकुल मुनासिब है.

"नील." जाने से पहले मैं उससे एक विनती करता हूं, "अगर तुम राजी हो तो मैं पिंकी को अपने साथ लेता जाऊं."

नील आंखें उठाकर मेरा चेहरा देखती है. मैं उसकी आंखों में उभरते आंसू देखता हूं. जैसे कह रहे हों—एक ही सहारा है, जीने का.वह भी छीन लोगे?

मैं उसे समझाता हूं. पिंकी मुझे पापा कहकर पुकारती है, मेरे साथ राजू जितनी ही घुल मिल गयी है. उसे मैं अपने राजू के साथ रखूंगा. राजू के साथ पाल-पोसकर बड़ी करूंगा. उसे पढ़ाऊंगा, लिखाऊंगा. उसकी इच्छा होगी तो मैं उसे कॉलेज में भी भेजूंगा. "डॉक्टर बनने के अपने अधूरे सपनों को तुम खुद उसमें आकार लेते देखोगी. फिर... फिर अच्छे सुसंस्कृत परिवार के लड़के से उसकी शादी रचाऊंगा. तुम भी यही चाहती हो न?"

मेरे सीने पर सिर रखकर वह खुलकर रो पड़ती है. मैं उसकी पीठ थपथपाता हूं. उसे दिलासा देते हुए कहता हूं, "नील, मैं कोई ज्यादा दूर नहीं जा रहा. अपने घर ही जा रहा हूं. जब तुम्हारी इच्छा हो तुम पिंकी से मिलने चली आना."

"पापा. पापा." राजू कहता है. "पापा. पापा." पिंकी पूछती है. "आज हम कहां जा रहे हैं?"

मैं राजू को समझाता हूं—आज हम अपने घर जा रहे हैं. पिंकी भी हमारे साथ आयेगी. "पिंकी. तुझे राजू का साथ पसंद है?"

"राजू. राजू." कहती पिंकी तालियां बजाती है. उसकी खुशी की सीमा नहीं.

"पिंकी. पिंकी." राजू भी खुश हो जाता है. अब उसे भी घर में अकेले जिंदगी बितानी नहीं पड़ेगी.

दरवाजे से बाहर आते ही नील पिंकी को उठाकर सीने से चिपका लेती है. उसके गाल, होंठ, गले, माथे पर आंसुओं से भीगे कई चुंबन बरसा देती है.

हम नीचे आकर रास्ता पार करते हैं. मेरी अफलातून कई दिनों से हमारा इंतजार करती फुटपाथ के पास खड़ी है. बारिश के पानी ने उसे धोकर साफ कर डाला है. सड़क भी धुली हुई और टुकड़ों-टुकड़ों में भीगी लगती है.

अफलातून में बैठने से पहले मैं उंगली उठाकर पिंकी का ध्यान ऊपर की ओर दौड़ाता हूं. नील बाल्कनी में खड़ी है. पिंकी हाथ हिला रही है. राजू अपने दोनों हाथ उठाकर लहराता है. पिंकी भी अब अपने छोटे-छोटे दोनों हाथ दिखाती है.

मैं अगली सीट पर बैठता हूं. दोनों बच्चे मेरे पास ही बैठे हैं. अफलातून को मैं स्टार्ट करता हूं. पहले एक बड़ा धमाका होता है और फिर गोला-बारूद फौड़ती हमारी अफलातून आगे बढ़ जाती है. □

गुजराती से अनुवाद: नंदा शर्मा

छायाकार
पवन महेंद्रू

मॉडल
क्षितिज
जे.डी. बिल्ला
नील
असफ़
अंजू
सरोज अरोड़ा
पिंकी
बेबी मासी
राजू
मास्टर राजू
गुणवंत
सी.एल. अरोड़ा
एक आदमी
अश्विनी कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्जी

विधवा का जीवन एक प्रार्थना की तरह है जो सत्य को अपने भूखे प्यासे रक्त से सींचती है. लेकिन जिंदा रहना किसी प्रार्थना की तरह जरूरी भी होता है क्योंकि आग की जलन आग से ही शांत होती है...

वरिष्ठ कवि-कथाकार रामेश्वर शुक्ल अंचल के जीवन के पचहत्तर वर्ष पूरे होने पर प्रस्तुत है उनकी एक अविस्मरणीय संस्मरण कथा... और एक कविता.

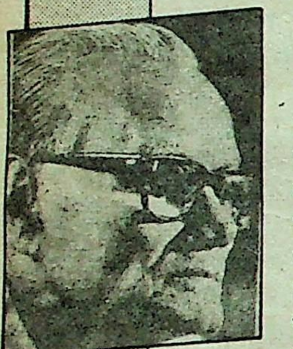

□ रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

जन्म: 1915
प्रमुख कृतियां: 'तारे', 'ये वे बहुतेरे' तथा 'कुंवर की दुलहिन' कथा-संग्रहों सहित चार कथा संग्रह. 1931 से निरंतर लेखन रत. अब तक चार उपन्यास, चार खंडकाव्य, सोलह कविता संग्रह, चार संस्मरण व संस्मरण कथा-संग्रह, एक व्यंग्य संग्रह, एक पत्र संग्रह, दो आलोचनात्मक निबंध संग्रह सहित लगभग चालीस कृतियां.
विविध: दो विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर (हिंदी), विभागाध्यक्ष व डीन रह चुके हैं. हिंदी की दलगत शिविरबद्धता से दूर अंचलजी मानते हैं कि रचनाकार का जीवन उसके निधन के उपरांत प्रारंभ होता है.
उम्र के छियत्तरवें वर्ष में प्रवेश.
सम्मान: जबलपुर विश्वविद्यालय से मानद डी. लिट., मध्य प्रदेश शासन साहि. परिषद, उ.प्र. हिंदी संस्थान, नागरी प्रचारणी सभा काशी और मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति की ओर से सम्मान व अभिनंदन.
संपर्क: पचपेढ़ी, दक्षिणी सिविल लाइंस, जबलपुर, (म.प्र.)

विधवा होकर जिंदा रहना कितना जोखिम भरा होता है—[illegible] हुलसकर स्वाहा होने जैसा! विधवा का जीवन एक प्रार्थना [illegible] तरह है जो सत्य को अपने भूखे प्यासे रक्त से सींचती है. [illegible] जिंदा रहना किसी प्रार्थना की तरह जरूरी भी होता है क्योंकि आग [illegible] जलन आग से ही शांत होती है. मैं मानता हूं जो न कहा जा सके उसे [illegible] कहना चाहिए. पर यह आत्मखंड लिखने की प्रेरणा लपट की तरह [illegible] भीतर उठ रही है. प्रश्नाकुलता की अदम्यावेग पहाड़ी सरिता [illegible] उमड़न मुझे घेरे है. बहुत से तीक्ष्ण प्रश्न ऐसे भी होते हैं जिन्हें भाषा [illegible] मिलती. जीवन की जड़ों को सींचनेवाला, विश्वास की फुनगी-फुनगी [illegible] पिघला द्रव जम भले जाए पर मूकता की उन टपकनों को अपने [illegible] बहा नहीं पाता. सोचता हूं कि जिसे रचना की रेखाएं न कह पायीं [illegible] यह सार्थक शून्य आजीवन क्या धोता मांजता नहीं रहा? [illegible] शब्दहीनता में क्या मृत्यु और प्रसव दोनों की दंशन-भरी पीड़ा नहीं [illegible] जीवन की गहरी आस्था से जुड़ा यह आत्मभोग लिखे बिना आज [illegible] नहीं जाता. यह सब लिखने की सिरमुंडी चीवरा जैसी तरप्र नहीं [illegible] हो सकता है तुम वहां चली जा चुकी हो जहां से फिर कोई लौटता नहीं [illegible] पर मेरा अंत:करण कहता है तुम इस इस संसार में हो—वैसी ही निरे [illegible] निरभ्र तारिका जैसी जो टूटना भूल चुकी है.

अर्थाभाव से पीड़ित मैंने जब तुम्हारे यहां बीस रुपये महीने [illegible] ट्यूशन पाया तो पढ़ाई की समस्या हल हो गयी. तब तक छपी [illegible] छै-सात कहानियां पढ़कर प्रभावित हो उठे एक सज्जन ने मुझे तुम्हारे [illegible] पिता से मिलाया था. मुझे डेढ़ घंटे रोज तुम्हारे छोटे भाइयों को पढ़ाना [illegible] था. यहीं से शुरू हुआ मेरे जीवन का यह विस्मय भरा अध्याय जो [illegible] भी नया लगता है. धीरे-धीरे मुझे तुम्हारे स्नेह संपर्क में आने का अवसर [illegible] मिला. तुम्हारे पिता सचिवालय से अवकाश ले चुके थे. तुम उनकी पहली [illegible] संतान थीं. दो छोटी बहनें भी थीं—छह और आठ वर्ष की. तुम्हारे [illegible] तुम्हारी गोद में एक कन्या छोड़कर तुम्हें लगभग बालविधवा छोड़ [illegible] थे. मां ने इसके बाद भी प्रजनन-क्रिया जारी रक्खी. तुम्हारी छोटी बहनें [illegible] तुम्हारी पितृहीन पुत्री से बरसों छोटी थीं. मां के गर्भधारण से लेकर प्र[illegible] तक तुम्हीं ने सब संभाला था—पिता का यह गृहस्थ धर्मपालन देखा [illegible] निबाहा था. जवान विधवा बेटी से अपनी सोवर कराते समय दैहिक [illegible] परिपूर्ति से लाचार, लज्जा से अधमरी मां का ग्लानि भरा संकोच [illegible] भी तुमसे छिपा न रह पाता था. वैधव्य उन दिनों (कमोबेश आज [illegible] नारी नियति की अनिवार्य गति ही नहीं जीवनव्यापी निग्रह [illegible] आत्मदमन भी था—एक नित्य उत्फुल्ल होते जीवित अंग को काट [illegible] फेंक देने जैसा.

घरवालों का तुम्हारे प्रति आदर प्रेम था. तुम्हारी पुत्री पर सबकी [illegible] ममता थी. मां द्वारा संतानों के जन्म से लेकर भाइयों की देख-रेख [illegible] व्यवस्था तुम्हीं पर थी. मातृहीन चचेरे छोटे भाई भी साथ रहते थे. [illegible] प्रकार से सुखी दो चचेरी बहनें भी नित्य नये दुधमुंहे बच्चों से गोद [illegible] अपने स्वस्थ युवा पतियों के साथ आती रहती थीं. इन सबके [illegible] कर्म-कोलाहल से भरी तुम्हारी जिंदगी का नीरस चक्र सधी गति [illegible] चलता था. तुम्हारे अप्रसाधित शुष्क शीर्णतन और तपे मन की एक [illegible] पीड़ा सभी को कचोटती थी.

जब-तब तुम्हें हिस्टीरिया के दौरे पड़ते थे. दांत इस कदर भिंच जाते [illegible] कि लोहे की संड़सी से खोलने पड़ते थे. मुहल्ले में बड़े बाबू के नाम से [illegible] जाते एक बलिष्ट युवक आते थे और उसे तुम्हारें दांतों के बीच बलपूर्वक [illegible] डालकर उन्हें अलग करते थे—तब तुम्हें तन-बदन की सुधि आती [illegible] महीने पंद्रह दिन के लिए सभी कुछ फिर सामान्य हो जाता था. तुम [illegible] प्रकार मुझसे भाइयों की पढ़ाई के बारें में बातें करतीं. यही नहीं [illegible] बेटी को भी भाइयों के बीच मेरे पास बैठने और पढ़ने के लिए कहतीं. [illegible] तुम्हारें पिता उसे स्वयं भी पढ़ाते थे. चाय पीना तब तक मैंने न सीखा [illegible] पढ़ाते समय मुझे नाश्ता, पानी, शरबत, पान, जर्दा सभी कुछ [illegible] जाता था. माधुर्य से वत्सल तुम्हारी कृपा का ही प्रसाद समझकर [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

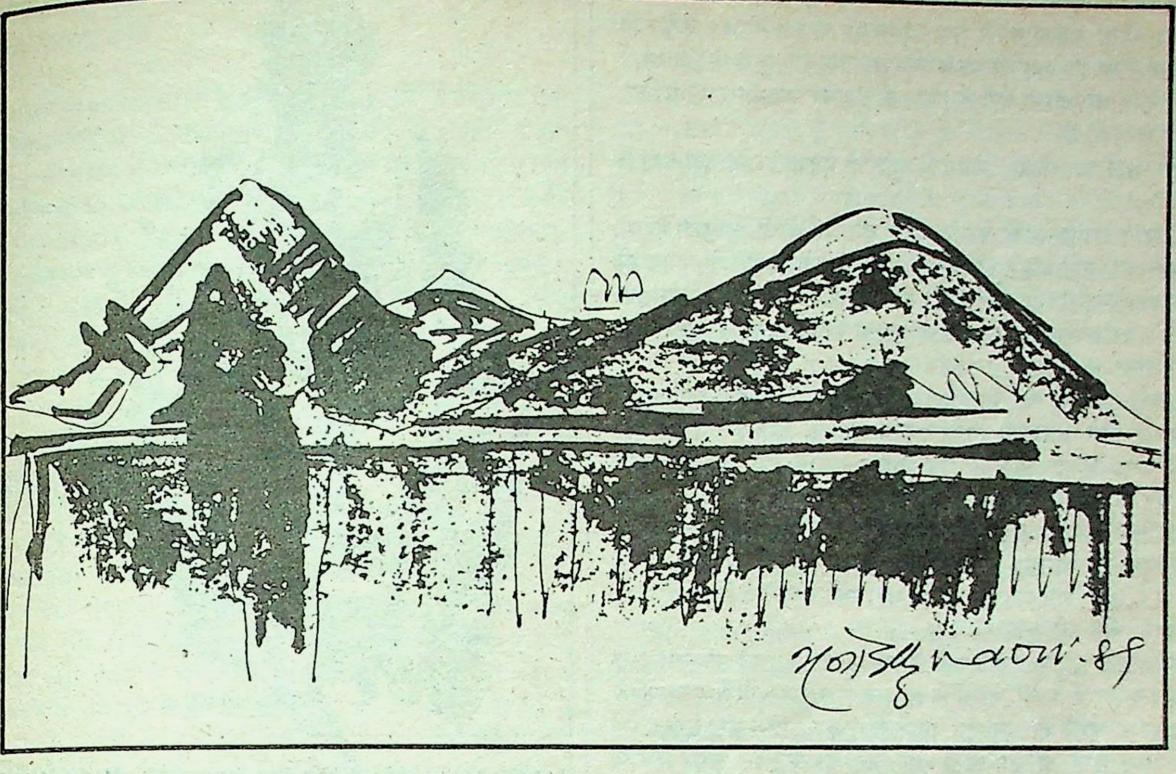

पुलकित हो उठता था. दूसरों पर विश्वास सहजता से कर लेना तुम्हारे परिवार की विशेषता थी, यह मुझे जल्दी ही विदित हो गया.

जब-तब तुम पढ़ाते समय मेरे पास आकर बैठ जातीं. पहली बार ही जब तुम्हें देखा तो मुझे लगा था तुम उनमें हो जिन्हें एक बार देखकर भुलाया नहीं जा सकता. तुम्हारे हृदय में वह अपनत्व-भावना थी जो किसी को भी बांधे रह सकती थी. आज तो जीवन के चित्र-विचित्र अनेक अनुभव मेरे पास हैं—स्मृतियों में रचे-पचे हैं. पर तुमने ही पहली बार अपने पास बैठने देकर और बातें कर मुझे मेरे अपने पुरुष होने का मान दिया था—भले लजीला होने के कारण में अपने को भली भांति प्रकट न कर पाता रहा होऊं. तुम्हारे व्यवहार ने मेरे भीतर आत्मविश्वास की ज्योति जगा दी. अपने विरक्त विचारों और शून्य कल्पनाओं में जीनेवाली तुम जैसी स्निग्धता से भरी भली नारी के मन में क्षुद्रता, लालच, ईर्षा, घृणा और अलगाव के अहं भरे विचार कभी आ ही नही सकते. आज समझ में आता है कि सच्चा स्त्रीत्व यही है. जिस दिन तुम मुझसे बोलतीं—मुझे स्वयं से बाहर उभारकर मेरी झिझक दूर कर देतीं उसी दिन मैं जैसे एक मधुर लय में गूंजता रहता. विश्वविद्यालय की कक्षाओं में रस मिलता—एक विचित्र आत्मसंतुष्टि मिलती. जीवन में पहली बार ट्यूशन किया था. यों भी मन में एक नया उत्साह था: तुम्हारी सरल पूर्णता ने कुछ ऐसा कर दिया कि में पढ़ाता ही रह जाता. अक्सर तुम्हें आकर कहना पड़ता, ''आज क्या आपको घर नहीं जाना है?'' मैं अपने में लौटकर कहता, ''बस जा ही रहा हूं जिज्जी!'' घर भर तुम्हें जिज्जी कहता था. मैं भी कहने लगा था. तुम मुझसे दस वर्ष बड़ी थी हीं, भले वैधव्य ने तुम्हें मन की सारी प्रौढ़ता के बावजूद तन का कैशोर्य ही अधिक दे रक्खा था.

एक दिन मेरे पढ़ाते रहते समय हलचल मच गयी. तुम्हारे पिता घर पर न थे. तुम्हें 'फिट' आ गया था. मां के आवाज देने पर छोटा भाई बड़े बाबू को बुलाने गया, पर वे शहर के बाहर थे. तुम्हारी मां की घबराहट की सीमा न थी. ''मास्टरजी, मैं क्या करूं! पूजा के कमरे में पड़ी है!'' कहती हुई लोहे की संसी हाथ में लिये वे मेरी ओर असहाय दृष्टि से देखने लगीं.

मैंने कहा, ''आप कहें तो मैं चलकर देखूं.'' उन्होंने सहारा पाया. संसी मेरे हाथ में देते हुए बोलीं, ''भीतर चलिये. देखिये, इस अभागिन का कष्ट.''

पूजा के कमरे में तुम भूमि पर पड़ी अजीब ढंग से छटपटा रही थीं. जया चाची का फिट मैंने देखा था. 'फिट' की विरूपता से परिचित था. पर तुम अजीब ढंग से छटपटा रही थीं. मां पास बैठकर तुम्हारे बेतरतीब पहनावे को ठीक करने लगीं—ऊपर के बिलकुल उघड़े हिस्से को ढांककर. चौड़े लाल पाट की तुम्हारी पूजा की कोसे की साड़ी में अजीब ढंग से छटपट करते तुम्हारे शरीर को संभालने लगीं. धनुष की तरह तुम ऐंठ-ऐंठ जाती थी—मुट्ठी वज्र की तरह सख्त, भवें सिकुड़ी हुई. दांतों के जकड़कर बैठने के पहले निकला, होंठें के पास लगा फेन मां ने अपने आंचल से पोंछ लिया.

मैंने पूछा, ''स्मेलिंग साल्ट है?''

मां ने सजल कंठ से कहा, ''उससे कुछ नहीं होता. बिना संसी के दांत घंटों नहीं खुलते.''

मैंने कहा, ''आप शीशी सुंघाती रहिये, मैं संसी से दांत उघाड़ूंगा. होश आयेगा.''

मैंने बल लगाकर दांत हुमास दिये, मां की गोद में पड़े तुम्हारे चेहरे की विकृति दूर होकर वही कमनीय अशांति लौट आयी थी. इतनी जल्दी दांत कभी पहले खुले न थे. छाती का जल्दी-जल्दी फूलना-सिकुड़ना देह के विकार के दूर होते जाने का द्योतक था. पर तुम्हारी बुदबुदाहट, चीत्कार जैसी लगती थी. तुम बड़बड़ा रही थी, ''कैसे दूर होगा हे भगवान! मन का यह पाप...''

मैंने वहां अधिक रुकना ठीक न समझा. जिज्जी का नारी-जीव किसी अव्यक्त यंत्रणा से जूझ रहा है. मैं उसे क्यों देखूं-सुनूं-साक्ष्य दूं? मां से सिर पर यू डी कोलोन से भीगा कपड़ा रखने को कहकर चला आया. छोटी बहनें, बेटी, भाई सब वहां आ गये थे. तुम्हारे शब्द मेरे भीतर उत्कंठा पैदा कर रहे थे. पढ़ाना वहीं खत्म कर मैंने साईकिल उठायी. किस वेदना ने तुम्हें बिद्ध कर रखा है मैं समझ न पाता था. नारी तन के दमित आवेग से अलग यह कुछ और है—इतना मुझे बराबर लगता रहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे दिन ही तुम्हारा स्वभाव बदल गया; तुम्हारा व्यवहार वैसा सहज, सदा जैसा अकेलेपन से भरा सान्निध्य लिये न रहकर कठोर हो गया. पढ़ाकर जा ही रहा था कि तुमने मुझे रोककर गुस्से के तमतमाये आवेश में कहा था—बिना मेरी अनुमति के तुम मेरे पूजा के कमरे में किस अधिकार से आये थे.

मैं सहम उठा था. बोला, "आपकी मूर्छा से घबराकर मां मुझे बुला ले गयी थीं."

"मेरी मां सरल है—सभी पर विश्वास कर लेने वाली. तुम्हारा इरादा अच्छा नहीं था. मुझे अधखुली अस्त व्यस्त देखना चाहते थे. पुरुष की खुली कामना क्या मैं समझती नहीं! तुमने मेरी देह का स्पर्श किया. मां मौजूद थी—वरना तुम न जाने क्या करते! चले जाओ यहां से—तुमने मेरे स्नेह की हत्या की है...!"

मैं स्तंभित रह गया था. जी में आया कि कुछ करारा सुनाकर विदा लूं पर मुझ पर जैसे अनहोनी विचित्र स्तब्धता छा गयी हो, इस प्रकार चुपचाप चला आया. क्षोभ से मन विद्रोह करता रहा. कई दिन तक तुम्हारे घर के सामने की सड़क से भी नहीं निकला.

पांचवें दिन तुम्हारा भाई सुशील यूनिवर्सिटी में मुझे तलाशता मिला. मेरा घर तुम्हारे यहां कोई न जानता था. बोला, "आप क्यों नहीं आये? जिज्जी ने भेजा है. तबीयत ठीक है या नहीं यही जानने के लिए. रोज की तरह पढ़ाने आने को कहा है."

मैं शाम को पहुंचा तो सबसे पहले तुम्हीं बरामदे के बगल के पढ़ानेवाले कमरे में मिलीं. गालों के आंसू के दाग सूख चुके थे—आंखों की लाली कुम्हला चुकी थी. पर मुझे देखते ही तुम्हारी सांस असाधारण रूप से तेज चलने लगी. मैं चुप खड़ा रहा. जरा देर के लिए कमरे में ऐसी प्रगाढ़ नीरवता कि सुई गिरने की आवाज तक सुनायी दे.

तुम बोलीं, "आपने पढ़ाने आना छोड़ दिया? मुझ पर नाराज होकर!"

"हां—आपने ही तो चले जाने को कहा था."

"मैं कहूं और आप पढ़ाने भी न आयें?"

"आपकी बात कैसे न मानूं? जिसके लिए आदर हो उसकी...."

"नहीं-नहीं. आप मेरी कोई ऐसी बात न सुनें—आप आते रहिये—पढ़ाते रहिये. कहिये, आप यहां आना, पढ़ाना नहीं छोड़ेंगे."

मैं क्या जवाब दूं—कुछ नहीं सूझा था.

तुमने फिर कहा था, "आप आना मत छोड़िये. मैं बड़ी हूं पर मुझसे कसूर हुआ. आइये! जरूर आइये." रुलाई से जैसे तुम्हारा पूरा गला भर आया था.

मेरे आकर बैठते ही तुम जैसे अचानक आयी थी वैसे ही अचानक चली गयी. मेरे सामने आना तुमने छोड़ दिया. जैसे मेरे तुम्हारे बीच एक दीवार खड़ी हो गयी हो. यथार्थ से अधिक सपनों में घूमनेवाला मेरा मन कुछ चकित भले हुआ हो पर दैनिक कर्म-चक्र में और उससे उबरकर अपनी कल्पनाओं में सार्थकता की प्रतीति पाने में यह सब भूल-सा गया था. साहित्यिक रसमयता और मस्ती की बेसुधी में इन बातों के लिए फुर्सत भी कहां थी? इसीलिए एक दिन जब तुम्हें फिर 'फिट' आया तब भी मैं संयोगवश पढ़ाकर जा ही रहा था. घर में शायद कोई बड़ा न हो और मुझे ही आज फिर न बुलाया जाये, यह सोचकर मैं तुरंत साइकिल उठाकर सड़क पर आ गया था. दूसरे दिन बाहर से आये एक साथी कवि के साथ घूमने मैं चला गया. न यूनिवर्सिटी जा पाया न तुम्हारे यहां पढ़ाने ही. अगले दिन अपने समय पर जब पहुंचा तब एकाएक तुमने सामने आकर तमतमाते हुए कहा, "मुझे फिट आते ही आप चले गये? क्यों? रुकना न था?"

मैंने शांत स्वर में कहा, "कहीं मां फिर न बुला बैठे. पिछली बार ऐसे में मेरे सामने पड़ जाने पर आपने मुझे घर आने तक से मना कर दिया था. अच्छी भली आप जो नहीं चाहतीं, वह आपकी बेचारगी में मैं क्यों करूं?"

तुम्हारी आंखों की वह शुष्क रुलाई नहीं भूल पाया जिसे बहाते हुए

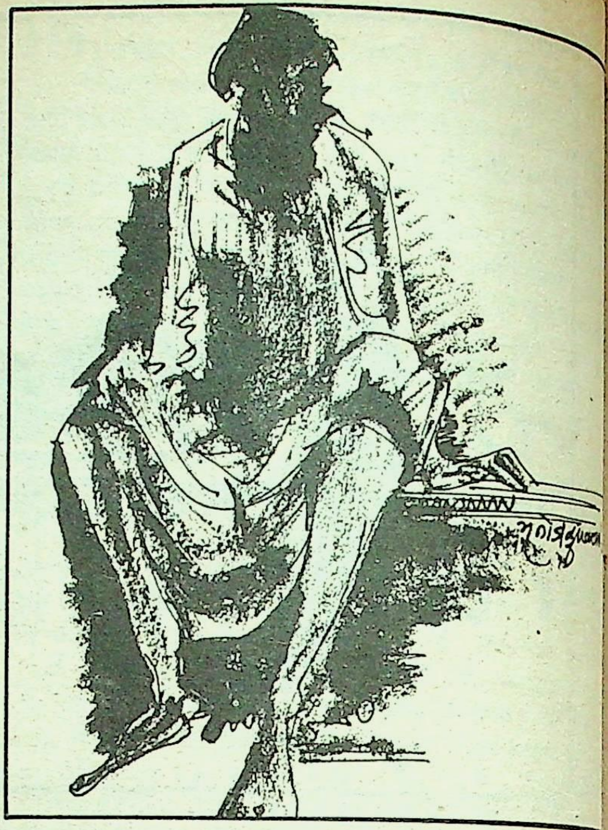

तुमने कहा था, "मैं क्या चाहती हूं, क्या नहीं यह मेरे बताने पर ही आ… समझते हैं? ठीक है... ठीक है." कहते हुए सजल हो आये अभियान… फूला हुआ मुंह फेरकर तुम चली गयी थीं. मेरा मन भी उस दिन पढ़ाने… तनिक न लगा था. मुझे तुम्हारे तर्क का कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था… बिना आइने के मैं देख रहा था कि मेरा चेहरा भी तुम्हारे जैसा… पराजित था. यह तो बहुत बाद में जाना कि नारी के हृदय कितने अनजा… परिचय पा जाते हैं, कितने बंधु रूप में निकट आ जाते हैं. कितने प… भाई बन जाते हैं. पर प्रभुता बताने की उसकी आकांक्षा भी इस सब… साथ लगी रहती है. नारी हृदय की गहन आंतरिकता से अपरिचित… जिज्जी के आत्मप्रतिवाद को, अपने साथ उनके बात व्यवहार… विषमता को देखकर भी कुछ समझ न पाता था. अपनी इकलौती बे… शशि के ऊपर भी उनकी झुंझलाहट मुझे व्यथित करती. तेरह वर्ष… हो आयी पितृहीन बालिका को घर में और कोई कभी कुछ न कहता. … मां के अपने प्रति अकारण आक्रोश के कारण वह जितनी, जैसी चाह… थी, वैसी पढ़ाई भी न कर पाती. छोटे भाइयों, बहनों के प्रति मां… माधुर्य शशि देखती तो अपने प्रति उनके व्यवहार की कठोरता से… भी बिद्ध हो उठती. बड़े बाबू यों भी जब तक आते तो मैं देखता जिज्जी… अपनी दुनिया से निकलकर जैसे उन्हीं की दुनिया में पहुंच जाती. अप… आयु से कहीं अधिक समझदार हो आयी शशि तब मां के सामने… पड़ती. उसके चेहरे पर सहमी-सहमी-सी मलिनता छा जाती जैसे अप… मां के चेहरे के चारों तरफ बन गया उल्लसित प्रकाश का घेरा उ… देखा न जा रहा हो.

जिज्जी का पूजा का कमरा मैंने देखा था. भरी तरुण मृत्यु में उन… पति का एक बड़ा-सा चित्र बीचों बीच लगा था. जिज्जी रोज उस… माला चढ़ाकर ध्यान में डूबी हाथ जोड़े कुछ देर बैठ जाती—जैसे कि… अतींद्रिय भाव में डूबी हो. घुटनों के बल बैठकर पूजा करते उन्हें देख… मुझे न जाने क्यों लगता कि हाथ जोड़े अर्चना करती भक्तिन और… पर लेटकर प्रेम करती प्रेमिका का मूल स्वप्न, स्थायी भाव एक है. … मैंने कल्पना भी न की थी कि तुम्हारे भीतर की दैहिक प्रणयिनी तु…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के इस दुर्घटनाग्रस्त जैसे मोड़ पर ले जायेगी. तुम पूरे परिवार के मन का महल ढहा दोगी.

मैंने अनेक जीवन प्रसंगों के संस्मरण लिखे हैं. पर पहली बार ऐसी संबोधन शैली में—किसी अत्यंत निकट से देखे और श्रद्धास्पद बने चरित्र से संलाप करती शैली में इसे लिख रहा हूं. इसीलिए कि जितनी समीपता का आस्वादन तुमसे पाया है वैसा अन्यत्र नहीं. आज सब कुछ जानकर भी मेरा वही आदर तुम्हारे लिए है, केवल नियति की त्रासद गति का एक दारुण बोझ जरूर मन को काटता रहता है. अपने से हार मानकर चोर कदमों से वासना के तट की ओर निर्भीक बढ़ना आत्मप्रवंचना नहीं. तुमने जो किया उसकी आलोचना करने का अधिकार किसी को भी नहीं है. तुमने आधे जीवन भर खुद पर जो अत्याचार किये वे तुम्हारे समूचे जन्म को सफल कर देंगे. मृत्यु तक खींच ले जानेवाली, किसी अविगत, अदृश्य हो गये के प्रति आत्मसमर्पण और आत्म-निग्रह की दारुण यंत्रणा का तुमने कर्मभोग भोगा. पर उसी को चरम यथार्थता न मानकर सदा को खोये, जीवन के अर्थ को लौटाया. हां! भव्यता की प्रतिमूर्ति जिस साध्वी को मैंने इसी संदर्भ में देखा और भावाभिभूत हुआ उसी का उल्लेख अब करना है.

दो साल बाद सरकारी दफ्तर में नौकरी पाकर मैं इलाहाबाद चला आया. तुम्हारे यहां का ट्यूशन तो इसके काफी पहले छोड़ चुका था. जब तक तुम्हारे यहां जाता तो लगभग सभी कुछ पहले जैसा पाता. केवल तुम्हारे स्वभाव की वक्रता, तुम्हें अपने को ही कचोटनेवाली चुभन बराबर बढ़ती जा रही थी. माताजी भी उससे पीड़ित रहती—शशि तो नाना-नानी के पास ही रहती. तुम्हारे पास अकेले जाने का साहस न कर पाता. इलाहाबाद आकर बेकारी की हीन भावना से मुक्त हो मैं लेखन के अपने छूटे पड़े क्रम से फिर जुड़ गया. दफ्तर का काम इस में बाधक न होता. नया-नया दफ्तर था—पदोन्नति इतनी जल्दी मिल गयी कि मैं पांच वर्ष में ही सहायक अधीक्षक बना दिया गया.

एक दिन मेरे सेक्रेटरी ने मुझे बुलाया और एक सुंदर सुशील तरुण का परिचय देते हुए कहा, "यह नया लड़का तुम्हारे 'सेक्शन' में भेज रहा हूं. सही अंग्रेजी लिखता है—परिश्रमी है. द्वितीय श्रेणी में बी.ए. है. इसे नोटिंग (आख्या लेखन) ड्राफ्टिंग (प्रारूप लेखन) भली भांति सिखा देना." मैं उसे लेकर अपने कमरे में चला आया. दो ही महीने में मैंने उसकी कर्तव्यनिष्ठा जान ली. एक बार मैं जो संशोधन कर देता, जिस सरकारी कागज पर जैसी 'नोटिंग' बता देता, वैसी ही करता. दुबारा उसे कुछ समझाने की जरूरत पड़ी हो, ऐसा याद नहीं आती. सौम्य, सद्‌भाषी अपने काम से काम रखने वाला 'सुधाकर' मुझे भाने लगा.

एक दिन सुधाकर ने अनुरोध भरे स्वर में कहा, "सर, आपसे मेरी मां मिलना चाहती हैं, कल रविवार है. आप दोपहर का भोजन हमारे यहां करें ऐसी भी उनकी आपसे प्रार्थना है."

मैंने विस्मित स्वर में कहा, "तुम्हारी मां! क्या नाम है उनका? कहां के हो तुम लोग!"

"उर्मिला शर्मा. लखनऊ से यहां आये हैं. नाम से आप उन्हें न जानेंगे. पहले कभी उनकी आपसे भेंट भी नहीं हुई. पर आपको वे जानती हैं, नाम सुना पढ़ा है."

मैंने समझा साहित्य से परिचित कोई सुरुचिसंपन्न पाठिका होगी. मेरे मन में पहली बार अपने लेखक होने का वैशिष्ट्य-बोध जाग उठा. मैंने कहा, "ठीक है. मैं आ जाऊंगा."

"क्या मैं बारह बजे आपको लेने आऊं?"

मैंने कहा, "नहीं. तुम अपने घर का पता दे दो. मैं स्वयं आ जाऊंगा. तुम्हारे यहां से लूकरगंज जाना होगा."

दूसरे दिन मैं जब सुधाकर के साउथ मलाका स्थित मकान पर पहुंचा तब वह बाहर सड़क पर खड़ा मेरी राह देख रहा था. आदरपूर्वक मुझे अपनी मां के पास ले गया. मैंने ध्यान से उन्हें देखने, पहचानने की कोशिश की पर कुछ भी समझ में न आया. मुझे कुछ आश्चर्य भरी जिज्ञासा में पड़ा पाकर उन्होंने ही मेरा संकोच दूर करते हुए कहा, "आपका सोच ठीक है. मुझे पहले कभी आपने देखा नहीं... मैंने जरूर दैनिक 'भारत' में आपका चित्र देखा है. मिलने का अवसर आज मिला है. आराम से बैठिये. अपना ही घर समझकर—अपने नीचे काम करने वाले सहायक का घर समझकर. बहू, देखो तुम्हारे 'मास्टर साहब' आये हैं. तुम उन्हें घर पर बुलाने के लिए कहती रहती थीं. आ जाओ शशि!"

'शशि' नाम सुनते ही प्रकृतिस्थ हो चला मैं चौंका. मन में वही बरसों पुरानी लहर उठने लगी. पर दूसरी किसी बहू का भी यही नाम हो सकता है.

तब तक जिस 'शशि' ने आकर मेरे पैर छुए और सास के पास जाकर भक्तिभाव से खड़ी हो गयी. वह तो वही शशि है, जिज्जी की इकलौती बेटी, उनके बाल-वैधव्य की आधार-शिखा.

मैंने शशि की सास को ध्यान से देख लिया था. नारी के सांध्य सांवले रूप पर कमनीयता की सरल निष्कपट अभिव्यक्ति ऐसी पवित्रता लेकर खिल सकती है—ऐसा न देखा था, न कहीं पड़ा था. मुझसे कहने लगीं, "मेरी यह इकलौती बहू आपसे मिलना चाहती थी पर सास की आज्ञा से. उन्हीं के आग्रह पर आप हमारे घर आये. आपके बारे में मुझसे न जाने कितनी बातें करती है."

उर्मिला के पास अनुगता छाया-सी खड़ी शशि से मैंने कहा, "तुम भी बैठ जाओ. मां की गोद में सही, 'फ्राक' पहनकर मेरे पास पढ़ने बैठती थी. कितनी बड़ी हो गयी हो बेटी तुम! जिज्जी कैसी है? तुम्हारे नानी, नाना, मामा लोग? एक दो मामियां भी आ गयी होंगी."

शशि का अपने नाम को सार्थक करता मुंह, उसके गोरे ललाट पर झलमलाता सिंदूर, थोड़ी ही देर पहले नहाकर आयी हुई शुभ्रता सब गहरी हल्दी जैसे पीले पड़ गये. मेरी ओर, सास की ओर देख तक न पा

जीवन का प्रतिरूप

□ वीणा श्रीवास्तव

सुप्रसिद्ध साहित्यकार मार्क ट्वेन के एक दोस्त, जो बहुत अमीर था, को अपने चित्र संग्रह पर बहुत घमंड था. वह सुंदर व दुर्लभ मूर्तियां इकट्ठा करने का भी शौकीन था. एक बार उसने कई बहुमूल्य मूर्तियां खरीदीं. संयोग से मार्क ट्वेन उसके घर जा पहुंचे. वह अमीर अपनी मूर्तियां मार्क ट्वेन को दिखलाने लगा. ट्वेन मनोयोग से मूर्तियां देखे जा रहे थे.

तभी वे संगमरमर की बनी एक युवती की मूर्ति के निकट पहुंचे. युवती को अपने बाल संवारते दिखाया गया था. दोस्त ने कहा, "देखिए, कितनी नायब मूर्ति. जीवन की प्रतिरूप शिल्पकला का नमूना है यह."

मार्क ट्वेन ने सपाट शब्दों में कहा, "लेकिन, यह तो जीवन के प्रतिरूप कतई नहीं है."

"क्या कह रहे हैं आप, महाशय? ऐसा कैसे?" दोस्त ने विस्मय से प्रश्न किया.

"देखिए, यह तो तब जीवन के प्रतिरूप होती यदि इसका मुख हेयर पिनों से भरा होता." मार्क ट्वेन ने स्पष्ट किया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तबादला

□ नवीन पंछी

पति-पत्नी दोनों ही नौकरी पेशा हैं. लेकिन, दोनों की पोस्टिंग अलग-अलग जगहों पर है. बड़ी दिक्कत है. वे चाहते हैं कि उनका तबादला एक ही शहर में हो जाये.

तबादला किसका हो और कैसे करवाया जाये? यह प्रश्न विचारणीय था. काफी सोच-विचार के बाद तय हुआ कि तबादला श्रीमतीजी का ही हो. वे अध्यापिका हैं.

ट्रांसफर की एप्लीकेशन में जेनुइन रीजन देना जरूरी था. इस पर भी बहुत माथापच्ची हुई दोनों में.

"आइडिया!" पत्नी किलकीं.

"एप्लीकेशन में हम लिखेंगे कि मेरी मां कैंसर की मरीज हैं और मेरा उनके पास रहना बहुत जरूरी है." समझदार बीवी की सलाह थी.

"लेकिन, अम्मा तो..." यह दबा-घुटा विरोध श्रीमानजी का था. इस सबके बावजूद तबादला ही अहम् मुद्दा था. तरकीब काम कर गयी. और श्रीमतीजी का ट्रांसफर हो ही गया. □

रही थी. उसकी दृष्टि भूमि पर गड़ी ही गड़ी रह गयी. सुधाकर वहां न था. मां ने कहा, "वही सब सुनने के लिए आपको मैंने बुलाने की धृष्टता की है..."

किसी अविजानित रहस्य से उलझा मैं बोला, "मेरे बारे में शशि बेटी ने आपसे न जाने क्या-क्या कहा होगा. जिज्जी ने भी..."

"नहीं, उनसे मेरी एक-दो बार छोड़कर कभी भेंट तक नहीं हुई. मेरे पति 'बड़े बाबू' से आप मिले होंगे. आपकी 'जिज्जी' उन्हीं के साथ भाग गयीं."

मैं अवाक् बैठा कभी सास की ओर, कभी शशि की ओर स्तब्ध देखता रह गया. प्रदोष की पीली, अवसन्न फुल्ल कुमुदिनी जैसा शशि का चेहरा उठाये नहीं उठता था. उर्मिला ने कोमलतापूर्वक उसकी ढोढ़ी को उठाकर उसे प्यार से पकड़कर कहा, "आप समझ सकते हैं, इतने संभ्रांत परिवार की अधेड़ विधवा का एक गृहस्थ के साथ भाग जाना कितना बुरा अर्थ रखता है! बहू के नानाजी को ऐसा हृदयाघात लगा कि वे मृतप्राय हो गये. नानी अपनी सबसे प्यारी अभागिन बेटी के इस शर्मनाक कुकर्म से कभी अचेत, कभी अर्धचेत पड़ी रहतीं. पूरा मुहल्ला कलमुंही कानाफूसियों से गूंजता रहा. न जाने कैसा जादू कर दिया आपकी जिज्जी के दौरों ने मेरे पर जो मुझे और इकलौते, आंखों की पुतली जैसे प्यारे बेटे को छोड़कर शहर ही छोड़ गये."

मेरे आश्चर्य के तार उलझते जा रहे थे पर सुधाकर की मां की ईर्षाविहीन अवदात मुखाभा पहेली जैसी अबूझ लगकर भी किसी आलोकमयी विमलता से मुझे उबरने न देती थी. कुछ न कह पाकर मैं सुने जा रहा था.

"मेरे ही नहीं, मेरे पूरे परिवार पर लगे इस लांछन के कलंकित आघात को आप आसानी से समझ सकते हैं. पूरे घर पर सकता-सा छाया रहा. पर तीसरे ही दिन इस अद्भुत अकल्पित भाग्य के खेल को मेटकर मेरे अंतः कारण में शशि की वेदना की तीक्ष्ण मर्मानुभूति न जाने कैसे आकर घर कर गयी. मुझमें उसके प्रति ऐसी असहनीय ममता जल उठी कि मैं उस रात बिलकुल सो न पायी थी. इसके नाना शिथिल पड़े थे—नानी नीचे जमीन पर बैठी. मुझे देखकर वे ग्लानि से काली पड़ गयीं. मैंने जाकर बिना किसी भूमिका के कहा, 'बाबूजी, मैं अपने सुधाकर लिए शशि को मांगने आयी हूं. उसे अपनी बहू बनाऊंगी.' भविष्य शशि के विवाह की चिंता सबके भीतर-भीतर सालती रही होगी. घटना का सबसे करुण पहलू भी तो यही था. शशि के कमरे में मैंने उसे जी भर कर प्यार किया. पहले पुत्र के बाद ही सदा को बांझ गयी मेरी कोख मानो फिर अंकुरा उठी. शशि फूट-फूटकर रो रही मैंने उसे घंटे भर तक हृदय से लगाकर धीरज बंधाया. चलते अपनी अंगूठी उतारकर उसे पहना दी और नाना-नानी के पैर छुए. की सांस-सांस मुझे असीस रही थी."

मैं पूछ बैठा, "आपके परिवार को सख्त ऐतराज हुआ होगा."

"सभी ने घोर आपत्ति की. पर मैं अडिग रही. पुत्र ने मेरा कहा किया—अपने पिता की ओर से ही नहीं, सारी उस घर-गृहस्थी से वह जैसे विमुख हो गया. बी.ए. पास करते ही भगवान ने उसे जीविका दे मैंने जिद करके उसका आगे पढ़ने का सपना तोड़ दिया. एक सप्ता भांवरें डालकर बहू-बेटे को यहां ले आयी. लड़का तो सुखी है पर बहू जितना उल्लास से चहकती-महकती देखना चाहती हूं उतना कुछ पाती. मेरे पास अपना पैसा भी है—बहू को भी सिंगारने-सजाने नाना-मामाओं ने कसर नहीं रक्खी. पर वह तो अब रोना भूल गयी है हंसना भी. न जाने कहां खोयी रहती है. हमेशा जैसे कु बिसूर-बिसूरकर अशांत हो रही हो. मां की करनी उनके साथ गयी. जैसी पुन्य पावन इसका संताप क्यों सहो!" कहते-कहते उन्होंने नीचे निगाह किये बैठी शशि का मस्तक चूम लिया. उनकी बिना काजल काली आंखों से श्यामल शोभा का स्रोत झर रहा था. मुझे तब अपने वर्ष के जीवन में कभी ममत्व की ऐसी छटा देखने को न मिली अनिर्वचनीय दिव्यता में डूबी उर्मिला ऐसी रमणी-मूर्ति भी पहले कभी देखी. थी. कह रही थीं, "आपको बुलाने का साहस मैं न कर पाती. आपके प्रति इसकी एकांत श्रद्धा का परिचय पाकर मैंने आपको बुलाया इसे आप समझाते जाइये कि इसकी मां जहां हो वहां सुखी रहे. यह अपने नारी जीवन की सार्थकता का मुक्त मन से आनंद ले. मैं नवव्याहता की उमंगों को जानती हूं, उनका रास-विलास पहचानती हूं."

भावातिरेक से मैं इतना ही कह पाया, "शशि का सौभाग्य है जो आ जैसी सास की शरण उसे मिली, सुधाकर जैसा मातृभक्त पति मिला शशि, दोनों तुम्हें आनंद से जितनी जगमग देखना चाहते हैं वैसी उत्फुल्लता का जीवन जिओ. नाना-नानी, मामा-मांसी भी तुम्हें अकुंठित सुखी पाकर संतोष पायें. सच तो यह है कि उर्मिलाजी से आज मिलता तो एक पुन्य से वंचित रह जाता..."

मेरा आखिरी वाक्य जैसे न सुनकर उर्मिलाजी ने भरे गले से कहा "नाना-नानी अब कहा? नाना तो विवाह के पंद्रह दिन बाद चल बसे जैसे शशि का विवाह देखने को ही उनके लोकलाज-विडंबित प्राण थे. नानी भी उनके बाद अधिक दिन नहीं रहीं. मामा, मासी, मौसिया आते हैं—उनके खत आते हैं. सब मुझे 'जिज्जी' ही कहते हैं."

मैंने कहा, "मुझे भी आप यही कहने दें. वैसे आप की गरिमामंडित मातृमूर्ति के लिए यह संबोधन भी छोटा है."

एक अनेदेखे अपरिचित के मुख से निकली भावभीनी प्रशंसा भी द्वारा छोड़ जाने का मूक आत्मदंश सहन करती उस सन्नारी को भीतर-भीतर पीड़ा ही पहुंचा रही हो, इस प्रकार उन्होंने शशि से कहा था, "जाकर खाना लगाने में सुधु की मदद करो. बातों-बातों में देर हो गयी, अब तो तुम्हें अपने और अपने पति के 'सर' से मिलने के अवसर और मिलेंगे... यों आप जैसे जाने-माने साहित्यकार का हमारे घर आना अपने में भी क्या कम है? कृपा बनाये रहिये, ये दोनों सत्पथ पर चलते जायें... जीवन भर. चलिये, खाना खाइये."

आस्था का नवांकुर मन में सहेजे मैं उनके पीछे चल पड़ा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

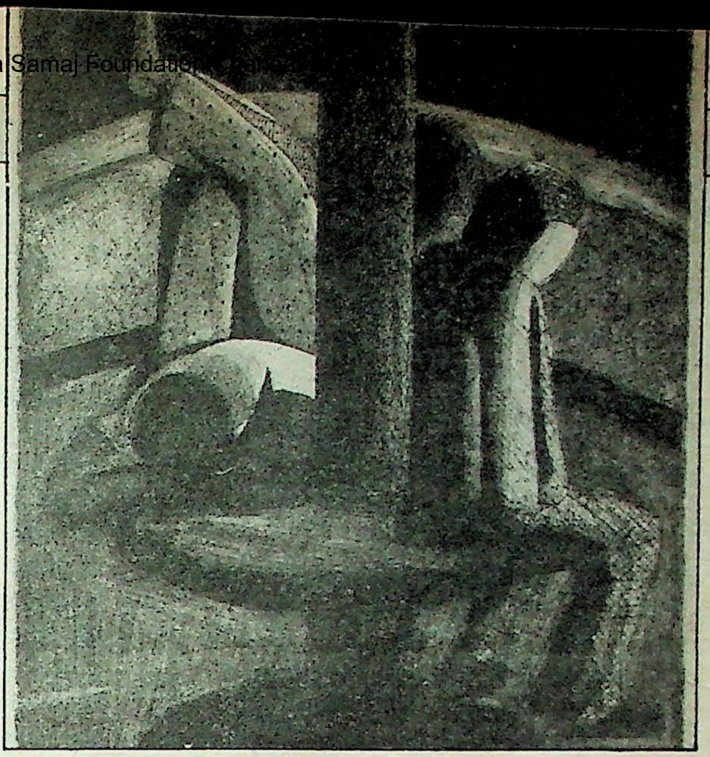

अंत:सलिला

□ रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

नहीं पूरी पड़ीं सारी दिशाएं एक अंजलि को
अधूरी रह गयी मेरी विधा एकांत-पूजन की
बंधी ऑंकार की अविराम शैलाकार बांहों में
नहीं पूरी हुई कोई कड़ी मेरे समर्पण की
समूचा सूर्य भी आजन्म पूजा-दीप की मेरे
न बन पाया अंकपित वर्तिका का शुभ नीराजन
जयी अपरान्ह-रंजित स्तब्ध मेरी आयु-गायत्री
न कर पायी अभी तक अंशभर उस दीप्ति का वंदन

विफलता, व्यर्थता इस परिक्रामित, चक्रांत जीवन की
तुम्हीं जानो—न जानो और कोई तो न जानेगा!
नहीं मैंने किया आह्वान करुणा का तुम्हारी जब
क्षमा की पात्रता मुझमें न कोई और मानेगा
रहा विश्वास भावातीत मन की गीतमी लय-सा
नियति मेरी रही केवल उसी संपूर्ति में पकती
भुलाकर स्वप्नगर्भा प्रेरणा की मुक्त राहों को
रही अपनी क्षुधित आराधना की दीनता तकती

सदा टूटा किये सब अर्थ मेरे, शब्द तक मेरे
तुम्हारी दिव्यता की एक रेखाकृति न बन पाई
अव्यंजित ही सदा जो रह गयी अभिशप्त प्राणों में
नहीं असहाय मेरी भावना निस्पंद पियराई
तुम्हारी सर्वचेतन सर्वआभासित असीमा का
न कोई पारदर्शी बोध मेरी प्रार्थना पाती
अथाही चिरविदारक शून्यता में मूक जड़ जैसी
निपट असमर्थ मेरी मुग्धता अफलित रही आती. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े होते लोग

...जमीन जायदाद और घर का मोह छोड़िये. सवाल तो मां और अन्नो बहन का है न! क्यों न हम लोग दोनों के लिए कोई रास्ता निकाल लें ताकि समस्या ही खत्म हो जाये.'

कैसा है यह रास्ता और इस पर चलते बड़े होते लोग...?

□ रामधारी सिंह दिवाकर

जन्म : 1 जनवरी, 1945 नरपत गंज, जिला : पूर्णियां (बिहार)
प्रमुख कृतियां : 'नये गांव में', 'अलग अलग अपरिचय', 'बीच से टूटा हुआ', 'नया घर चढ़े' (कहानी संग्रह) 'क्या घर क्या परदेस', 'पंचमी तत्पुरुष' (उपन्यास) दो संपादित कहानी संग्रहों के अतिरिक्त कहानियों का विविध भारतीय भाषाओं में अनुवाद.
संप्रति : यूनिवर्सिटी प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सी.एम. कॉलेज, दरभंगा (बिहार)
संपर्क : 2-टीचर्स क्वार्टर, किलाघाट, शुभंकरपुर, दरभंगा (बिहार)

हालांकि कोई लंबा अंतराल नहीं था, फिर भी गांव लौटते हुए अ- अतिरिक्त पुलक महसूस हो रही थी बिंदा बाबू को. पांच-छ: महीने पहले वे गांव तब आये थे जब मां की बीमारी की ख मिली थी. लेकिन इस बार कुछ विशेष था और उस विशेष पर सोच वे आंतरिक आहलाद से भीग से रहे थे. गांव-घर वैसे भी प्रवास में वि हुए मन को ममत्व के स्पर्श से सहलानेवाला एक एहसास होता है. ही अभावग्रस्तता, बेकारी और टुच्चेपन के कारण गांव से भागना प हो, फिर भी सुदूर के उसी गांव-घर के लिए मन में ललक भरा आक बना रहता है. बिंदा बाबू किसी ऐसी भावुकता के कारण अपने गांव- के लिए व्याकुल नहीं रहे. गांव में छूटे हुए अपने परिवार की समस्याएं उनको शहर में व्याकुल बनाती रही हैं. हर दो-चार महीने पर किसी किसी परेशानी के तहत उनको गांव आना पड़ता है.

लेकिन इस बार किसी परेशानी के कारण वे गांव नहीं जा रहे हैं. क बरसों बाद गांव में तीनों भाई एकत्र होंगे. मां रहेगी, अन्नो बहन रहें और तीनों भाई अपने-अपने परिवार के साथ रहेंगे. इससे बड़ा सुख क्या हो सकता है बिंदा बाबू के लिए? दोनों छोटे भाइयों को गांव में एक करने के लिए बिंदा बाबू को कितनी मेहनत करनी पडी है! डी.एस. कमलेश को कभी फुर्सत ही नहीं मिलती. राजे भी अपनी ऊ आमदनीवाली नौकरी में इतना रम गया है कि गांव-घर की सुध ही न लेता. बिंदा बाबू अपने दोनों छोटे भाइयों से साल-डेढ़ साल पर मिल लेते हैं, लेकिन गांव में पड़ी मां और बाल विधवा अन्नो बहन तो बरसों तरस रही हैं दोनों के लिए. कमलेश और राजेश तो कभी खोज-खबर नहीं लेते उनकी. बिंदा बाबू ने जब कभी अपने दोनों छोटे भाइयों से और अन्नो बहन की बावत बात की तो दोनों ने अलग-अलग तरह एक ही बात कही, "आप तो हैं ही भैया. रुपये-पैसे की जरूरत हो तो जाइये, लेकिन फुर्सत नहीं है हमारे पास."

अब जाकर फुर्सत मिली है कमलेश और राजेश को. वह भी मह दो-तीन दिनों के लिए. कई बरसों बाद दोनों गांव आ रहे हैं. यह कार्यक्र तय करने के लिए बिंदा बाबू चार-पांच महीने से परेशान थे. कई बा खत लिखे, फिर कमलेश और राजेश से अलग-अलग मिले. कितने आरजू-मिन्नत के बाद दोनों अपने-अपने परिवार के साथ गांव आने लिए तैयार हुए. रामनवमी के अवसर पर गांव पहुंचने की बात लगभ तय हो चुकी थी, लेकिन कमलेश को वह तारीख अनुकूल नहीं पड़ती थ कहने लगा कि रामनवमी में सांप्रदायिक कारणों से पुलिस विभाग की व्यस्तता बहुत बढ़ जाती है. आखिर पांच अप्रैल की तारीख तय हु

आज अप्रैल की पांच नहीं, छह तारीख है और बिंदा बाबू गांव पहुं रहे हैं. कमलेश और राजेश कल ही पहुंच गये होंगे. कैसा दुर्योग है कि उन्होंने ही कार्यक्रम बनाया और वे खुद एक दिन बाद गांव पहुंच रहे हैं लेकिन क्या करते! नगर निगम के स्कूलों में वेतन मिलने की को निश्चितता तो होती नहीं. अंत तक वेतन नहीं मिला तो जहां-तहां उधार-पैंचा लेकर गांव के लिए रवानां हुए. पत्नी, बड़ी बेटी शारद और सबसे छोटे बेटे किशोर को भी उन्होंने अपने साथ ले लिया.

रास्ते पर बिंदा बाबू घर पहुंचने की ही बात सोचते रहे. अपने दोनों छोटे भाइयों को उनकी पूरी हैसियत के साथ अपने गांव के घर में देखने का संभावित सुख उनको अभिभूत करता रहा. कितने सम्मानित पद पर पहुंच गये दोनों भाई! कमलेश डी.एस.पी. है और सबसे छोटा भा राजेश सीमा-शुल्क अधिकारी. राजेश ने पिछले साल गाड़ी भी खरीद ली. कमलेश तो पुलिस की जीप से ही आया होगा. गांव के उस उजड़े दरवाजे पर दो-दो गाड़ियां लगी होंगी. चहल-पहल होगी. दोनों 'भावहों' और उनके बाल-बच्चों से उस उजड़े से घर में नया जीवन आ गया होगा.

बिंदा बाबू जब भी अपने दोनों छोटे भाइयों पर सोचते हैं, उनका मन सात्विक आत्मश्लाधा से भर जाता है. गर्व होने लगता है अपने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलेश और राजेश को पढ़ाने के लिए कितना कठोर संघर्ष किया उन्होंने. आइ.ए. की परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर वे बी.ए. में गये ही थे कि पिताजी का देहांत हो गया. कमलेश कस्बे के हाई स्कूल में हॉस्टल में रहकर पढ़ रहा था—नवें दर्जे में. राजेश ने मिडल पास किया था. घर की आर्थिक हालत डावांडोल थी. छह एकड़ जमीन से तो गुजर-बसर ही मुश्किल से हो पाती थी. संयोग से उसी समय पटना सचिवालय में काम करनेवाले फूफाजी ने पटने में ही नौकरी की व्यवस्था कर दी. नगर निगम के मिडल स्कूल में शिक्षक की नौकरी मिल गयी. बिंदा बाबू ने सोचा कि पटने में रहेंगे तो दोनों भाइयों को किसी तरह पढ़ा ही लेंगे बाहर रखकर पढ़ाने की तो औकात ही नहीं थी. लिहाजा अपने साथ वे कमलेश और राजेश को पटना ले गये. उसके कुछ ही महीने बाद मां की लंबी बीमारी चली. रीढ़ की हड्डी में कोई रोग था. तीन महीने तक पटना अस्पताल में पड़ी रही मां. अस्पताल से निकली तो एक हद तक अपंग हो चुकी थी. लाठी का सहारा लेकर मां लगभग चौपाये की तरह चलने लगी थी. कितनी परेशानी के दिन थे वे बिंदा बाबू के लिए! लोहानीपुर में किराये का छोटा-सा कच्चा घर. खुद खाना बनाना, बर्तन मांजना और पुरानी-सी साइकिल पर कमलेश-राजेश को स्कूल तक पहुंचाना. फिर स्कूल की अपनी नौकरी... पत्नी को तो दो-ढाई साल बाद ले गये वहां. उधर गांव-घर की परेशानी अपनी जगह ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी. वहां मां थी और विधवा अन्नो बहन थी. खेती-बाड़ी का भार अन्नो बहन पर था. कुछ उपज वे गांव से ले आते थे, इसलिए राशन के मामले में एक हद तक निश्चिंत थे. फिर कमलेश और राजेश की पढ़ाई ने कमर तोड़ दी थी. स्कूल का काम और उसके बाद दो-दो घरों में जाकर ट्यूशन पढ़ाना. वह तो पत्नी थी कि कोई दुख कभी बड़ा महसूस नहीं हुआ. बिंदा बाबू को वह बात भुलाये नहीं भूलती. कमलेश बी.ए. की परीक्षा का फॉर्म भर रहा था. अंतिम तारीख बीत रही थी और किसी भी सूत्र से रुपये का इंतजाम नहीं हो पा रहा था. कमलेश खाना-पीना छोड़कर दिन भर कमरे में पड़ा रहा था. रात में पत्नी ने गहने उतारकर उनके सामने रख दिये थे. बिंदा बाबू की आंखों में आंसू आ गये थे उस वक्त. कमलेश भी रोने लगा था...

खैर, कमलेश और राजेश को पढ़ाने का सुफल मिल गया. अब उनको लगता है, कोई भी दुस्सह दुख यदि मीठे परिणाम लेकर आता है तो दुख नहीं रह जाता, बल्कि वैसे दुख को निमंत्रित करने का बार-बार मन करता है. परिवार की स्थिति को देखकर कमलेश बी.ए. ऑनर्स के बाद ही बी.पी.एस.सी. की परीक्षा में बैठा था और डी.एस.पी. के लिए चुन लिया गया था. राजेश ने एम.ए. किया, उसके बाद सीमा-शुल्क अधिकारी के पद पर उसकी नियुक्ति हुई. इस बीच बिंदा बाबू ने कभी अपनी ओर देखा ही नहीं. पत्नी अच्छी-सी साड़ी के लिए तरसती रह गयी. खुद बिंदा बाबू हर जाड़े में बंद गले के ऊनी कोट के लिए जब भी सोचते दूसरी जरूरतें अटल प्रश्न बनकर कोट की इच्छा को खारिज कर देतीं. एक भार तो उतर गया था, लेकिन दूसरा कंधे पर चढ़ बैठा था. बड़ी बेटी शारदा और उसकी पीठ पर तीन बेटे. तीन-चार बरस से शारदा की शादी की चिंता परेशान कर रही है. तेईस बरस की उम्र पार कर चुकी है शारदा. ढंग का कोई लड़का मिलता भी है तो तिलक-दहेज की सुनकर दिन में तारे दिखने लगते हैं. पहले तो उन्होंने सोचा था कि कमलेश-राजेश को चिंता होगी इसकी. वे क्या नहीं जानते कि भैया की औकात क्या है! क्या उनका यह फर्ज नहीं है कि शारदा की शादी करायें? दबी जबान से एक-दो बार उन्होंने इसकी बाबत कमलेश और राजेश से बात भी की, लेकिन कोई उत्साहवर्द्धक उत्तर नहीं मिला. तब उन्होंने सोचा, जब तीनों भाई एक साथ होंगे तभी वे इस समस्या को उठायेंगे. लड़कों की चिंता बिंदा बाबू को नहीं है. शारदा से छोटे अनिल और सुनील कॉलेज में पढ़ ही रहे हैं और सबसे छोटा किशोर तो अभी दस साल का ही है. अनिल और सुनील घर का साग-सत्तू खाकर किसी

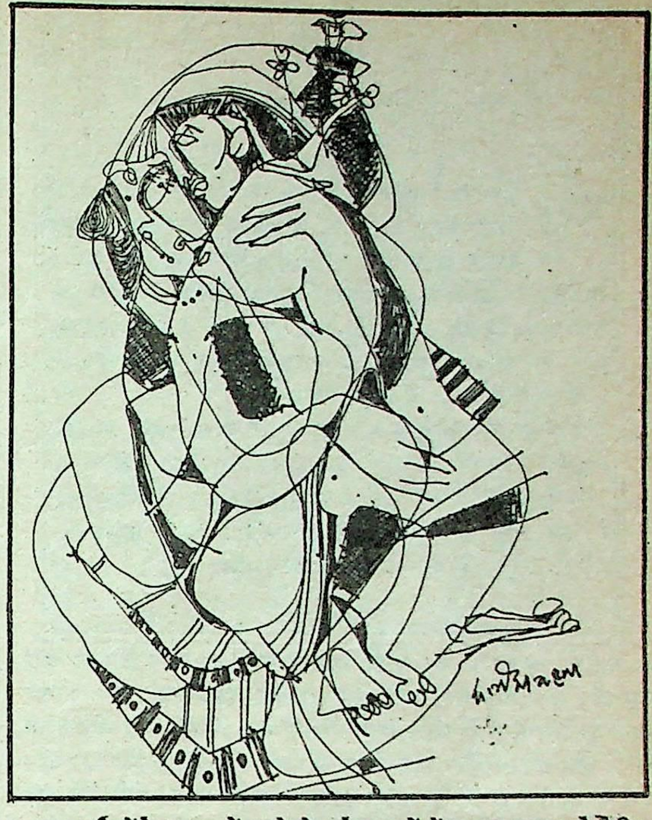

तरह पढ़ ही लेंगे. पटना में रहने के अनेक दुखों में एक यह सुख तो है कि बाल-बच्चे अगर पढ़ने वाले हों तो पढ़ ही लेते हैं किसी तरह. चिंता है तो शारदा की शादी की. बल्कि इसी मूल उद्देश्य से उन्होंने कमलेश और राजेश को गांव में बुलाया है. टूटे-फूटे घर को फिर से बनाने की भी बात होगी और बूढ़ी-बीमार मां की व्यवस्था पर भी विचार-विमर्श हो जायेगा. गांव में मां की देखभाल करने वाली अन्नो बहन के सिवा कोई नहीं है. मां बीमार पड़ती है तो दवा-दारू के लिए अन्नो बहन को जिस-तिस से आरजू-मिन्नत करनी पड़ती है. कितना बुरा लगता है! जिसके तीन-तीन बेटे हों, दो बेटे गजेटेड अफसर हों, उनकी मां भिखारिन की तरह रहे गांव में? बिंदा बाबू अकेले कितना देखें! कोई समस्या उठ खड़ी होती है और अन्नो बहन की चिट्ठी आती है तो उन्हीं को आना पड़ता है. कमलेश और राजेश को तो फुर्सत ही नहीं मिलती. नौकरी से फुर्सत मिले भी तो शायद अपने से फुर्सत नहीं मिलती होगी. बिंदा बाबू के मन में यह बात गर्व या अधिकार बनकर बैठी हुई है कि इस बार दोनों भाइयों को कसकर लताड़ेंगे. अफसर हुए तो क्या, कर्त्तव्यनिष्ठा में त्रुटि के लिए छोटे भाइयों को क्यों नहीं डांट सकते? बेटों की तरह उनको पढ़ाया-लिखाया है, इतने दुख सहे हैं उनके लिए, क्यों नहीं डांट सकते वे?...

अपने भीतर के माध्यम पुरुष से ऐसे ही संवादों को बनाते-बिगाड़ते वे गांव के पास के रेलवे स्टेशन तक आये थे. पास बैठी बेटी शारदा को वे जब भी देखते, दुश्चिंताओं के बादल से घुमड़ने लगते उनके भीतर. फिर वे सोचते कि इस बार वे कमलेश और राजेश से जरूर कहेंगे.

इक्का दरवाजे के आगे ही था. छोटा बेटा किशोर इक्के से कूदकर नीचे आ गया और दरवाजे की तरफ दौड़ने लगा. बिंदा बाबू ने दरवाजे पर चहल-पहल देखी. एक कार और दो जीपें लगी हुई थीं दरवाजे पर. अलग हटकर एक मोटर साइकिल भी खड़ी थी. कुर्सियों पर कुछ लोग बैठे हुए थे. इक्के को दरवाजे की तरफ आते देखकर सब-के-सब इक्के को ही देखने लगे थे. बिंदा बाबू अपने घर के दरवाजे पर लगी कार-जीप-मोटर साइकिल और लोगों की भीड़ को देखकर प्रसन्नता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़े

□ वीणा श्रीवास्तव

लोकमान्य तिलक जब विलायत से लौटे तो पूना के अकोंरेश्वर मंदिर के प्रांगण में उनके तथा तात्या साहेब कलेकर के सम्मान में एक स्वागत समारोह आयोजित किया गया. समारोह संपन्न होने के पश्चात् जब लोकमान्य तिलक अपनी दो घोड़ों की बग्घी में बैठने के लिए चले, तो एक स्वयं सेवक ने आगे बढ़कर उन लोगों को पहनायी गयी मालाएं बग्घी में रखनी शुरू की.

इस पर तिलकजी ने सारे हार बग्घी के कोचवान की ओर बढ़ाते हुए कहा, "लो, यह हम अब अपने दोनों घोड़ों के गले में डाल दो. जिस तरह तुम्हारे ये दोनों घोड़े इस बग्घी को खींचते हैं, उसी प्रकार हम दोनों भी तो देश रूपी बग्घी को खींचते है. इस प्रकार हममें व इन घोड़ों में कोई अंतर नहीं है." □

आप्लावित हो रहे थे. यह सुदिन आखिर देखने को मिल ही गया. यहीं सब कुछ तो सोचा था उन्होंने.कमलेश और राजेश दरवाजे से उठकर इक्के के पास आये थे. बारी-बारी से दोनों ने अपने बड़े भैया और भाभी के पैर छुए थे. कमलेश और राजेश के पीछे-पीछे पुलिस इंस्पैक्टर और थाने के दारोगाजी भी थे. मालूम हुआ, ये लोग कमलेश से मिलने आये हैं. बिंदा बाबू दरवाजे पर पहुंचते ही एकदम भूल गये कि वे मिडल स्कूल के अदना से हैडमास्टर हैं. आश्वस्ति की एक गहन प्रतीति और आत्मगौरव उनको जगह से बहुत ऊपर उठा चुका था. उनकी पत्नी और बेटी शारदा अंदर आंगन में चली गयी थीं. बिंदा बाबू जब तक दरवाजे पर लगी कुर्सी पर बैठ नहीं गये तब तक कमलेश और राजेश के साथ पुलिस इंस्पैक्टर, दारोगा वगैरह सब खड़े रहे. बिंदा बाबू को इस वक्त बहुत कुछ याद आ रहा था. याद आ रहा था कि बहुत पहले दीवानी से फौजदारी बन गये एक मामले में जब वे अपने पिताजी के साथ थाना गये थे तो दारोगा ने तुम संबोधन से बात की थी और बैठने के लिए भी नहीं कहा था. आज वही घर है. दरवाजे पर पुलिस इंस्पेक्टर और दारोगा चपरासी की मुद्रा में खड़े हैं.

तीसरे पहर की धूप आंगन से खिसक रही थी. बिंदा बाबू खाना खाकर आंगन से आ गये थे. दालान की फटी हुई छांह में वे कुर्सी डालकर बैठे गये और किसी तटस्थ व्यक्ति की तरह अपने पुश्तैनी घर का मुआयना करने लगे. वही बूढ़ी दालान थी. फूस की छप्पर जहां-तहां से दब गयी थी और इस कारण दालान की आकृति एकदम टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी थी. बांस-बत्तियों वाली मिट्टी की भीत भी गल-गलकर ढह रही थी. खंड-खंड भीत चकत्तों की तरह बांस की खपच्चियों पर चिपकी दिखती थी. आंगन के तीनों ओर की तीनों खपरैलों की हालत भी बिलकुल वही थी. हर साल बारिश की शुरुआत के पहले मरम्मत का काम बिंदा बाबू न कराते होते तो खपरैंलें कब की बैठ गयी होतीं. विचित्र-सा उजाड़पन आंगन-दरवाजे पर पसरा हुआ था, लेकिन अचानक इस टूटे-फूटे घर में जिंदगी लौट आयी थी. वसंत ऋतु में 'भुआ' कीड़े के खाये सहजन के रोगी वृक्ष फूलों के भार से जैसे टूटने-टूटने को हो आते हैं, यह घर भी वैसा ही प्रतीत हुआ बिंदा बाबू को. कमलेश और राजेश के बच्चे धमाचौकड़ी मचाये हुए थे आंगन-दरवाजे पर. गांव के कुछ लोग भी दालान में बैठे हुए थे. बिंदा बाबू को सबसे ज्यादा खुशी दरवाजे के किनारे जीप और कार को देखकर हो रही थी. इस टूट-फूटे घर के दरवाजे पर खड़ी जीप और कार इतनी अस्वाभाविक और अपच-सी लग रही थी जैसे किसी देहाती ने सूट-टाई पहन ली हो... बिंदा बा[...] अपने इस सादृश्य पर मन ही मन हंसते रहे तक. सुंदर और सजी-ध[...] भावहों की चपल आवा-जाही से घर-आंगन का टूटा सन्नाटा कित[...] प्रीतिकर लग रहा था बिंदा बाबू को, इसकी माप वे स्वयं कर [...] रहे थे.

शाम से कुछ पहले लोग दरवाजे से उठकर चले गये थे. कमलेश औ[...] राजेश आंगन की तरफ से निकलकर आये और दरवाजे पर लगी कुर्सि[...] पर बैठ गये. बिंदा बाबू ने सोचा, कुछ बात करनी चाहिए. उन्हों[...] कमलेश से पूछा, "तुम तो आज सवेरे ही पहुंचे यहां न?" दरवाजे [...] आगे भरे हुए कुएं की ओर देखते हुए कमलेश ने धीरे से कहा, "हां, य[...] तो आज सवेरे ही आया, लेकिन कल शाम ही आ गया [...] फारबिसगंज."

"क्यों, फारबिसगंज में क्यों रह गये थे रात में? पांच-छह किलोमीट[...] चलकर यहां नहीं आ सकते थे?" बिंदा बाबू ने अभिभावक वाली अप[...] पुरानी मुद्रा में पूछा तो कमलेश ऊं-आं करने लगा, "वहां कोशी [...] आई.बी. में ठहर गया. साथ में परिवार था. सोचा, यहां सबके रहने क[...] व्यवस्था नहीं हो पायेगी. राजेश ने कमलेश के हां में हां मिलाते हु[...] कहा, "भले रात में भैया यहां नहीं आये! आते तो जमीन पर पुआ[...] बिछाकर सोते और रात भर मच्छरों से कटवाते रहते. मैं आया कल औ[...] सपरिवार रात भर जागता रहा. बस एक खाट है सही-सलामत. वही [...] वाली खाट. अन्नो दादी लकड़ी के तख्ते पर सोती है. घर में जाने कै[...] दुर्गंध है. प्रत्यूष की मां तो रात भर बेचैन रही. घर भी ऐसा है कि बंद घ[...] में कुत्ता एक तरफ से घुसता है और दूसरी तरफ से निकल जाता है."

बिंदा बाबू ने हंसते हुए कहा, "बस यही सब दिखाने के लिए तो तु[...] दोनों को यहां गांव में बुलाया है मैंने. अपनी आंखों से तुम लोग भी देख लो[...] कि तुम्हारे पुश्तैनी घर की क्या हालत हो गयी है. मां और अन्नो बह[...] किस हालत में रहती हैं यहां..."

कमलेश ने फीकी हंसी हंसते हुए विदा लेती धूप को पेड़ की फुनगियों [...] पर देखा और उधर ही मुंह किये धीरे से बोला, "मां और अन्नो बहन क[...] क्या है भैया. अब तक रह आयी हैं तो रह ही लेंगी किसी तरह." बिंद[...] बाबू को अपने भीतर खरोंच-सी लगी, फिर भी वे अपना दर्द पी गये[...] गंभीरता की जड़ पकड़ती बात को उन्होंने वहीं काट दिया, "नहीं [...] कमलेश, मेरा मतलब है कि यहां भी पक्के का एक छोटा-सा घर ह[...] जाये तो कितना अच्छा हो! मां और अन्नो बहन इस टूटती-ढहती [...] खपरैल में रहें तो 'सर-समाज' भी कहेगा न कि... लोग क्या कहकर इ[...] घर का परिचय देंगे? यही कहेंगे न कि यह घर कमलेश बाबू और राजेश [...] बाबू का है. मेरा नाम कोई नहीं लेगा, सो जान लो. यह कोई नहीं कहेगा [...] कि मिडल स्कूल के हेडमास्टर बिंदा बाबू का घर है यह!"

राजेश की आवाज कुछ तीखी हो गयी थी, "यह सब बेकार की [...] भावुकता है भैया. बेमतलब खर्च करने से क्या फायदा! हम लोगों को तो [...] रहना है नहीं यहां..." बिंदा बाबू ने सोचा, बात बढ़ रही है और किसी भी [...] अप्रिय मोड़ पर पहुंच सकती है. उन्होंने इस प्रसंग को यहीं विराम दे दिया [...] और दरवाजे पर बच्चों का खेल देखने लगे. राजेश का नौ-दस साल का [...] बेटा बैलगाड़ी के 'पछुए' पर बंदर की तरह लटका हुआ था. कमलेश के [...] बच्चे भी बैलगाड़ी पर उछल-कूदकर रहे थे. इन बच्चों के सामने [...] उनका बेटा किशोर बिलकुल घरेलू नौकर की तरह दिख रहा था. थोड़ी [...] देर बाद आंगन में गये बिंदा बाबू. दोनों भावहों के सामने उनकी पत्नी [...] की भी वही हालत थी. हालांकि उनकी पत्नी ने आज सूती प्रिंट की सा[...] साड़ी पहन रखी थी जिस साड़ी को वह अपनी सबसे कीमती साड़ी [...] मानती थी और खास-खास अवसरों पर ही पहनती थी.

शाम को कमलेश और राजेश के बच्चे पहन-ओढ़कर तैयार थे. यही [...] तैयारी बिंदा बाबू ने अपनी दोनों भावहों में भी देखी. उनकी समझ [...] नहीं आ रहा था कि यह तैयारी आखिर कहां के लिए है. क्या किसी के घर [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहे हैं सब? आंगन में गये तो मां ने बताया कि कमलेश और राजेश बगल के शहर फारबिसगंज जा रहे हैं. रात में वहीं रहेंगे. बिंदा बाबू भीतर से उबलने लगे थे. बाहर आकर उन्होंने कमलेश से पूछा, "सुना, फारबिसगंज जा रहे हो तुम लोग!" कमलेश ने झेंपते हुए जवाब दिया, "मेरी तो इच्छा नहीं थी भैया, लेकिन बहुत दिक्कत है यहां. बाथरूम है नहीं और बच्चे खेत में पाखाना करने से डरते हैं. वही हालत दोनों 'बहुरियों' की भी है. आज नहाया भी नहीं है दोनों ने. नहायें कहां? इसलिए सोचा कि रात में आइ.बी. में रह लेंगे और कल सवेरे आ जायेंगे यहां. फारबिसगंज की दूरी ही क्या है!" बिंदा बाबू कुछ बोले नहीं. उनके भीतर कुछ बुरी तरह झनझना कर टूट गया था. उठकर वे दरवाजे के आगे भरे हुए कुए के पास चले गये और कुएं के चारों और उगे हुए जंगली पौधों को देर तक देखते रहे. बगल में नारियल के झंखाड़ पेड़ पर बया के घोसले खाली बटुए की तरह झूल रहे थे.

कमलेश और राजेश को बिंदा बाबू की नाराजगी का एहसास हो गया था. दोनों ने आइ.बी. में रात गुजारने का कार्यक्रम रद्द कर दिया. लेकिन आंगन में उनके इस निर्णय की तीखी प्रतिक्रिया हुई थी. कमलेश और राजेश की पत्नियां जो तैयार हो चुकी थीं, अब मुंह फुलाकर पूरब और पश्चिम वाले घर में लेटी हुई थीं. बिंदा बाबू को उनकी पत्नी ने फुसफुसाते हुए कहा था, "दोनों बहुरिया शहर जाने के लिए तैयार थीं. वहां किसी अफसर के यहां रात का खाना था इनका. रात में पिक्चर देखने की बात थी. आपने सब चौपट कर दिया. क्या जरूरत थी उनको रोकने की? दोनों बहुरिया भुनभुना रही हैं आप पर. मुझको सुना कर वे जो कह रही थीं वह मैं आपसे नहीं कह सकती..."

बिंदा बाबू को लगा, जैसे वे किसी ऊंचे पेड़ से गिर गये हों. अपनी ही गलती से लगी चोट को वे सहलाते रहे. बिना कुछ बोले एक मानसिक तनाव झेलते हुए वे पड़ोस में नंदू भैया के घर चले गये. दो-ढाई घंटे बाद वे लौटे तो देखा चार खाटें, तोसक-तकिये-जाजिम-मच्छरदानी वगैरह दरवाजे पर नंदू भैया के आदमियों ने पहुंचा दिये हैं. दो पेट्रोमैक्स भी आ गये थे मुखियाजी के घर से. आंगन-दरवाजे पर दिन वाली वही उत्सवी वातावरण लौट आया था. पेट्रोमैक्स की उजली रोशनी में खाना पक रहा था. शारदा अपनी मां के साथ खाना बनाने में लगी हुई थी. अन्नो बहन बर्त्तन मांज रही थी. जरूरत पड़ने पर बीच-बीच में आंगन के दूसरे कोने में चांपाकल से बाल्टी में पानी भर कर रसोईघर के बरामदे पर रख आती थी. कमलेश और राजेश की पत्नियां आंगन-ओसारे पर घूम-टहल रही थीं.

बिंदा बाबू को बड़ा प्रिय लग रहा था घर-आंगन का माहौल. यही तो सपना था उनका. वे कई बार आंगन से हो आये थे. मां रसोईघर के बरामदे पर अपनी छोटी-सी पतली लाठी को खूंटे की तरह पकड़कर चुपचाप बैठी हुई थी. बिंदा बाबू ने मुस्कराते हुए मां की तरफ देखा. मां ने भी मुस्कराने की चेष्टा की, लेकिन मुस्करा नहीं पायी.

रात को तीनों भाई एक साथ खाना खाने बैठे तो मां भी ओसारे पर एक किनारे आकर पांवों के बल बैठ गयी थी. बिंदा बाबू की पत्नी और शारदा खाना खिला रही थीं. मां ने मुंह का लार गटकते हुए धीरे से कहा था, "बहुत दिन बाद अपने तीनों बेटों को एक साथ खाना खाते हुए देख रही हूं. बहुत दिन हुए... बहुत दिन हुए..." मां की आंखों में अनजाने ही आंसू आ गये थे. बिंदा बाबू कुछ देर तक मां के चेहरे को देखते रहे. झुर्रीदार खुरदुरे-मटमैले चेहरे पर आंसू की पतली-सी धारा ऐसी लग रही थी जैसे गर्मियों में सूखी-फटी जमीन पर सोते का पानी आ गया हो कहीं से. मारकीन साड़ी के छोर से आंखें पोंछती रही थी मां. आंखें पोंछते-पोंछते फटी-फटी कांपती-सी आवाज में मां बोली थी, "अब तो शारदा की शादी में ही तुम तीनों भाई यहां आओगे." मां की इस बात से बिंदा बाबू को सहसा याद आया था कि अभी तक उन्होंने कमलेश और राजेश से शारदा की शादी की बाबत कोई बात ही नहीं की है. उसी

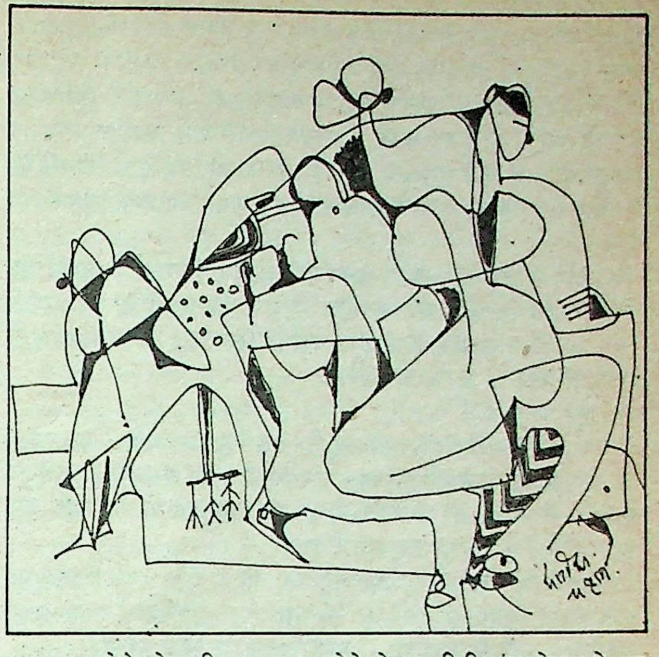

समय उन्होंने सोचा कि खाना खा लेने के बाद निश्चिंत होकर वे इस समस्या पर दोनों भाइयों से बात करेंगे. हाथ धोने के लिए वे पीढ़े से उठे तो मां भी हुंह की एक अभ्यस्त कराह के साथ लाठी का सहारा लेकर उठने को हुई. **मां के कान के पास अपना मुंह करके बिंदा बाबू कुछ** जोर से बोले, "तुम बैठी रहो न मां." पता नहीं मां ने क्या अर्थ लगाया. पंजों के बल पूर्ववत् बैठकर वह एकटक बिंदा बाबू को देखती रही. मां की इस कारुणिक स्थिति पर बिंदा बाबू कुछ क्षणों तक जाने क्या सोचते रहे. एक तो बहुत ऊंचा सुनती है मां, दूसरे, आंखें भी काफी कमजोर हो गयी हैं. दिन की रोशनी में तो ज्यादा दिक्कत नहीं होती, लेकिन अंधेरे में कुछ देख नहीं पाती है. वह तो अन्नो बहन है कि मां किसी तरह घिसटती हुई जी रही है.

दरवाजे पर पेट्रोमैक्स की रोशनी के दायरे से बाहर काला भभूक अंधेरा था. टोले में जहां-तहां किसी-किसी घर में रोशनी की बूंदें दिख रही थीं. बाहर खुले आकाश के नीचे कुर्सियों पर कमलेश और राजेश बैठे थे. दोनों को शायद सोने की हड़बड़ी थी, लेकिन अपने बड़े भैया को बातचीत की मुद्रा में बैठे देख वे भी बैठे रह गये थे. लाठी टेकती हुई मां भी आ गयी थी और नीचे जमीन पर बैठने लगी. बिंदा बाबू ने मां को सहारा देकर खाट पर बिठा लिया था. मां की यह पुरानी आदत रही है. पिताजी जीवित थे उसी समय से बिंदा बाबू देखते आये हैं. पिताजी चाचा से कोई **सलाह-मशविरा करते होते तो मां इसी तरह बगल में आकर चुपचाप** बैठ जाती थी और बिना कोई टीका-टिप्पणी किये अंत तक बैठी रहती थी. लेकिन उन दिनों तो मां बहरी नहीं थी. मां को चुपचाप आकर बैठे देख बिंदा बाबू धीरे से मुस्कराये थे. क्या सुनेगी मां? बिंदा बाबू कुछ बोले इसके पहले ही कमलेश ने हंसते-हंसते पूछ लिया, "कहां से आपने खाट-चारपाई वगैरह जमाकर ली भैया? तोसक-तकिये-मसहरी..." बिंदा बाबू मुस्कराते हुए बोले, "अरे, नंदू भैया से कहा कि कमलेश और राजेश कैसे सोयेंगे, कोई इंतजाम–बात तो है नहीं. बस इतना भर कहना था कि नंदू भैया ने अपने बेटों-भतीजों को बुलाया और थोड़ी ही देर में सब इंतजाम हो गया. नंदू भैया बोले कि एक-दो रात हम सब नीचे जमीन पर सोयेंगे..."

उनींदी और भर्रायी आवाज में राजेश ने हल्का-सा प्रतिवाद किया, "फिर भी नींद नहीं आयेगी. एक तो गर्मी इतनी है, फिर घर भी एकदम खुला हुआ है. खपरैल वाली छत को देखकर तो लगता है कि अब गिरी तब गिरी..." बिंदा बाबू हंसने लगे "यही दिखाने के लिए तो तुम दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाइयों को यहां बुलाता है कि देख लो अपने पुश्तैनी घर को जहां तुम्हारा जन्म हुआ और आज भी जहां मां और अन्नो बहन रहती हैं, वह घर कैसा है." शायद उनींदे होने के कारण कमलेश की आवाज में झुंझलाहट आ गयी थी, "आप घर वाली बात फिर ले बैठे भैया! यहां घर बनाकर क्या होगा, यह मेरी समझ में नहीं आता. मां की जिंदगी ही कितनी है! दो-चार साल और... बच गयी अन्नो बहन तो वह भी किसी तरह रह ही लेगी."

राजेश ने कमलेश का ही समर्थन किया था, "मेरा तो विचार है कि जमीन-जायदाद और घर का मोह छोड़िये. सवाल तो मां और अन्नो बहन का है न! क्यों न हम लोग दोनों के लिए कोई रास्ता निकाल लें ताकि समस्या ही खत्म हो जाये."

"क्या मतलब?"

राजेश ने दूसरी तरफ अंधेरे के पार देखते हुए कहा था, "मतलब... मां और अन्नो बहन को हम लोग बांट लें और यहां की जमीन-जायदाद बेच लें. बेमतलब की परेशानी है यह सब. आपको भी भैया बार-बार आना पड़ता है देखभाल करने के लिए...."

बिंदा बाबू भीतर से एकदम लड़खड़ा गये थे, लेकिन संयत रहते हुए कांपती-सी आवाज में बोले थे, "तो बांट लो." कमलेश ने इधर-उधर देखते हुए धीरे से कहा था, "अन्नो बहन मेरे साथ रहेगी."

"और मां?" बिंदा बाबू डबडबायी आंखों से राजेश की तरफ देखने लगे थे. राजेश निरुत्तर था. उसके पक्ष से कमलेश ने ही क्या कहा था, "क्या हर्ज है, अगर मां आपके साथ रहे?"

"सो तो रहेगी ही मां मेरे साथ. मां ही क्यों, अन्नो बहन भी मेरे ही साथ रहेगी. लेकिन तुम दोनों में से कोई भी मां को रखने के लिए तैयार नहीं हो. अन्नो बहन को तुम दोनों रखना चाहते हो. सोचते हो, दाई का काम निकल आयेगा. क्यों?"

मां अपने बहरेपन की वजह से शायद कुछ समझ नहीं पा रही थी, लेकिन अपने तीनों बेटों के बीच अचानक सैलाब की तरह उमड़ आये इस तनाव में चेतना के स्तर पर ऊब-डूब कर रही थी. बिंदा बाबू सहसा, असहज और गमगीन हो गये थे. पराजित स्वर में, आत्मयातना-सी झेलते हुए वे धीरे से बोले थे, "तुम दोनों तो बाहर रहते हो. मौके-बेमौके मुझे ही आना पड़ता है देखने-सुनने. मां लाठी टेकती हुई बनिये की दूकान तक सौदा-सुलुफ लाने जाती है. लोग हंसते हैं कि देखो, बुढ़िया को. चौपाये की तरह ठकर-ठकर लाठी टेकती अंचरा में दाल-मसाला बांधे सावजी की दूकान से आ रही है. कहां तो बुढ़ापे में सुख मिलना चाहिए था, कहां यह दुर्दशा है.... मैं कहां ले जाऊं इन सब को! मास्टरी में कितना मिलता है यह तो जानते ही हो. वह तो घर-घर घूमकर ट्यूशन पढ़ाता हूं, इसलिए बच्चे भी पढ़े रहे हैं." पेट्रोमैक्स की उजली रोशनी में बैठी मां अकचकायी चिड़िया-सी अपने तीनों बेटों को देर तक देखती रही.

कमलेश और राजेश उठने लगे थे. दोनों अंदर आंगन में चले गये तब तक मां और बिंदा बाबू खाट पर बैठे रहे. पेट्रोमैक्स में सिमट आयी रोशनी अब अंतिम सांसें ले रही थी. मां को सहारा देकर बिंदा बाबू खाट से उतारने लगे. उनकी पत्नी बगल में खड़ी थी. मां को वह अंदर आंगन की तरफ ले जाने लगी. बिंदा बाबू खाट पर उसी तरह बैठे रहे. सोचने लगे कि शारदा की शादी की बाबत तो कोई बात ही नहीं हो सकी भाइयों से. जाने कैसे पूरा मामला ही गड़बड़ा गया. फिर सोचने लगे कि उन्होंने क्या बुरा कहा! जिन भाइयों को इतनी तकलीफ झेलकर पढ़ाया-लिखाया, क्या उनका इतना भी अधिकार नहीं है कि दो बात कह सकें? वे क्यू इतनी-सी बात भी नहीं सह सकते?...

टूटी दालान से टुकड़ा-टुकड़ा काला आकाश और उस पर बूंद-बूंद तारों को देखते-देखते बिंदा बाबू ने रात काट दी. सुबह जब पिछवाड़े के बांस-वन में चिड़ियों का कलरव शुरू हुआ तब थोड़ी देर के लिए झपकी आयी. सूर्योदय के बाद ही वापसी के लिए कमलेश और राजेश की तैयारी शुरू हो गयी थी. बिंदा बाबू ने चाहा कि दोनों भाइयों को रुकने के लिए कहें, लेकिन कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई. मां दहलीज के पास लाठी का सहारा लिये चौपाये वाली आकृति में खड़ी टुकुर-टुकुर देख रही थी. कल का लगा मेला आज उखड़ रहा था. कमलेश और राजेश के बच्चे वापसी के उल्लास में अपनी-अपनी गाड़ियों पर उछल-कूद मचाये हुए थे. बिंदा बाबू की पत्नी एक किनारे मूर्त्तिवत् खड़ी थी. अन्नो बहन मां से लगी खड़ी थी और मुंह पर बायीं हथेली रखे दरवाजे की तरफ देख रही थी. कमलेश और राजेश जब बारी-बारी से मां के पैर छूने लगे तो बिंदा बाबू को मां के चेहरे की ओर देखने की हिम्मत नहीं हुई. बूढ़ी आंखों में निस्सहायता के आंसू देखना सबके बूते की बात नहीं होती. खासतौर से उस मां के आंसू जिसके दो-दो बेटे अफसर हों. कमलेश और राजेश नाटक के पात्रों की तरह बिंदा बाबू के पैर छूने आये तो बिंदा बाबू रोक नहीं सके अपने को. आंसू छिपाने की कोशिश में वे दरवाजें के आगे बूढ़े झंखाड़ नारियल के पत्तों पर लटके बया के घोंसले को देखने लगे.

कमलेश और राजेश अपनी-अपनी गाड़ी की तरफ बढ़ रहे थे. इधर बिंदा बाबू का सबसे छोटा बेटा किशोर अपनी मां को तंग कर रहा था, "मैं भी कार पर चढ़ूंगा मां. कभी नहीं चढ़ा हूं कार पर." मां समझा रही थी, "कहां जाओगे? वे लोग तो जा रहे हैं." लेकिन किशोर अपनी जिद्द पर अड़ा था, "बस उतर जाऊंगा आगे... स्कूल के पास. कभी नहीं चढ़ा हूं कार पर मां." बिंदा बाबू ने किशोर का यह हठ देखा तो राजेश के ड्राइवर को बुलाकर धीरे से कह दिया, "किशोर को ले लो. आगे स्कूल के पास उतार देना."

कमलेश की जीप आगे थी—दरवाजे के आखिरी छोर पर. राजेश की कार पीछे ठीक दालान के सामने थी. वह अपनी कार में अगली सीट पर ड्राइवर की बगल में बैठ गया था. उसकी पत्नी और दोनों बच्चे पिछली सीट पर थे.

ड्राइवर की सीध में बायें छोर पर बैठा प्रत्यूष गेट बंद करने की कोशिश कर रहा था. किशोर ने अंदर घुसना चाहा तो प्रत्यूष ने झिड़क दिया, "तुम कहां जाओगे? हम लोग तो अपने घर जा रहे हैं." किशोर को हल्का-सा धक्का देते हुए प्रत्यूष ने गेट बंदकर लिया. शरीर का संतुलन बिगड़ जाने के कारण किशोर सीधे जमीन पर गिर पड़ा. राजेश नीचे झुका हुआ था और अपने पैरों के पास पत्नी को कलाई से फिसलकर गिरा सोने का कंगन खोज रहा था. कार आगे बढ़ गयी. बिंदा बाबू ने दौड़कर अपने बेटे को उठाया. अपने घुटनों को पकड़े किशोर ठीक अपनी दादी की तरह चौपाया-सा बना गुजरती हुई कार को डबडबायी आंखों से देखता रहा. बिंदा बाबू इस तरह अविचल खड़े थे जैसे मूर्ति बन गये हों. मां, अन्नो बहन, शारदा और बिंदा बाबू की पत्नी भी निश्चल-निस्पंद आंखों से धूल उड़ाती दोनों गाड़ियों के अंतिम छायाभास को पकड़ने की कोशिश कर रही थीं.

बिंदा बाबू सामने की उस सुनी-उदास सड़क को देखते रहे. फिर जाने क्या सोचकर मुस्कराते हुए उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा. उनकी पत्नी भी मुस्करायीं. खिलती हुई कली की तरह मुस्कराहट धीरे-धीरे हंसी का फूल बन गयी. पति-पत्नी के बीच इस हंसी की कोई पृष्ठभूमि रही होगी. दोनों शायद उसी पृष्ठभूमि पर सोचते हुए अपने पर या एक-दूसरे पर हंस रहे थे. मां ने अपना चेहरा उठाकर बिंदा बाबू को देखा और मुस्कराने लगी. यह एक विचित्र विसंगत स्थिति उत्पन्न हो गयी थी. किशोर अपने घुटनों का दर्द भूलकर सीधा खड़ा हो गया था और मूर्ख की तरह सबको हंसते देख हंसने लगा था. कीचड़ भरे रास्ते पर फिसलकर गिरनेवाला आदमी दूसरों को अपनी स्थिति पर हंसते देख जैसे खुद हंसने लगता है, यह हंसी शायद उसी स्तर की थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किराये का इन्द्रधनुष

'सॉरी सर...' वह कुछ कहना चाहती है पर सिर झुका लेती है.

आखिर ऐसा क्या हो गया था कि वही लड़की जो थोड़ी देर पहले उसे आमंत्रित कर रही थी... अब धम्म से आकर उसी के सामनेवाले सोफे पर बैठ गयी थी...!

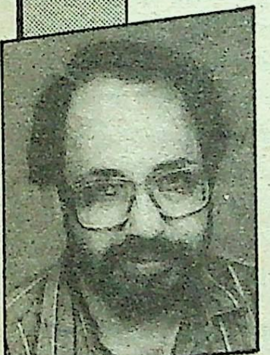

☐ सूरज प्रकाश

जन्म: 1952 देहरादून

सूरज के लिए लेखन टूटते हुए जीवन मूल्यों और खोखले हो रहे रिश्तों की तह तक जाने का एक जरिया है. भौतिक सुखों की अंधी दौड़ में जो पिछड़ गये हैं, उन्हें अपना पात्र और प्रिय मानते हैं.

संपर्क: 3 एच अपेक्स फ्लैट्स, अंकुर चार रास्ता, नारायण पुरा, अहमदाबाद

बंबई की बरसात भी बस मुसीबत ही है! कहां तो सोचा था कि इन दो-तीन दिनों में पूरी बंबई घूमूंगा. इस माया नगरी को खुद अपनी आंखों से देखूंगा और कहां मैं फंसा पड़ा हूं इस गेस्ट रूम में जब से यहां आया हूं, यह झड़ी जो लगी है, रुकने का नाम ही नहीं ले रही. इस कमरे में चहल-कदमी करते-करते थक गया हूं. लेटने की कई बार कोशिश की है परंतु इतना नरम बिस्तर होते हुए भी तुरंत उठ बैठता हूं. कमरे की एक-एक चीज को कई-कई बार देख चुका हूं. सारी पत्रिकाएं तो कल ही देख ली थीं, लेकिन मन में जो एक अजीब-सी कड़वाहट घर कर रही है—गुस्से की, बेचैनी की, उससे वक्त काटना और भी मुश्किल हो रहा है. और ऊपर से यह बरसात, मेरे भीतर उठते तूफान को और तेज कर रही है. पता नहीं, कब तक इस कैद में रहना होगा.

मैं इसे कैद क्यों कह रहा हूं! यह इतना बढ़िया गुदगुदे मैट्रेसवाला डबल-बैड, आराम कुर्सियों, किताबों से अटी पड़ी अल्मारियों, शो-केस, अटैच्ड बाथरूम, जिसमें गर्म पानी की सुविधा है, सब कुछ साफ-सुथरा. सब कुछ तो यहां है. क्या हुआ जो इस कमरे में समुद्र की ओर खुलनेवाली कोई खिड़की नहीं है. और तो कोई कमी नहीं. फिर बंबई जैसे मंहगे शहर में तीन-चार दिनों के लिए इतनी अच्छी तरह से रहने और साथ में खाने-पीने की सुविधा को मैं कैद कह रहा हूं, जिसे मैं कैद कह रहा हूं, कभी सपने में भी कफ परेड जैसे पॉश इलाके में 20 वीं मंजिल पर इतने आलीशान फ्लैट के गेस्ट रूम में रहने के बारे में नहीं सोच सकता था! क्या मेरी इतनी औकात है या थी कि मैं इतनी खूबसूरत जगह में आराम से पसरा रहूं और चाय, नाश्ता सब कुछ मेरे कमरे में पहुंचा दिया जाये और यह सब सेवा एक ऐसी नौकरानी करे जो मुझसे भी अच्छी अंग्रेजी बोलती है, और स्मार्ट तो इतनी है कि कल जब मैं दिन में यहां पहुंचा था और दरवाजा उसी ने खोला था तो मैं उसे खन्ना अंकल की लड़की रितु ही समझा था और उसे विश भी उसी के हिसाब से किया था.

कल शाम को तैयार होकर जब कमरे से बाहर निकला तो उस वक्त आंटी ड्राइंग रूम में फोन पर किसी से बात कर रही थीं. मैं यही चाह रहा था कि कोई न कोई ड्राइंग रूम में मिल जाये, नहीं तो फिर किसी को बुलवाने के लिए या तो आवाज देनी पड़ती या फिर रूबी को ढूंढ़ना पड़ता. आंटी जब तक फोन पर बात करती रहीं, मैं वहीं सोफे की टेक लगाये खड़ा रहा. फोन रखते ही जब वे मुड़ीं तो मुझ पर नजर पड़ी एकदम चेहरा तुनक गया. अभी तो फोन पर हंस-हंसकर बातें कर रही थीं. ''क्या बात है सतीश! कहीं जा रहे हो क्या!'' उन्होंने चेहरे की तुनक कम किये बिना साड़ी की सलवटें ठीक करते हुए पूछा था. मैं एकदम सकपका गया था, फिर भी हिम्मत जुटाकर बोला, ''वो दोपहर से कमरे में बैठा-बैठा बोर हो रहा हूं. इस समय शायद बरसात रुकी हुई है, सोच रहा था, कहीं घूम आऊं.'' मैंने जानबूझकर कार और ड्राइवर की बात नहीं की थी.

लिफ्ट आ गयी थी. मैं नीचे आ गया. सड़क पर आने के बाद मैंने आसपास देखा, पानी थमा हुआ था लेकिन लोग तेजी से आ-जा रहे थे. मैंने यह बात सुबह भी नोट की थी, अब भी देख रहा था कि यहां पर लोग और शहरों की तुलना में ज्यादा तेज चलते हैं, कहीं देखते नहीं, बस लपकते से रहते हैं. सुबह चर्चगेट के बाहर तो मैंने कई औरतों को भागते हुए देखा था. औरतों को इस तरह भागते देखना सचमुच मेरे लिये एक नया दृश्य था. एक बहुत मोटी औरत, जिसने स्कर्ट पहना था, भागते हुए बहुत ही अजीब लग रही थी.

अभी मुश्किल से मैंने सड़क पार ही की थी कि एक तेज बौछार ने मुझे पूरी तरह भिगो दिया. लोगों ने फटाफट अपने फोल्डिंग छाते खोल लिये. मुझे आसपास कोई ऐसी जगह नजर नहीं आयी जहां शरण ले सकता. ऊपर वापस जाने का कतई मूड न था. नतीजतन भीगता हुआ बस-स्टाप की तरफ ही चलता रहा. मूड और खराब हो गया था. अब घूमने जाने की भी कोई तुक नहीं थी. तुक तो मुझे पहले ही नजर नहीं आ रही थी क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे यहां जगहों के सिर्फ नाम ही मालूम थे, उनकी दिशा या दूरी का कोई अंदाज नहीं था. किसी से कुछ पूछना बेकार लगा. बस स्टाप से पैदल चल पड़ा. यूं ही काफी देर तक भटकता और भीगता रहा. भीगना मुझे अच्छा लगता है, लेकिन आज भीगने से मूड और भी बिगड़ता चला जा रहा था. तभी कोलाबा वाली सड़क पर एक अच्छा-सा बार दिखायी दिया. मुझे इस वक्त अपना अकेलापन काटने का इससे अच्छा कोई रास्ता नहीं दिखायी दिया. बीयर बार में जा घुसा. बीयर पीते हुए मुझे हमेशा इस बात का एहसास होता रहता है कि आसपास कोई है जिससे मैं अपने मन की बातें कह रहा हूं.

बीयर के दो घूंट भरते ही मैं अंतर्मुखी हो गया. मेरे भीतर की सारी सुगबुगाहट बुलबुलों के साथ ऊपर आने लगी. फिर से सारी चीजें दिमाग पर हावी होने लगीं. खुद पर गुस्सा आने लगा—क्यों ठहरा मैं खन्ना अंकल के घर पर. बाऊंजी को कम से कम एक बार तो सोच लेना चाहिये था कि इन पंद्रह-बीस सालों में उनका दोस्त कितना बदल चुका

मुंह चलाना

□ राजेश शास्त्री

म्युनिस्पैल्टी का इंस्पैक्टर ज्यों ही मुहल्ले के नुक्कड़ वाले मकान के पास पहुंचा, शिकायती भाव से उस गृहस्वामी ने कहा, "सा'ब, देखिये न मुहल्ले का पखाना साफ नहीं हो रहा. सारे मुहल्ले में बदबू आती है. आपके कर्मचारी बिल्कुल काम नहीं करते!"

इस पर इंस्पैक्टर तुनककर बोला, "बताइये मैं इसके लिए क्या कर सकता हूं?"

गृहस्वामी ने बड़ी सहजता से जवाब दिया, "सा'ब आप ठहरे बड़े अधिकारी थोड़ा-सा मुंह चलाने की जरूरत है फौरन सारी गंदगी साफ हो जाएगी!" □

होगा. ठीक है उनकी खतोकिताबत होती रहती है, लेकिन वह अलग बात है और फिर मुझे इस बात से क्या मतलब कि खन्ना पर बाऊजी के कितने अहसान हैं या दोनों बचपन के दोस्त हैं और दोनों ने मुफलिसी के दिन एक साथ काटे हैं. बाऊजी किस तरह अपने और खन्ना की दोस्ती के चर्चे किये जा रहे थे. अब मैं अगर बाऊजी को बताऊं कि जिस दोस्त की उन्होंने अपने बच्चों का पेट काटकर मदद की थी, यहां तक कि एक बार हम बच्चों के लिये दीवाली पर पटाखे न खरीदकर उनके लिये बंबई टिकट तक जुटाया था, वह आज इतना बड़ा आदमी हो गया है कि उसके पास उसी दोस्त के लड़के के लिये जरा-सा वक्त नहीं. गर्मजोशी तो दूर, ढंग से बात करने तक की जरूरत ही नहीं समझी गयी. ये बातें सुनकर उन्हें कैसा लगेगा! मैं बीयर पीते-पीते दुखी हो रहा था.

बीयर अपना काम कर रही थी. मैं कुढ़ रहा था और सभी को दोषी मान रहा था. मुझे मां पर भी गुस्सा आ रहा था, क्यों उसने इतनी मेहनत करके गाजर का हलवा बना कर दिया था खन्ना के बच्चों के लिये. उसे पता तो चले कि बंबई के बच्चे गाजर का हलवा नहीं खाते. पता नहीं क्या खाते हैं. आंटी हलवे का डिब्बा देखते ही किस तरह मुंह बनाकर बोली थीं, "क्या जरूरत थी इतना सब भेजने की. यहां तो ये सब कोई नहीं खाता. रूबी ये तुम ले जाना अपने घर." और मैं अवाक् रह गया था. मां ने कितनी मेहनत से यह बनाया था. कितने घंटे मेहनत करती रही थी बेचारी और बाऊजी भी तो जिद किये जा रहे थे, खन्ना की ये पसंद है, वो पसंद है. पता नहीं बंबई में उसे ये खाने को मिलते होंगे या नहीं. देख लें न यहां आकर! और रितु को देखो, क्या नखरे हैं. मंजू ने इतना शानदार कार्डीगन बनाकर दिया और वो किस तरह मुंह बनाकर बोली, "मुझे नहीं पहनना ये सड़ा हुआ कार्डीगन." और वह स्वेटर वहीं पटककर अपने कुत्ते को गोद में लिये अपने कमरे की ओर चली गयी थी. सच, उस समय तो मेरा खून ही खौल गया था. मन हुआ था कि अभी अटैची उठाकर चल दूं कहीं और. साला यह भी कोई तरीका है बात करने का.

मन में हल्की-सी तसल्ली भी हुई थी कि अगर हम रईस नहीं हैं तो कम से कम इंसानी मूल्यों पर तो टिके हुए हैं, तहजीब से बात तो कर सकते हैं, अब यही लोग मेरठ आये होते तो इनको बता देते कि मेजबानी क्या होती है. सारा परिवार इनकी जी-हुजूरी में एक टांग पर खड़ा होता. क्या मजाल कि कोई जरा ऊंची आवाज में बोल कर तो दिखाये. बाऊजी की यही तो खासियत है. न तो किसी की बेइज्जती करते हैं, न अपनी होने देते हैं. अब उनको मैं ये सब बताऊंगा तो देखना-खन्ना अंकल से बातचीत तक बंद न हुई तो बात है. सवालों के जवाब में बीयर के घूंट भरते हुए खुद से पूछता रहा. बीयर के सुरूर में खुद को, सबको कोसने के बाद मैं हल्का महसूस कर रहा था. सोचा, कल स्टेशन जाकर इंटरव्यू वाले दिन की टिकट की कोशिश करूंगा, ताकि फालतू में यहां दिमाग खराब न होता रहे.

दरवाजा अंकल ने खोला था. ड्राइंग रूम हल्की रौशनी थी. उनके हाथ में भरा हुआ गिलास था और ड्राइंग रूम के कोने में बने उनके शानदार बार में बत्ती जल रही थी. बार स्टैंड पर आइस-बॉक्स, सोडा फाउंटेन और खुली बोलत रखी थी. "यस यंग मैन", उन्होंने अपने गिलास में से लंबा घूंट लेते हुए पूछा, "कहां घूमकर आ रहे हो!" "कहीं नहीं अंकल, बरसात की वजह से सारा दिन घर पर ही रहा, अभी जरा नीचे तक घूमने निकल गया था." मैं उनसे नजरें नहीं मिलाना चाहता था, क्योंकि मूड अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था और मैं नहीं चाहता था कि उन्हें पता चल कि मैं बीयर पीकर आया हूं. वैसे भी अपनी और फजीहत करवाने की इच्छा नहीं थी. बेशक अंकल न कोई ऐसी बात नहीं की थी, जिसे मैं अन्यथा लेता, लेकिन वे सुबह हो रहे पूरे ड्रामें में तो मौजूद थे. जब मैंने शहर देखने की इच्छा व्यक्त की थी तो वे भी तो मुझे गाइड कर सकते थे या रितु या ड्राइवर को मुझे घुमा लाने के लिये कह सकते थे, या फिर आंटी और रितु को चीजें रख लेने के लिये कह सकते थे. "तुम्हारा खाना तुम्हारे कमरे में रख है. हमें पता नहीं था तुम कितने बजे तक लौटोगे." उन्होंने गिलास खाली किया और तिपाई पर रखते हुए बोले, "हम डिनर पर बाहर इन्वाइटेड हैं. आंटी वगैरह जा चुके हैं मैं तुम्हारे लिये ही बैठा था." वे उठ खड़े हुए और बाहर जाते हुए बोले, "ओ.के. यंग मैन, सी यू टुमारो, गुडनाइट." मैं गुडनाइट कहकर अपने कमरे में आ गया.

सवेरे से फिर वही रुटीन चल रहा है, बरसात हो रही है और मैं कमरे में बंद हूं. रूबी एक बार सुबह पूछ भी गयी थी—वीडियो पर कोई फिल्म देखना चाहेंगे. लेकिन मैंने मना कर दिया था. फिल्म देखने का मतलब है—ड्राइंग रूम में बैठना और ड्राइंग रूम चूंकि सभी कमरों के बीच में पड़ता है, अतः सबकी निगाहों के बीच बैठना मुझे कतई गवारा नहीं था. रितु के कमरे से अब म्यूजिक की आवाज आनी बंद हो गयी है, लगता है किसी किताब वगैरह में मन लग गया होगा. फर्स्ट ईयर में है रितु. सुंदर है, पर है अपनी मां की तरह नकचढ़ी. एक ही नजर में आप मालूम कर सकते हैं—मां-बाप की बिगड़ैल और जिद्दी लड़की है. बस ड्राइंग रूम में ही कल जो हैलो हुई थी, उसके बाद नजर तो कई बार आयी है लेकिन आंखें न उसने मिलायी हैं न मैंने ही जरूरत समझी है. खासकर कार्डीगन वाले प्रसंग से तो मुझे उसकी शक्ल तक से नफरत हो गयी है.

इस घर में मुझे एक ही आदमी ढंग का लगा है—टीपू. सत्रह साल का टीपू देखने में खास जवान लगता है, स्मार्ट भी है. टैंथ में पढ़ता है. इतना अच्छा लड़का, लेकिन अफसोस कि वह गूंगा-बहरा है. समझता है वह भी सिर्फ अंग्रेजी. लिप मूवमूंट के सहारे. अपनी बात माईमिंग से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाता है या कभी-कभी लिखकर भी. उससे आज बहुत ही शानदार ढंग से मुलाकात हुई इंटरव्यू के सिलसिले में शाम को कुछ तैयारी कर रहा था कि दरवाजे पर वह दिखायी दिया. पहले तो मैंने पहचाना नहीं लेकिन जब अंदर आ गया और उसने हाथ बढ़ाया तो मुझे याद आ गया. कल जब मैं यहां पहुंचा था तो वह स्कूल जा रहा था. शायद पैसों की किसी बात को लेकर आंटी उसे डांट रही थीं. बाऊजी ने भी मुझे उसके बारे में बताया था कि खन्ना उसकी ट्रेनिंग और पढ़ाई की वजह से काफी परेशान रहते हैं.

उसने बहुत गर्मजोशी से मेरा हाथ थामा. मुझे बहुत अच्छा लगा. कोई तो है जो यहां शब्दों के बिना भी इतनी अच्छी तरह से कम्यूनिकेट कर रहा है. हम हाथ मिलाने भर में एक-दूसरे के मित्र बन गये. मुझे उसका आना अच्छा लगा. वह अचानक उठा और दरवाजा बंद कर आया. हालांकि उस वक्त हम दोनों और रूबी के अलावा घर में कोई और न था. उसने जेब से सिगरेट की डिब्बी और माचिस निकाली और एक सिगरेट ऊपर करके मेरे आगे बढ़ायी. अच्छा तो यह बात थी! सिगरेट कभी-कभार मैं पी लेता हूं. चार्मस मेरा ब्रांड भी है, परंतु यहां अंकल के घर पर रहने के कारण मैंने फिलहाल स्थगित कर रखी थी. अब सिगरेट देखकर तलब तो उठी लेकिन एक सोलह-सत्रह साल के लड़के के साथ इस तरह सिगरेट पीना न जाने क्यों अच्छा नहीं लगा—हालांकि ऑफर वही कर रहा था. मेरे मना करने पर उसे आश्चर्य हुआए उसके सिगरेट सुलगाने और पीने का अंदाज बता रहा था कि वह पुराना खिलाड़ी है.

उससे खुलकर बातें करना चाहता था पर कभी ऐसी स्थिति से वास्ता न पड़ा था कि माईमिंग के सहारे बात करनी पड़े या ऊंची आवाज में अंग्रेजी बोलते हुए होठों के सही मूवमेंट्स के जरिये अपनी बात समझानी पड़े. उसने इशारे से पूछा यहां किस सिलसिले में आया हूं. मैंने बताया यहां एक कंपनी में मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव के लिये इंटरव्यू देना है. कल इंटरव्यू है बेलार्ड पियर में. तभी उसने अपनी जेब से एक लड़की की तस्वीर निकाली. मुझे फोटो दिखाते हुए वह दिल पर हाथ रखकर मुस्कराया. मैं समझ गया कि वह उसकी स्वीटहार्ट की फोटो थी. लड़की निश्चय ही सुंदर और संवेदनशील लगी. मैंने नाम पूछा, उसने कागज लेकर उस पर बहुत सुंदर अक्षरों में लिखा—उदिता माई लव. और कागज को चूम लिया. मुझे हंसी आ गयी. पूछा, ''तुम्हारे साथ पढ़ती है क्या!'' उसने सिर हिलाया, ''नहीं. फ्रेंड की सिस्टर है.''

''वह भी तुम्हें चाहती है क्या!'' मेरे पूछने पर उसने कुछ नहीं कहा, सिर्फ एक मिनट में आने का इशारा करके चला गया. थोड़ी देर में वापस आया तो उसके हाथ में कई चीजें थीं—दो-तीन किताबें, एक खूबसूरत पेन, सेंट की शीशी और कई छोटे-मोटे गिफ्ट आइटम. वह अपने हाथों में यह अनमोल खजाना लिये बहुत उल्लसित था.

मैंने पूछा, ''और तुमने क्या दिया है उसे!'' उसने आंख दबाकर कैमरा एडजस्ट और क्लिक करने की माईमिंग की.

''लेकिन इतने पैसे कहां ले लाये तुम?'' जो कुछ उसने बताया, वह मुझे चौंकाने के लिय काफी था, ''नयी साइकिल बेचकर और घर में बताया कि खो गयी.'' मुझे उस पर तरस आया. बेचारे को अपना प्यार इजहार करने के लिये क्या-क्या करना पड़ता है! मैंने यूं ही पूछा, ''कभी पिक्चर वगैरह भी जाते हो'', लेकिन तुरंत ही अपने सवाल पर अफसोस होने लगा—टीपू बेचारा पिक्चर कैसे इंजॉय कर पाता होगा लेकिन मुझे टीपू की मुस्कराहट ने उबार लिया उसने इशारे से बताया कि वे कई फिल्में एक साथ देख चुके हैं. मैं कुछ और पूछता इसके पहले ही टीपू ने मुझे घेर लिया—मेरी कोई गर्लफ्रैंड है क्या! आंखों के सामने मृदुभा का चेहरा उभर आया और याद आयी यहां आने से पहले उससे हुई आखरी मुलाकात. जब मैंने उससे पूछा था, 'तुम्हारे लिये क्या लाऊं बंबई से!' तो उसने कहा था, 'तुम सफल होकर लौट आना! मुझे और कुछ नहीं चाहिये.' मैं अभी उस मुलाकात के खयालों में ही डूबा था कि टीपू ने मेरा कंधा हिलाकर अपना सवाल दोहराया. मैं मुस्करा दिया, ''हां, है एक'' उसने तुरंत नाम पूछा, क्या करती है, कैसी है! उसकी आंखों में चमक थी. मुझे अच्छा लगा कि मैंने सिगरेट की तरह इस मामले में झूठ नहीं बोला है. मेरी गर्लफ्रैंड की बात जानकर वह खुद को मेरे और करीब महसूस करने लगा था. मैंने उसे बताया कि वह फिजिक्स में एम.एस-सी. कर रही है अभी. ''और आप?'' मुझसे पूछा.

''हम तो भई, बी.एस-सी. के बाद से ही काम की तलाश में भटक रहे हैं.'' उसने जेब से डिब्बी निकालकर एक और सिगरेट सुलगायी.

तभी उसे कुछ याद आया. वह सिगरेट छोड़कर अपने कमरे में गया और जब वापस आया तो उसके हाथ में पासपोर्ट था. उसने बताया कि अगली जनवरी में वह एक साल के लिये न्यूयार्क जा रहा है. उसे पापा के क्लब ने स्पांसर किया है स्पेशल ट्रेनिंग के लिये. कमरे में उसके आने से मुझे बहुत अच्छा लग रहा था. हमें बेशक एक-दूसरे की बात समझने में या अपनी बात समझाने में काफी दिक्कत हो रही थी, लेकिन फिर भी हम

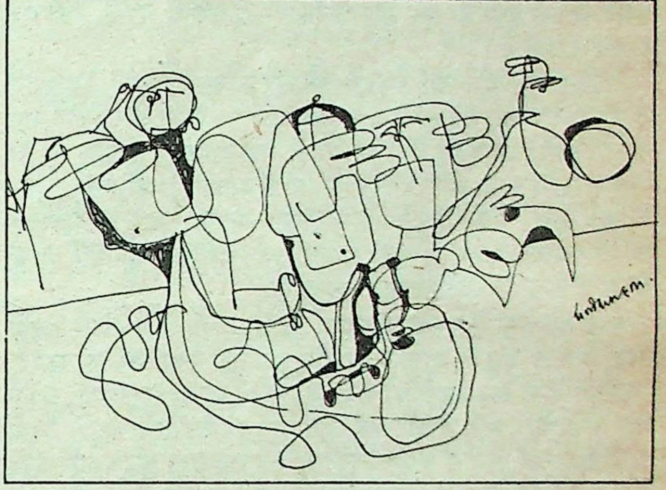

दोनों का अकेलापन कट रहा था. मेरा अकेलापन तो खैर दो-चार दिनों का था. वह खुद को अभिव्यक्त करने के लिये कितना परेशान रहता होगा! तभी उसने घड़ी देखी. बताया—उसके ट्यूटर के आने का वक्त हो गया है. उसने अपनी चीजें सहेजीं और फिर मिलने का वादा करके चला गया.

वह अपने पीछे कई सवाल छोड़ गया था. कितना अकेलापन महसूस करता होगा टीपू. क्या रितु इससे उस तरह लड़-झगड़कर लाड़ जताती होगी जिस तरह सामान्य भाई-बहन करते हैं? क्या आंटी अपने क्लब और पार्टियों से फुर्सत निकालकर इसके सिर पर हाथ फेरने या होमवर्क करवाने का टाइम निकाल पाती होंगी? क्या उस तरह के दोस्त होंगे जो इसे अपने खेलों, अपनी दिनचर्या में खुशी-खुशी शामिल करते होंगे? क्या उदिता और ट्यूटर के अलावा भी कोई उससे बात करता होगा? मैं तो यहां दो दिनों के अकेलेपन से ही टूट रहा हूं, बेचारा टीपू तो कब से अकेला है.

इंटरव्यू बहुत अच्छा हो गया है. मैं चुन लिया गया हूं और मुझे मेरे अनुरोध पर दिल्ली हेडक्वार्टर दिया गया है. दिल्ली, पंजाब और हरियाणा कवर करना होगा. अपाइंटमेंट लैटर दस दिनों में भेज दिया जायेगा. तुरंत ज्वाइन करना है और पंद्रह दिन की ट्रेनिंग के लिये फिर बंबई आना होगा. मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है. मेरे संघर्ष खत्म हो रहे हैं. मनपसंद नौकरी मिल गयी है. अच्छी पोस्ट, बड़ी कंपनी, अच्छा वेतन और टूरिंग जॉब. मैं इतना उत्साहित हूं कि जी कर रहा है कि किसी भी व्यक्ति को रोककर उसे अपने सेलेक्शन के बारे में बताऊं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाऊजी को तुरंत तार कर दूं, लेकिन तार तो कल ही पहुंच पायेगा. फोन कर दूं, पड़ोस के सचदेवा के घर, लेकिन उन लोगों से तो आजकल ठनी हुई है. कहीं मेरा नाम सुनकर ही फोन रख दिया तो मेरे तीस-चालीस रुपयों का खून हो जायेगा. मैं तो इसी वक्त और यहीं अपनी खुशी बांटना चाहता हूं. कितनी अजीब बात है असीम दुख के क्षण मैंने तनहा काटे हैं और कभी किसी को अपने दुख का हमराज नहीं बनाया है. आज मैं अपनी खुशी के क्षणों में भी अकेला हूं. कोई हमराज है ही नहीं यहां. हालांकि खुशी बांटने के लिये कब से तरस रहा हूं. घर पर तार डाला. मृदुभा को सांकेतिक भाषा में कार्ड डाला. थोड़ी देर मैरीन-ड्राइव पर टहलता रहा. मन बहुत हल्का हो गया है. समुद्र ज्वार पर है लगा, वह मेरी खुशी में शामिल है और लहरों के हाथ बढ़ाकर मुझे बधाई दे रहा है. बहुत खूबसूरत है शहर का यह हिस्सा. वापस आने का मन ही नहीं था. घर लौटते हुए शाम हो गयी है. जेब भारी है. एक मन हुआ कि, मिठाई का एक डिब्बा ही ले लूं अंकल वगैरह के लिये. लेकिन टाल गया. मुझे पता है मिठाई का भी वही हश्र होना है जो गाजर के हलवे और कार्डिगन का हुआ है. मुझे और फजीहत नहीं करानी अपनी, न ही मूड खराब करना है.

घर पर सिर्फ टीपू और रूबी हैं. मैंने टीपू को खबर सुनायी. वह तपाक से मेरे घले मिला. मैंने खुशी से उसका गाल चूम लिया और उसके बाल बिखरा दिये. वह बहुत खुश हो गया है. मुझे अच्छा लगा है कि घर पर सिर्फ टीपू मिला है. आंटी वगैरह होते तो मैं बताता ही नहीं. रूबी ने चाय के लिये पूछा, लेकिन टीपू ने मना कर दिया. बताता है आज की शाम हम सेलीब्रेट करेंगे. खाना भी बाहर खायेंगे. उसने मुझे हाथ-मुंह धोने का भी मौका न दिया. घसीटकर बाहर ले आया.

आज कोलाबा में घूमना चाहता हूं, थोड़ी शापिंग भी करनी है. सबके लिए कुछ न कुछ ले जाना है पर टीपू पता नहीं कहां लिये जा रहा है. उसने दो-एक बार टैक्सी को दायें-बायें मुड़ने का इशारा किया. टीपू ने मेरा हाथ थामा हुआ है और जैसे किसी धुन पर सिर हिला रहा है. टैक्सी ताज होटल के पोर्च में आकर रुकी है. अब तक ताज होटल और गेटवे को फिल्मों में ही देखा था. कभी किसी फाइव स्टार होटल में जाने का यह पहला ही मौका है. मैं मेरठ के एयरकंडीशंड होटलों में भी दो-एक बार ही कॉफी पीने ही जा पाया था. मैंने टैक्सी के बिल देने की बड़ी कोशिश की परंतु टीपू ने दिया और चेंज लिये बिना मुझे घसीटकर अंदर ले चला. मैंने जेब पर बाहर से ही हथेली के स्पर्श से महसूस किया कि पैसे सुरक्षित हैं हालांकि मुझे यहां के दामों के बारे में कोई जानकारी नहीं है फिर भी मैंने मन ही मन हिसाब लगा लिया है, सौ रुपये तक तो खर्च होंगे ही.

अंदर आते समय मेरा मन मध्यवर्गीय दब्बूपन की वजह से डर रहा है, लेकिन टीपू की चाल में ऐसी कोई बात नहीं है. वह लापरवाही के अंदाज में मेरी बांह में बांह डाले चल रहा है. मेरा सारा ध्यान आसपास की रौनक और शानोशौकत पर लगा है. मेरी निगाहों में चकित भाव है जिसे मैं छुपाने की नाकाम कोशिश कर रहा हूं.

हम पहली मंजिल पर स्थित रेस्तरां में पहुंचे. इत्तिफाक से ठीक समुद्र वाली खिड़की के पास की एक मेज खाली मिल गयी. समुद्र अपना असीम विस्तार लिये हमारे सामने है. दूर खड़े बड़े-बड़े जहाजों की बत्तियां बहुत अच्छी लग रही हैं. छोटी बड़ी कश्तियां ऊंची लहरों पर इतरा रही हैं. इससे पहले कि मैं मीनू पर निगाह फेंकूं, टीपू ने दो बीयर का आर्डर दे दिया है. हमारी निगाहें मिलती हैं तो दोनों मुस्करा देते हैं. टीपू मुझसे मेरे इंटरव्यू के बारे में पूछता है. मैं बतलाता हूं कि किस तरह सत्ताइस लड़कों में से पांच को इंटरव्यू के बाद में भी रुकने के लिये कहा गया था.

हम धीरे-धीरे सिप करने लगे हैं. मैं टीपू से उसके दोस्तों, उसके परिवारवालों के व्यवहार के बारे में पूछना चाहता था. परिवारवालों का नाम सुनते ही उसने मुंह बिचकाया. मुझे पहले ही आशंका थी कि उसे

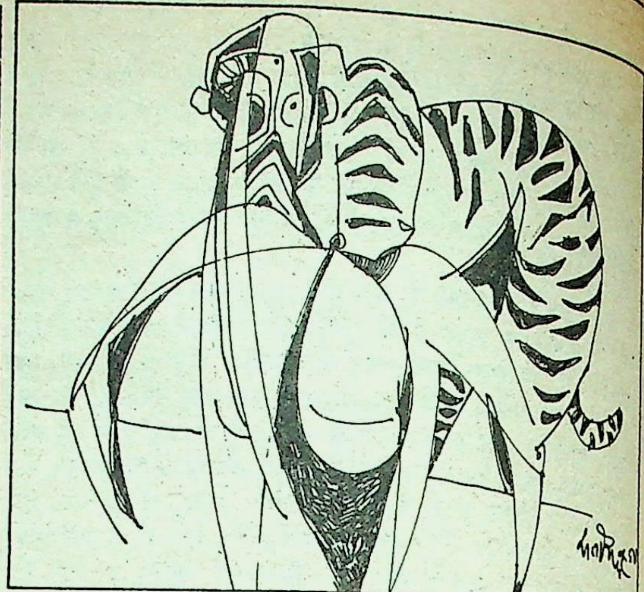

बहुत अच्छा ट्रीटमेंट नहीं मिलता. वह माइमिंग करके बताता रहा कि किस तरह पापा से बात किये हुए उसे कई-कई दिन बीत जाते हैं, सिर्फ हैलो, हाय से आगे वे कभी नहीं करते. अव्वल तो वे घर पर होते ही नहीं. क्लब, पार्टियां, बिजनेस ट्रिप्स वगैरह और जब घर पर होते हैं तो या तो अपने बैडरूम में बैठे रहते हैं और बिजनेस के फोन वगैरह करते रहते हैं या शाम के वक्त अपने बार में बैठे पीते रहते हैं. मुझे बहुत धक्का लगा जब उसने बताया कि मम्मी अपने कुत्ते को तो गोद में बिठाकर खाना खिलाती हैं लेकिन उससे कभी सीधे मुंह बात नहीं करती हैं. जब भी सामने पड़ती हैं किसी न किसी बात पर डांटने लगती हैं—'पढ़ता क्यों नहीं, बाहर क्यों घूमता रहता हूं, पैसे क्यों मांगता हूं, हर वक्त.' वह बहुत उदास हो गया है. उसका चेहरा बता रहा है कि अर्से से किसी ने प्यार से बात तक नहीं की है. जब मैंने रितु के बारे में पूछा तो उसका चेहरा और विकृत हो गया. वह बुदबुदाया, 'शी इज ए बिच.' तो मेरा अंदाज सही था. वह सचमुच बिगड़ी हुई लड़की थी. टीपू उसके बारे में बात करने तक को तैयार न था. बहुत कुरेदने पर उसने बताया कि वह पता नहीं किन आवारा लड़कों के साथ घूमती रहती है और ड्रग्स भी लेती है.

हम एक-एक बीयर ले चुके हैं. हल्का-सा सुरूर आने लगा है. टीपू ने इशारे से दो और बीयर का आर्डर दे दिया. मेरी इच्छा नहीं है और बीयर पीने की. साथ ही टीपू की उम्र देखते हुए भी डर रहा हूं कि कहीं उसे ज्यादा न हो जाये. थोड़ा-सा ध्यान जेब पर भी है. पर बीयर आ चुकी है. मैं उसका खराब मूड देखकर बातचीत को उदिता पर ले आया. उसका चेहरा कुछ संभला. लगता है, वह उदिता को जी-जान से चाहता है, वह उसकी छोटी-छोटी बातें भी बताने लगा. उदिता की चर्चा करते हुए वह इतना भावुक हो गया कि उसकी आंखों में पानी आ गया. उसके हाथ कांपने लगे. किसी तरह हमने बीयर खत्म की. मुझे डर लगने लगा है टीपू घर पहुंच भी पायेगा या नहीं. जब अंकल को पता चलेगा कि हम दोनों ने दो-दो बीयर पी हैं तो मुझे ही डांटेंगे. मैंने बिल मंगवाया. मैंने सौ का नोट निकालकर बिल के फोल्डर में रखा लेकिन टीपू अड़ गया—यह ट्रीट उसकी तरफ से है, वही 'पे' करेगा. वह हाथ-पैर चलाने लगा. मैं सीन क्रिएट नहीं करना चाहता था. बिल उसी ने दिया. हल्की-सी राहत भी हुई. मैं तय कर लेता हूं, डिनर के पैसे मैं दूंगा. टीपू उठा और लड़खड़ाते हुए मेरे साथ चलने लगा. वह ठीक तरह चल भी नहीं पा रहा है. मेरी चिंता बढ़ती जा रही है. बाहर आये तो दिखा कि नौ बज रहे हैं. मैंने टैक्सी रुकवायी तो उसने मना कर दिया. हम पैदल ही फिर कोलाबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर चल दिये. हालांकि मैं भी पूरे सुरूर में हूं लेकिन टीपू की वजह से मैं खुद को भूले हुए हूं. टीपू ने मेरा हाथ मजबूती से थामा हुआ है. मेरी निगाह सड़क के दोनों तरफ खड़ी सजी-धजी लड़कियों पर पड़ती है. पहले तो उन्हें देखकर हैरान होता हूं, तभी खयाल आता है, अरे! ये तो धंधा करनेवाली लड़कियां हैं. पर इस तरह सरेआम! उनकी तरफ देखते हुए भी मुझे अजीब लग रहा है. कुछेक लड़कियां तो काफी अच्छी लग रही हैं. टीपू भी अपने खयालों में मस्त चला जा रहा है. मेरे हाथ में कसा उसका हाथ अस्थिर है.

हम धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहे हैं. तभी मैंने देखा कि एक खंभे की आड़ में खड़ी एक खूबसूरत लड़की हमारी तरफ देखकर मुस्करायी. निश्चय ही यह मुस्कराहट प्रोफेशनल है. उसके रंग-ढंग से प्रभावित होने के बावजूद मैंने उसकी तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया है और आगे बढ़ गया हूं. लेकिन टीपू ने मेरे हाथ से अपना हाथ छुड़वा लिया और उसके पास चला गया. मैं चौंका और भौंचक-सा वहीं खड़ा रह गया. टीपू यह क्या कर रहा है? मेरा दब्बूपन मुझे उस लड़की के पास जाने से रोक रहा है. टीपू उससे इशारों से बात कर रहा है. मेरे पांव कांपने लगे हैं, असमंजस में पड़ गया हूं. वहीं बुत-सा खड़ा सब देख रहा हूं. इतनी भी हिम्मत नहीं जुटा पा रहा हूं कि टीपू का हाथ पकड़कर उसे वहां से हटाऊं. तभी टीपू मेरे पास लौटा. उसकी आंखों में एक अजीब-सी चमक आ गयी है. उसने मेरी सहमति चाही. मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूं. उसका हाथ पकड़कर आगे बढ़ना चाहता हूं पर वह वहीं मेरा हाथ पकड़कर अड़ गया है. आज आयी मुसीबत एक तो यह पहले ही होश में नहीं है. उस पर यह सब कुछ. मैं टीपू को.प्यार से समझाता हूं, पर टीपू कुछ सुनने को तैयार नहीं है. तभी टीपू ने मुझे अपनी बाहों में भरा और मेरी मनुहार करने लगा. वह कुछ कहना चाह रहा है, पर उसके मुंह से गों-गों की आवाज निकलने लगी है. यह आवाज मैंने उसके मुंह से पहले कभी नहीं सुनी थी. लड़की अभी भी वहीं खड़ी है और कनखियों से हमारी तरफ देख रही है. मैं लड़की की तरफ बढ़कर उससे ही टीपू की हालत पर तरस खाने के लिये कहना चाहता हूं, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाता.

स्थितियां मेरी पहुंच से बाहर हो गयी हैं. मैं कुछ भी करने में खुद को असमर्थ पा रहा हूं. कहां तो हम सेलेब्रेट करने निकले थे और कहां टीपू यह सब नाटक करने लगा. सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र और यह सब धंधे. मैंने हथियार डाल दिये. लेकिन मैंने तय कर लिया है कि मैं इस सब में शरीक नहीं होऊंगा. अपने जीवन में सैक्स की शुरुआत इस तरह बाजारू ढंग से करने के बारे में मैं सोच भी नहीं सकता. टीपू ने टैक्सी रुकवायी है. लड़की आगे बैठी है. हम दोनों पीछे हैं. मैंने कनखियों से लड़की तरफ देखा—तेईस-चौबीस साल की और पढ़ी-लिखी लग रही है जो शायद गलत धंधे में आ गयी है. मैंने आंखें फिरा ली हैं. लड़की ने ही टैक्सी वाले को जगह बतायी. टीपू बहुत गंभीर है. उसकी मुट्ठियां तनी हुई हैं और वह कहीं नहीं देख रहा. हम दोनों ने एक बार भी आंखें नहीं मिलायी हैं.

प्रमाण पत्र

□ राजेश शास्त्री

कचहरी के प्रांगण में लगी भीड़ ने एकाएक ध्यान आकर्षित किया देखते समय पीछे से एक बुझा हुआ स्वर सुनायी दिया— 'बेचारा... मर... गया!'

यह किस्सा लच्छू भैया से संबंधित है.

लच्छू भैया जो कि म्यूनिस्पैलिटी में वेक्सीनेटर पद से सेवानिवृत्त हुए थे, पिछले तीन-चार माह से पेंशन के लिए चक्कर लगा रहे थे... लेकिन अधिकारी हर बार यह कहकर लौटा देते कि अपने जीवित होने का प्रमाण पत्र ले आओ □

टैक्सी कहां जा रही है, मुझे कुछ पता नहीं. लगभग 10 मिनट बाद जब हम टैक्सी से उतरते हैं तो टीपू अभी भी लड़खड़ा रहा है. लड़की एक पुरानी-सी इमारत की तीसरी मंजिल पर ले आयी है और बेल दबाकर दरवाजा खुलने का इंतजार करती है. लड़की को फिर कनखियों से देखता हूं. यह लड़की कालगर्ल कतई नहीं लगती. मैं कल्पना करता हूं, अगर यही लड़की मेरठ में होती और खुद को इस धंधे में नहीं डालती तो अच्छी-अच्छी लड़कियां इसके आगे पानी भरतीं. मैं जितना सोचता हूं, उतना ही परेशान होता हूं. मैं इस दलदल में कहां आ फंसा! किसी को पता चले कि सतीश बंबई में कोठे पर गया था तो क्या सोचे. तभी एक बूढ़ी औरत ने दरवाजा खोला. हमें देखते ही वह दरवाजा खुला छोड़कर भीतर चली गयी है. साधारण-सा ड्राइंगरूम, लेकिन साफ-सुथरा. मेज पर कुछेक पत्रिकाएं. लड़की हमें वहीं बैठने को कहकर भीतर चली गयी है.

थोड़ी देर में जब वह लौटती है तो वह गाउन पहने है.पर्दे के पीछे खड़े होकर उसने मुझे आमंत्रित किया. यह आमंत्रण बिल्कुल ठंडा है. मैं सकपका गया हूं.इसके लिये कतई तैयार नहीं हूं. मैं सिर हिलाकर मना करता हूं. कुछ कह ही न पाया. तभी टीपू मेरा हाथ पकड़कर पहले भीतर जाने के लिये मुझसे आग्रह करने लगा है. मैं मना करता हूं और टीपू को ही खड़ा करके भीतर भेज देता हूं. उसके शरीर का तनाव कम हो गया है पर नशा अभी भी बरकरार है. दरवाजा बंद कर दिया गया है और पर्दा फिर अपनी जगह आ गया है. मेरा नशा उड़ चुका है दिमाग शून्य हो गया है. मुझे कतई गुमान न था कि इतनी खुशनुमा शाम का अंत इस तरह से होगा और एक सोलह सत्रह साल का मासूम और अपाहिज लड़का मुझे इस तरह यहां ले आयेगा.

मैंने सोफे की टेक से सिर लगा लिया है और आंखें बंद कर ली हैं. तभी भीतर से टीपू की गों-गों की आवाज सुनायी देती है. मैं डर जाता हूं. दिमाग सुन्न हो गया है. सारी चीजें गडमड़ हो रही हैं. टीपू, अंकल, रितु उदिता, मृदुभा, भीतरवाली लड़की. सबके चेहरे तेजी से मानसपटल पर आ-जा रहे हैं. मुझे टीपू पर तरस आ रहा है. बेचारा इतनी कम उम्र में इन धंधों में फंस गया है. उधर रितु ड्रग्स के नशे में किसी और किसी बाहों में झूल रही होगी. और यह लड़की—उसके बारे में सोचना चाहता हूं पर कहीं लिंक जुड़ता. उसे इस वातावरण, से अलग किसी और वातावरण के फ्रेम में देखना चाहता हूं पर उसका चेहरा बदल जाता है. उसकी जगह कोई और चेहरा ले लेता है. सिर बुरी तरह घूम रहा है. आंखें बंद किये बैठा हूं, कमरे में हल्की रोशनी है, पर आंखों में जलन हो रही है. कम से कम लड़की को तो यह देखना चाहिये था कि वह कैसे मासूम बच्चे को फंसाकर लायी है. तभी गों-गों की आवाज आनी बंद हो गयी. मैंने फिर आंखें बंद कर लीं. जितना सोचता हूं, दिमाग उतना ही खराब होता है.

तभी खटके की आवाज से मेरी आंख खुली. वह लड़की दरवाजे पर खड़ी है निर्विकार-सी. मैं डर गया—तो क्या वह फिर मुझे आमंत्रि करने आयी है, पैसे एंठने के लिये. मैं कुछ कहूं, इसके पहले ही वह धम्म से सामनेवाले सोफे पर बैठ गयी है, "सॉरी सर," वह कुछ कहना चाहती है पर सिर झुका लेती है. "क्यों क्या हुआ!" मेरी जान हलक में आ गयी है.

"आपके दोस्त को किसी लड़की की नहीं, मां की गोद की जरूरत थी. भीतर जाइये, वह सो रहा है." इतना कहते ही वह मुझसे नजरें चुराने लगती है.

मैं भीतर लपकता हूं. टीपू सोया हुआ है और लड़की उसे कंधों पर चादर ओढ़ा आयी है. मैं कमरे की पीली रोशनी में उसका चेहरा नजदीक से देखता हूं. उसके चेहरे पर तृप्ति का वही भाव है जो मां का दूध पीने के बाद शिशु के चेहरे पर होता है. मेरी आंखों के सामने आंटी का तुनकभरा चेहरा आ जाता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाट का कफन

उसके भीतर के बवंडर ने शाम तक माथे की नसें तनतना दीं... वह बुरी तरह थक गया था... जिद इतनी धनी थी कि वह किसी के भी पास जाकर अपनी कैफियत बयान नहीं करना चाहता था... क्या कारण था कि उसे किसी का दया भाव नहीं चाहिए था...?

छाया: सौमित्र मोहन

□ नफीस आफरीदी

जन्म: 1 जून, 1946 कोटा (राज.)
सन् 1964 से निरंतर लेखन.
प्रमुख कृतियां: 'अग्नि कुंड', 'अपनी अपनी सीमाएं', 'धूप का दरिया' और 'विशिष्ट कहानियां' (कहानी संग्रह) 'खुले हुए दरीचे', 'फिर भी अकेले', 'एक थमा सच', 'वायदा खिलाफ' (उपन्यास) 'हमारा कोई नाम नहीं' (नाटक)
विविध: दो कृतियों पर फिल्में निर्माणाधीन.
संप्रति: 'हिंद पॉकेट बुक्स' एवं 'सरस्वती विहार' के संपादक के रूप में कार्यरत
संपर्क: 60, ब्रह्मनान स्ट्रीट, हापुड़, (उ.प्र.)-245101

उसने कभी सोचा भी नहीं था कि उसकी ऐसी दुर्गति होगी. उसके अस्तित्व को भी इतनी आसानी से नकार दिया जायेगा. वह बोझ बन गया था और उसे आगे तक ढो पाना उनके लिए असंभव था, जबकि वे लोग धनी-मानी थे. अच्छी-खासी हैसियत के मालिक थे. उसके लिए कुछ कर भी सकते थे, पर उनकी बातें उसे बेतुकी लगतीं. वे उसे अपनी तरह बना लेना चाहते थे.

उसके साले और भतीजे सब एक हो गये थे. पत्नी ने भी उसका साथ नहीं दिया था. होता भी यही है. औरतें पहले शादी के सपने बुनती हैं, फिर उस पर करोशिये से घर-गृहस्थी के बेल-बूटे काढ़ती हैं. पत्नी के दिल-दिमाग में भी यही समीकरण था.

कई दिन से लगातार सभी सिर जोड़कर बैठ जाते थे और घंटों उसे छठी का दूध याद दिलाने की साजिश रची जाती. हालांकि पत्नी उनके बीच नहीं होती थी, पर मन उसका वहीं अटका रहता. एक दिन उसने कहा भी कि ये लोग उसके बुरे में नहीं हैं, बल्कि उसकी बेहतरी के लिए मंत्रणा करते हैं. उसे बड़ा गुस्सा आया था. उसने पत्नी को बुरी तरह डांट दिया था कि वह उसके साथ गंवारों जैसी बातें न किया करे. यह मूर्ख-मंडली उसे अपमानित करना चाहती है. चूंकि वह औरत है, इसलिए मां जाये पूतों की तरफदारी करती है. बुनियादी तौर पर हर औरत की सोचें यहीं तक सीमित हैं. पत्नी ने बेचारगी से उसे देखा था, फिर उसकी आंखें डबडबा आयी थीं. वह बुरी तरह बौखलाया हुआ था, इसलिए भरी हुई आंखों का उस पर कोई असर नहीं हुआ था. वह सिगरेट सुलगाकर पिछवाड़े की बाड़ी में निकल आयी थी. उसके दिमाग की नसें तनतनाने लगीं थीं और वह भीतर-ही-भीतर बिफरा हुआ चहलकदमी करता रहा था.

उसका भी एक घर था, लेकिन गर्व करने के लिए कुछ भी नहीं था. एक फटेहाल बाप था और दमे से खोखली हुई मां थी, जिन्हें तरसती हुई हालत में छोड़ आया था. वह समझ गया था कि परंपराओं से जुड़ा भाई सब संभाल लेगा. वह छोटा था, तभी ड्राईवरी के पेशे में पड़ गया था. मां और पिता की देह-गंध उसे शुरू से मोहती थी. उन्हें सूंघता हुआ वह घर में घुसता था और रोटी-पानी से पहले मां की गोद में सिर रखकर आंखें मूंद लिया करता था. उसे तसल्ली थी कि इस जमाने में भी उसके घर में एक श्रवण कुमार है, पर जब वह चला तो जरा-सी देर में उसका सोचा हुआ खंडित हो गया. भाई दरवाजा घेर कर खड़ा हो गया था और गुर्रा कर बोला था, ''यह मत समझना कि जिंदगी भर इन्हें अपने कंधों पर ढोता रहूंगा. मेरे भी सपने हैं. नामा कमाना है. घर बसाना है.''

उस समय पिता उसे गलिया रहे थे और मां माथा पीट रही थी. उसे लगा कि श्रवण कुमार और उसके माता-पिता पुरातन नहीं हैं. इसी जमाने की पैदावार हैं और वह जमाना किसी को आसानी से नहीं छोड़ता. उसे कुछ भी गलत नहीं लगा था, लेकिन भाई का तरीका बहुत बेहूदा था. उसे गुस्सा आ गया. उसका हाथ जोर से झटक दिया और तुर्श लहजे में बोला था, ''मुझे अपनी जिम्मेदारी का एहसास है. कुछ सोचकर ही जा रहा हूं, समझे!''

वह झल्लाया हुआ अटैंची उठाये बाहर निकल आया था. पिता की गालियां और मां की आहें दूर तक उसका पीछा करती रहीं थीं. श्रवण कुमार की तरेरी हुई आंखों की सलाखें उसकी पीठ में चुभ रही थीं, पर उसने पलटकर नहीं देखा. उसके दिमाग में सवालों का ऊंचा पहाड़ था, जिस पर चढ़ना और बहुत कुछ हल करना शेष था.

वह ससुराल में आकर रहने लगा था, लेकिन साल बीतते न बीतते उसे निठल्ला और निकम्मा घोषित कर दिया गया था. उसे पड़े-पड़े संडियाने और मुफ्त में ससुराल की रोटियां तोड़नेवाला नामर्द तक कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी थी. उसने सास को कहते सुना था कि उनकी बेटी के भाग फूट गये. न जाने किस जन्म के कर्मों का फल उन्हें मिल रहा था. वह अपने पति से लड़ती थीं कि सब उन्हीं का किया-धरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. कुलीन घर और खूब पढ़े-लिखे लड़के पर ऐसे लट्टू हुए कि उनकी एक भी नहीं सुनी. कहते थे, ननकी जंटलमैन की घरेतन बनेगी. हाकिम बनेगा छोरा. राज करेगी बेटी. अब भुगतो अपनी करनी को! ...और ससुर सिर्फ ठंडी सांस भरकर रह जाते थे. उसके मन में तो आया था कि कहे कि अपनी एक बेवा बेटी को आत्महत्या कर लेने पर क्यों मजबूर होने दिया, जबकि धानसिंह पटेल उससे ब्याह करने के लिए उनके सामने कुत्ते की तरह रिरियाता फिरा था और बड़ा बेटा चौसर खेलने, सुल्फे की चिलम सुटकारने और रामबीरी पुतरिया के पीछे दौड़ने में सठिया गया था. तब सास की झल्लाहटें और ससुर की ठंडी सासें कहां गयी थीं? उसके मन में और भी बहुत सारी बातें सुगबुगाती थीं, पर वह भैंस के आगे बीन बजाने को निरर्थक समझने लगा था.

वह दिन कभी भुलाये नहीं भूलता, जब उसकी अपनी पत्नी ने पहली बार विरोध प्रकट किया था. उसकी आंखें दहक रही थीं. होंठ-टेढ़े पड़ गये थे. खूबसूरत चेहरे पर क्रोध तांडव नृत्य कर रहा था. उसने अटैची खोल डाली थी. सारे कपड़े इस तरह खींच फैंके थे, जैसे द्रोपदी का चीर हरण कर लिया हो. कविताओं की तीन डायरियां निकालकर उसने उसी के सामने चिंदी-चिंदी करना शुरू कर दिया था.

कविताओं का फाड़ा जाना उसके लिए असह्य था. हलक के बल चीखा था वह, "रुक जाओ, ननकी! वरना मैं...!"

वह उससे भी अधिक जोर से दहाड़ी थी, "तुम बाड़ी में बैठकर कविता रचो, नद्दी किनारे किताब बांचों, धीरू माली की बेटी से अमराई में हंसी-ठट्ठा करो और मैं चुप बैठी रहूं? घर-कुनबे में सबकी मैं सुनूं और हरेक की चिरौरीं करूं. परमात्मा ने यही रचा है मेरे भाग में और तुमने क्या रचा है मेरे लिए? ...यह ...यह ...और यह!" और उसने लाल डायरी से वे तीनों कविताएं भी फाड़ डालीं थीं, जो उसने बहुत मेहनत से ननकी के नाम लिखकर सुहागरात में उसे सुनायी थीं और अपनी ओर से सौगात के रूप में उसे सौंप दी थीं, क्योंकि ऐसे मौके पर देने के लिए उसके पास इससे बढ़कर और कुछ नहीं था.

पत्नी का एक-एक शब्द उसे फाड़ खाने को दौड़ा था. उसके अपने भीतर बहुत सारी बातें उबली थीं. यह कि उस जैसी औरतें रिश्तों को सिर्फ गंवई ढंग से सोच सकती हैं. यह कि नासूर से मरने जा रही धीरू माली की बेटी को हंसाने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता. यह कि एक दबैल औरत मिन्नत-चिरौरी करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती.

उसे कुछ भी नहीं सूझा था. बौखलाया-सा उसे घूरता रहा और फिर हमेशा की तरह पलायन कर गया. उस रात उसने दारू के अड्डे में बैठकर शराब पी और सारी रात अमराई में गुजार दी थी. वह पेड़ों, पंछियों, अंधेरे आसमान और चमकते सितारों पर न जाने क्या-क्या बकता-झकता रहा था. सवेरा होते-होते उसके भेजे में अच्छी तरह बैठ गया था कि ये मोहिनी सूरत वाली औरतें अपने मामले में मर्द को जन्मजात मूर्ख समझती हैं. उसने जबड़ा भींचकर गर्दन झटकी थी और बड़बड़ाया था कि वह ऐसे मर्दों की जमात पर लानत भेजता है, जिन्हें औरतें इजारबंद डालकर पहने हुए होती हैं.

इधर-उधर भटकने के बाद दोपहर को वह घर लौटा तो और भी लुट चुका था. किसी ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी. बड़ा साला उसकी किताबें ग्राम पंचायत के पुस्तकालय में दान कर आया था. छोटे ने वर्षों से संभालकर रखी दस्तावेजी चिट्ठियां फाड़ डाली थीं. उसने मां की जमा पूंजी से बत्तीस पेजी एक छोटी-सी कविता पुस्तिका छपवायी थी. पुस्तिका की सौ एक प्रतियां बची होंगी. भतीजे उन्हें गांव-भर के बच्चों में बांट आये थे.

उसे भयानक रूप से गुस्सा आया था, पर वह जानता था कि गुस्से का प्रदर्शन व्यर्थ होगा. ये वे लोग थे, जिन्होंने बीच चौपाल में मलवा को नंगा कर सिर्फ इसलिए चमड़ी उधेड़ दी थी कि वह उनके खेत से एक

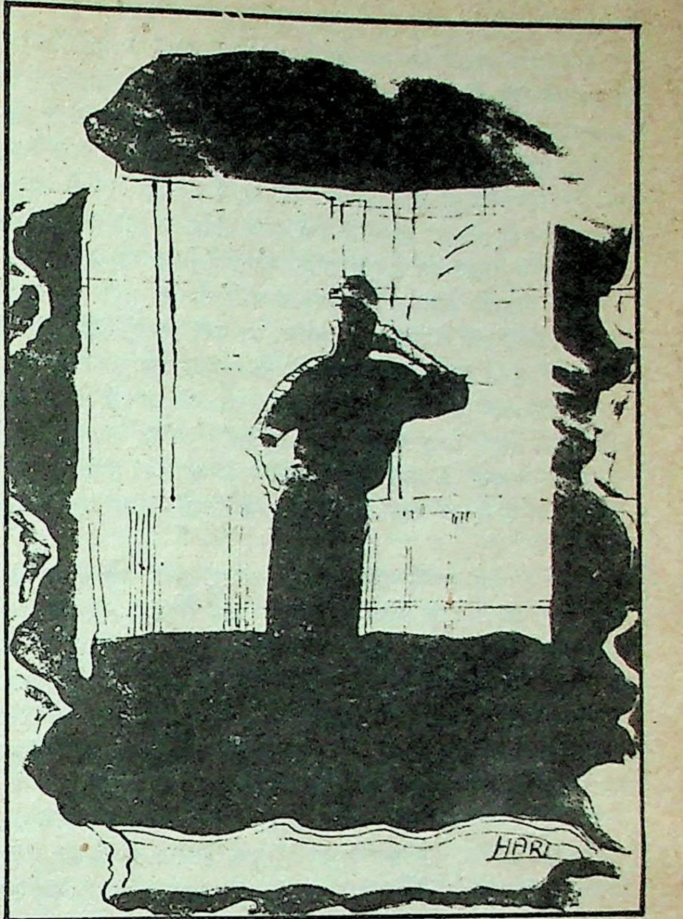

वक्त की रोटी के साथ के लिए बथुवे का साग उखाड़ लाया था. ये दिल खोलकर कर्ज बांटते थे और वसूलते वक्त कफन भी खसोट लेते थे उसका गुस्सा उनके लिए ठेठर-ठिठौली से कम नहीं था, इसलिए हमेशा की तरह पी गया था.

उसका जीना दूभर हो गया था. उसने सोचा, ऐसी अपमान-भरी जिंदगी से तो मर जाना बेहतर है. उसने अगले ही दिन धमकी दे डाली कि वह नदी में कूद कर जान दे देगा. इस पर छोटे साले ने हंसकर कहा था कि नदी तो सूखी पड़ी है. बरसात तक इंतजार करना पड़ेगा. उसने तत्काल संशोधन करके नदी की जगह कुएं की बात कह दी थी. बड़ा साला भी कम नहीं था. हंसी में उसने भाई का साथ दिया था और उससे एक कदम आगे की बात बोला था कि कुएं में कूदकर तो औरतें जान देती हैं. यह सुनकर उसकी मर्दानगी को ठेस लगी थी और उसने तय कर लिया था कि मरेगा, तो मर्द की मौत मरेगा. नतीजा यह निकला कि उसने मरने का इरादा ही बदल दिया. उसने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब इस घर में ही नहीं, गांव में भी एक पल नहीं रहेगा. जहां उसे कुत्ता समझा जाये, वहां लौटकर कभी थूकेगा भी नहीं.

उस रात उसकी पत्नी बहुत रोयी थी और हमेशा अशुभ की कल्पना से कांपते रहने वाले ससुर हनुमान चालीसा का पाठ करते रहे थे. सवेरे उठकर जमाने भर के बूढ़ों की तरह ही ससुर ने तोता रटंत उपदेश देना शुरू कर दिये थे. दुनियादारों की तरह ऊंच-नीच समझायी थी. खेत-खलिहानों में हाथ बटाने की सलाह दी थी, लेकिन अब वह मर्द की तरह जीना चाहता था, इसलिए ससुर को टका-सा जवाब देकर किस्सा तमाम कर लिया था.

इसी के साथ वह जोर-शोर से तैयारी करने लगा था. सबसे पहले उसने अपनी डिग्रियों की धूल झाड़ी, जो दुष्टों द्वारा नष्ट किये जाने से बची रह गयी थीं. इस झाड़-पोंछ के साथ उसने यह जताना चाहा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका कोई सहारा नहीं होता, उसे आगे बढ़कर डिग्रियां ही थाम लेती हैं. उसे अपनी वह कविता याद आयी, जो किसी समय उसने डिग्रियों के खिलाफ लिखी थी. पत्नी वह डायरी फाड़ चुकी थी और उस कविता का अब कोई सबूत नहीं था. इस बार उसने अपने कपड़े खुद धोये थे और लोटे के पैंदे से प्रेस भी कर लिये थे. पत्नी को इतना भी नहीं करने दिया था कि उन कपड़ों को तहा कर अटैची में रख दे. उसकी तमाम मिन्नत-चिरौरियों को उसने सिरे से नकार दिया था और कहा था कि दुनिया में ऐसे ढेरों मर्द हैं, जो अपनी मादा के बिना भी जी लेते हैं.

पत्नी उसकी ब्याहता थी एक आम पत्नी की तरह ही. भारी दिल-गुर्दा भी नहीं था उसका, इसलिए डर गयी और रो पड़ी. पांव भी पड़ी और कस्में भी दे डालीं, पर वह तो पलायन की ठान चुका था.

वह बार-बार जतलाता रहा था कि घर छोड़कर जा रहा है, पर कोई भी उसकी तैयारी से आतंकित नहीं हुआ. तीसरे दिन वह चल पड़ा.चलते समय उसने ससुर के चरण छुए. वह खर्चे के लिए कुछ रुपये देने लगे. उसने तैश में आकर कहा कि वह खैरात के टुकड़ों पर पलनेवाला जीव नहीं है.

इस घड़ी उसे अपनी पत्नी विचलित नजर आयी, जैसे उसका सब कुछ लुटा जा रहा हो. वह दरवाजे की आड़ में खड़ी थी. आंखों में मोटे-मोटे आंसू थे और होंठों से सिसकियां बिखर रही थीं. दिल का पथरीला बनाने के बावजूद वह विगलित हो उठा और उसके पास चला आया. उसने मुट्ठी में भिंचे कई छोटे-छोटे नोट उसकी तरफ बढ़ा दिए और अपनी कसम दे डाली कि न लो, तो उसके मरे का मुंह देखो! इस बार उसने कसम मान लेना ही उचित समझा.

डरी हुई पत्नी हिचकियों के बीच उससे लिपटी थी. वह तसल्ली दे रहा था कि उसका विश्वास करे. उसने तो गुस्से में कहा था कि वह उसके बगैर जी सकता है, लेकिन पत्नी का भरोसा डिगा हुआ था. वह उसे सनकी समझती थी और उसका खयाल था कि सनक में कोई कुछ भी कर सकता है.

वह यहां आया तो उसने सबसे पहले ठौर-ठिकाने की सोची और सीधे शिव मंदिर का रास्ता लिया. हालांकि वह शिव भक्त नहीं था. भक्ति-वक्ति से कभी उसका मतलब भी नहीं रहा, पर मंदिर के लंगर और ठहरने के लिए कुठरिया पर उसे भरोसा था. कुछ समय रहने-खाने का जुगाड़ बैठाने का इससे सस्ता नुस्खा उसके पास नहीं था. पंडाजी उसके पिता के गुरु भाई थे. विपद में देखकर उसे हाथों-हाथ ले लिया. वह भूखा था, सो डटकर शिवजी का प्रसाद खाया और लंबी तानकर सो गया.

कुठरिया में बैठकर उसने अपनी उन कविताओं को नयी डायरी में लिखना शुरू किया, जो उसे याद रह गयी थीं. जब-जब भी लिखने बैठता, तो उसे डायरियां फाड़ती हुई एक जाहिल औरत नजर आती या उसका मां जाया श्रवण कुमार और वह मन-ही-मन उन पर कुढ़ने लगता. खाने के लिए लंगर था. पीने के लिए पंडाजी के वचनामृत थे. गांव की काढ़े जैसी दो वक्त की चाय छूट चुकी थी. इधर पैसे भी खत्म हो गये, तो सिगरेटों के सिलसिले ने भी दगा दे दिया. पंडाजी से ही उधार मांगता और बीड़ी के बंडल ले आता. बीड़ी में उसे मजा आने लगा था.

वह पड़ा-पड़ा बीड़ियां धौंकता रहता और उसे याद आता कि उसकी मां घर के काम-काज में खटती हुई सिर्फ एक ही राग अलाप रही होती थी कि हारी-बीमारी में भी बहू का सुख नहीं. ब्याह रचा दिया और आप है कि बहू को मायके में डाले हुए है. उसे यह एहसास नहीं था कि वह अर्जियों के पलंदे उठाए सवेरे निकलता है और रात को हांफते हुए खाली हाथ लौट आया है. बहू का बोझ वह उठा सकती होंगी, पर वह तो अर्जियां ही ढो रहा था. उसे ठंडी सांसें भरने वाला बूढ़ा ससुर याद आता, जिसने क्लर्की की एक मामूली-सी नौकरी के लिए रिश्वत में दिये जाने वाले

घटना कथा

बकरा

□ डा. सामबे

जाड़े की सुबह थी. अब शहर चैन की सांसें ले रहा था. मोपेड पर हम अपने साथी के साथ भीखनपुर चौक से गुजर रहे थे. सबेरे-सबेरे यहां हरी सब्जियां, मांस मछलियां बिक रही थी. लोग खरीदारी कर रहे थे.

हम लोग तिलकामांझी जा रहे थे. चौक के निकट एक ओटो रिक्शा खड़ा था. चारों तरफ भीड़ थी. लुंगी पहने एक आदमी ओटो रिक्शा के भीतर से किसी को खींच रहा था. इस खींचा-तानी में कई लोग शामिल थे!

जो सुना था, क्या वही हो रहा है? यह सवाल एक साथ हम लोग के मन में उठा. थोड़ा दूर हटकर मेरे साथी ने मोपेड रोकी. यह रेशमी शहर फिरकापरस्ती के प्लेग से चंगा तो हो चुका था, लेकिन 'घिच्चा' की महामारी फैली हुई थी. 'घिच्चा' यानी राह चलते हुए को खींचकर साफ कर देना!

सिर्फ पांच हजार रुपये नहीं दिये थे और कह दिया था कि घर का ही इतना कारोबार फैला है, उसे ही देखे-भाले. यानी वह भी उनकी तरह मरखना बैल और कफन खसौट बन जाये. ऐसी ही न जानें कितनी बातें उसे याद आती और वह बड़बड़ाता बीड़ियां धौंकता हुआ थककर सो जाता.

एक दिन पंडाजी भी उकता गये.करते भी क्या? सेठजी बिगड़ने लगे थे. भगवानजी के लंगर पर कोई स्थायी डेरा थोड़े ही डालता है! जवार-पथार से भगत-जन आते हैं, कुछ दिन टिकते हैं, संगतों में बैठते हैं, दोनों समय प्रसाद पाते हैं और चलते बनते हैं. एक यह निठल्ला है कि न भगवत भजन, न आरती-पूजा. दिन भर कविताई करना, बीड़ियां धौंकना, अर्जिया लेकर घूमना और टांगें पसार कर सो रहना. ऐसे भक्तिहीन आदमी को लठिया कर निकाल देने की बात तक कह बैठे थे सेठजी. आखिर ठहरे मंदिर के प्रबंध न्यासी. पंडाजी उनके आदेश की अवहेना कैसे करते! बरसों से मंदिर के मुख्य पुजारी थे. घर-बार चल रहा था. उसे और टिकाए रखकर सेठजी का कोप-भाजन बनने की शक्ति नहीं थी उनमें. उसे लठियाया तो नहीं. बस, कुठरिया से ट्रंक, दरी-कंबल, कागज-पत्तर सब बाहर फेंक कुठरिया में ताला डाल दिया और उसके आगे हाथ जोड़ लिये

उसे पंडाजी पर बेहद गुस्सा आया था और सेठजी के व्यवहार पर लंबा-चौड़ा भाषण झाड़ दिया था. उसने सख्ती से कहा था कि दुनिया बहुत बड़ी है. भगवान के मंदिर में शरण नहीं मिलेगी, तो क्या हुआ? मर तो जायेगा नहीं. अभी उसे मरना नहीं है. मर्दों की तरह जीना है.

उसके दिमाग में गुबार भरा हुआ था. पहले जब भी भरा होता था वह किसी को भी पकड़ लेता और अपनी कविताएं या विचार सुनाकर हल्का हो लेता था, पर अब वह जिद की हद तक चुप था और भीतर ही भीतर उबल रहा था. सभी लोग उसे अकल से पैदल लग रहे थे. किसी भी पैदल को मात देने का उसका मन नहीं था.

वह सड़कों और गलियों में घूमता-भटकता रहा. भूख और प्यास ने उसे दबोच रखा था, पर उसने किसी नलके पर पानी तक नहीं पिया. रोटी के लिए तो जेब में पैसे ही नहीं थे. बीड़ी की तलब बार-बार लगती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या वही हो रहा है? सवेरे-सवेरे! यह सोचकर हमारे रोंगटे खड़े हो चुके थे, चेहरे का रंग उड़ गया था. दम साधकर यह नजारा हम लोग देख रहे थे. और खतरे की स्थिति में जान बचाकर भागने के लिए मेरे दोस्त ने मोपेड को तैयार रखा था. किसी को ओटो रिक्शा के भीतर से खींचकर निकालने में वे लोग भिड़े हुए थे! हमें ऐसा लगा कि ये लोग अब हमारी तरफ मुड़ेंगे और हमारा भी 'धिच्चा' आज हो जायेगा. यह सब कुछ सोच ही रहे थे कि हमारी आंखों ने देखा कि एक बकरे को हलाल कर दिया गया है और खून का फव्वारा निकल रहा है.

ऐसा लगा कि अब हमारी ही बारी है. थोड़ी देर बाद अब हमें भी यहां बकरे की तरह टांग दिया जायेगा. यह संभावना सच हो, इससे पहले मेरे मुख से ये शब्द गर्भाशय के शिशु की भांति निकल गयी कि... 'भागो'... 'जल्दी से'... 'सेना को खबर करो!' 'मोपेड क्यों रोके खड़े हो?'

मेरा साथी घबरा गया. उसने मोपेड आगे बढ़ानी चाही. परंतु मोपेड आगे नहीं बढ़ी. हम सड़क पर खड़े थे. उसने मोपेड को छोड़ दिया. मोपेड जमीन पर चार-चित्त हो गया. हम लोग दौड़ने ही वाले थे कि ओटो रिक्शा के भीतर से एक काले रंग का बकरा मिमियाते हुए निकला.

एक अरसे बाद ओटो से आदमी नहीं, बकरा खींचा गया!□

इसके साथ ही वह चौकन्ना होकर सड़क पर चलते लोगों को देखने लगता कि कौन व्यक्ति हो सकता है, जो मांगने पर एक बीड़ी पिला सकता है. उसने एक रिक्शेवाले, एक फेरीवाले, एक पालिशवाले छोकरे, एक कुली और एक बेलदार से बीडियां लेकर पीं. उसे तसल्ली हुई कि ये दो पैसे के आदमी सचमुच बड़े आदमी होते हैं, इनका बस चले, तो जान भी निकालकर दे दें.

कुछ दिन से उसे हल्का ज्वर था. दवाई कुछ ली नहीं थी. कमजोरी-सी महसूस होती थी, पर इसकी परवाह नहीं की. वह सोचता, न जाने कितने लोग हैं जो दवाई के अभाव में जी लेते हैं और मर भी जाते हैं. एक वही तो नहीं है, जो अपनी फिक्र में मरता फिरे!

उसके भीतर के बवंडर ने शाम तक माथे की नसें तनतना दी थीं. आंखों के आगे अंधेरा-सा छा गया था और कानों में एक साथ असंख्य झींगुर बेसुरा राग अलाप रहे थे. वह बुरी तरह थक गया था. अधिक भटकने की ताकत नहीं रह गयी थी. जिद इतनी धनी थी कि वह किसी के भी पास जाकर अपनी कैफियत बयान नहीं करना चाहता था. उसे किसी का दयाभाव नहीं चाहिए था.

पैरों में लड़खड़ाहट झलने लगी, तो वह एक उजड़े हुए पार्क में घुस गया और एक कोने में कटे हुये पेड़ की तरह गिर गया. नीचे सूखे पत्ते तिनके कागज के टुकड़े और दूसरी तरह का कूड़ा करकट चरमराया जिसका उसे एहसास भी नहीं था. उस पर एक जुनून हावी था. आत्म पीड़न ने उसके शरीर को पस्त कर दिया था, लेकिन प्रतिकार का बीज पेड़ बन रहा था. वह सबसे, सारी दुनिया से लड़ना चाहता था. वह बता देना चाहता था कि सारी व्यवस्था ही दोगली है. हर कोई हर किसी को याचक की मुद्रा में खड़ा देखना चाहता है और दूसरे पर अहसानों का बोझ लादकर झूठे अभिमान से भर उठना चाहता है. वह ऐसे लोगों से समझौता नहीं करेगा. अपनी नकेल किसी के हाथ में नहीं थमायेगा. सोचते-सोचते उसे झपकी आ गयी. वह रात भर सोता रहा.

उसकी नींद निर्विघ्न पूरी हुई. आंखें पट से खुल गयीं. जैसे किसी ने बटन दबा दिया हो. वह उठकर बैठ गया. उसे भूख लगी थी, प्यास भी. उसने आंखें मिचमिचा कर देखा. सामने एक हैंडपंप था, जिसका हत्था उखड़ा था. लगता था, जैसे बरसों से बेकार हो. वह हंसने लगा. उसे अपने आप पर हंसी आ गयी थी, क्योंकि वह खुद भी हत्थे से उखड़ चुका था और गिरवी पड़ी जिंदगी जी रहा था. लेकिन अब यह नहीं होगा. वह मर्द की तरह जियेगा, अपने बूते पर, सिर्फ अपने ही. उसके जबड़े भिंच गये थे और एक बार फिर जुनून ने उसका गला पकड़ लिया था.

वह अब सारे शहर में मशहूर हो गया था. सड़कों, गलियों, मौहल्लों के लोग उसे पहचानने लगे थे. बूढ़े, बच्चे, औरतें, पलिसवाले, रात के चौकीदार और कुत्ते भी. उसके कपड़े फटकर तार-तार हो चुके थे. दाढ़ी किसी झब्बे की तरह बढ़ गयी थी. बाल झाड़-झंकाड़ की तरह हो गये थे. उसकी लाल-लाल आंखों में गीजड़ भरा रहता और बांछों में झाग. उसे कहीं से एक लठिया मिल गयी थी, जिस पर उसने सुतलियों से गूंथकर बोरी का झंडा बना लिया था.

अपना झंडा लिये वह सवेरे से रात तक चक्कर लगाता रहता. कहीं किसी चौराहे या गली के नुक्कड़ पर झंडा टेककर खड़ा हो जाता और धुआंधार भाषण देने लगता. उसके भाषण जबर्दस्त होते. लोगों को उसके विद्वान होने में कोई शक नहीं था, बल्कि उन्हें अफसोस होता कि अच्छा-खासा नौजवान पागल हो गया. उनकी राय थी कि यह इतना अधिक पढ़ने का नतीजा है, जितने को तातकवर से ताकतवर दिमाग भी नहीं झेल सकता.

उसके भाषण लोग खड़े होकर सुनते. सुनते-सुनते उन्हें लगता कि उनके दिमाग की चूलें हिल जायेंगी. इतनी भारी भरकम बातें उनके भेजे में उतरने वाली नहीं थी. इसी तरह सुनते रहे, तो खुद पागल हो जायेंगे. दो-चार मिनट सुनकर लोग चलते बनते, पर उसका भाषण घंटों की रफ्तार से जारी रहता. भाषण के इन दौरों ने उसका गला बांस की तरह फाड़ दिया था. चिंघाड़ों के कारण मुंह से झाग उफनने लगते. गले में असंख्य कांटे उग आते और प्यास की सलाखें गले पर चुभने लगतीं. कभी-कभी इस दशा में उसे चक्कर आ जाते और वह धड़ाम से गिरकर फैल जाता. वह मरखना बैल नहीं था, इसलिए लोग उसे संभाल लेते, लेकिन जैसे ही उसे होश आता, वह फिर तनकर खड़ा हो जाता, क्योंकि वह दया का पात्र नहीं बन सकता था. उसे मर्द की तरह अपने बूते पर जीना था.

दुनिया को पहले भी उसका नाम मालूम नहीं था और अब भी, अतः सुविधा के लिए उसको झंडा पागल कहने लगे थे. लठिया पर सुतली से बंधी बोरी उसका झंडा था. वह अपना झंडा हिलाता और नारा लगाते हुए कहता, ''यह बोरी यानी टाट है, जिस पर गरीब सोता है, जिसे पहनकर अपनी इज्जत ढांकता है और जिसे अपना कफन बनाता है. यह टाट जन्म से लेकर मरण तक गरीब का साथ नहीं छोड़ता, और यह लाठी अमीर की है, जो गरीब पर बरसती है और जिंदगी भर बरसती है. इसीलिए सुतली ने इन दोनों को गूंथा हुआ है. सारी दुनिया में ऐसा ही है. यह देश भी अछूता नहीं है. लोग मुझे पागल कहते हैं, पर मैं पते की बात कहता हूं. कोई मुझे समझता नहीं. एक दिन मैं समझाते-समझाते पागल हो जाऊंगा कि इस दोगली व्यवस्था से कभी समझौता मत करो. अपने बूते पर मर्द की तरह जियो!''

उसे भूख भी लगती थी और प्यास भी. प्यासा होता तो किसी भी नलके पर पी लेता और कहता कि यह जनता का नलका है, किसी की बपौती नहीं. वह किसी के दरवाजे पर पानी मांगने नहीं गया, लेकिन भूख लगती तो जाना पड़ता. उसे झुंझलाहट होती कि जनता के नल से रोटियां क्यों नहीं टपकतीं या जंगली झड़बेरियों में रोटियां क्यों नहीं उगतीं? रोटियों को वह पेड़ से नहीं जोड़ता था, क्योंकि उसे मालूम था कि झड़बेरियों की तरह पेड़ लावारिस नहीं होते. पेड़ सरकार के होते हैं या किसी मालिक के. वह रोटी के लिए किसी दरवाजे पर जाता तो उसकी पहली शर्त होती कि उसका भाषण सुना जाये. कोई उसके भाषण से भागता तो वह उसके दरवाजे से भाग खड़ा होता. उसका कहना था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह श्रम की रोटी खायेगा. उसे खैरात नहीं चाहिए. जो उससे भाषण सुनेगा, उसी से रोटी लेगा. आखिर उसे अपने बूते पर मर्द की तरह जीना है.

एक बार उसका छोटा भाई ट्रक चलाते हुए उधर से गुजरा. वह एक चौराहे पर भाषण झाड़ रहा था. भाई ने उसे देखा तो उसका श्रवण कुमार जाग उठा. ट्रक से माल उतरवाना और आगे के लिए लोड करवाना, सब भूल गया. ट्रक एक तरफ खड़ा करके उससे जा लिपटा. रात-दिन उसके पीछे-पीछे फिरता रहा, पर वह उसे भी भाषण पिलाता रहा कि उसे अपनी जिम्मेदारी का एहसास है. थक-हारकर वह लौट गया, फिर तो उसकी मां आयी, ससुर और पत्नी ने भी आकर हजार तरह के मान-मनौबल कर लिये, पर उसने अपनी मर्दानगी का झंडा ताने रखा. जब किसी का बस नहीं चला तो उसके साले आये और उसे बांध-बूंधकर बैल गाड़ी में डाल ले गये.

लेकिन एक दिन फिर उसे शहर की सड़कों पर देखा जाने लगा. उसका झंडा कहीं खो गया था. नया झंडा बनाने के लिए वह पगलाया-सा फिरता रहा. लड़कों को पता चला, उन्होंने उसका कष्ट दूर कर दिया. आन-की-आन में नया झंडा बन गया. उस दिन वह बहुत खुश हुआ और दिन भर आज के लड़कों पर ही भाषण देता रहा कि बूढ़े व्यर्थ में ही इस पीढ़ी को दोषी ठहराने और उसे बर्बाद करने पर तुले हैं.

वह गांव से चुपचाप भाग आया था. उसके पीछे साले फिर आये, पर इस बार वह इमली के पुराने पेड़ की सबसे ऊंची शाख पर चढ़ गया और उन्हें कूद कर आत्महत्या करने की धमकी दे डाली. उसने यहां तक कहा कि उसके पास मर्द की जबान है, जो कह दिया वह करके दिखा देगा. साले यह हत्या अपने सिर नहीं ले सकते थे, इसलिए चुपचाप लौट गये.

उसके भाषण उसी तरह चलते रहे. अब वह चिड़चिड़ा अधिक हो गया था. बहुत तीखा और सख्त बोलने लगा था. पहले वह दुनिया-जहान की बातें करता था, जिनकी किसी को परवाह नहीं थी. धीरे-धीरे ये बातें स्थानीय लोगों पर केंद्रित होती चली गयीं. धन्ना सेठ, नगर कोतवाल, प्रशासनिक अधिकारी और छटे हुए बदमाशों की बखिया उधेड़ते हुए उसे सिर्फ अपने मर्द होने का एहसास भर होता. उसके बदले हुए तेवरों ने शहर में तहलका मचा दिया. वह धमाकेदार अखबार बन गया था और लगातार धज्जियां उड़ाता जा रहा था. शरीफ शहरी उससे डर गये थे और कतराने लगे थे. बदमाश लाम बंद हो रहे थे और मौके की तलाश में थे.

एक दिन किसी वाहन से कुचली हुई उसकी लाश सड़क पर फैली पड़ी थी. पंचनामे के बाद उसकी लाश और झंडा पुलिस ले गयी. शाम पड़े सड़कों पर रद्दी कागज बीननेवाली बुढ़िया आयी. उसने कागजों का एक पुलिंदा देखा और उठा लिया. सुतली खोलकर लिखावट पर मोटे शीशोंवाली ऐनक के पीछे से आंखें टिपटिपायीं. सभी कागजों पर अर्जियां लिखीं थीं, जिन्हें उसने भेजना बंद कर दिया था. □

लघुकथा

रिश्ते

□ जगदीश कश्यप

जब वह कमरे में दाखिल हुई तो उसने दिन भर के आफिस के बोझ और परेशानियों को चेहरे पर पानी की छींटें डालकर धोया और तौलिए से सुखा डाला. इस तात्कालिक ताजगी वाली उमंग में उसने स्टोव सुलगाया और फ्राइपैन में चाय के अंदाज वाला पानी डालकर कुछ गुनगुनाने लगी. स्टोव की आवाज सुनकर सामने लेटी मां कराहने लगी.

"कैसी हो मां?" उसने चुलबुले किंतु मायूस अंदाज में पूछा. मां ऐसी बातों का जवाब नहीं दिया करती, उसे मालूम था.

"लो मां चाय. राकेश दवाई दे गया था?"

"हां." मां बड़ी मुश्किल से इतना ही कह पायी और अत्यंत पीड़ा से करवट बदल नई-नवेली, उमंगों से भरपूर लड़की की तरफ देख, तनिक मुस्कराई-सी.

"अभी उठाती हूं," कहते ही उसने मां को धीरे से उठाकर कमर में कई तकिये लगा दिये.

वह सोचने लगी—उस बीमारी के बारे में जो मां को दस साल से न जिंदा रखना चाहती है और न मरने देती है. सारा घर दवाई, इंजेक्शन और कैपसूल की खाली शीशियों से भरता जा रहा है.

"राकेश पर्चा रख गया है—वहां तेरी अलमारी में." मां धीरे से काफी देर में कह पाती है.

पर्चा पढ़ते ही उसके चेहरे पर मुस्कान फैल गयी. "आज कितने दिनों बाद राकेश रात में रुकेगा."

"ये बातें तुम मेरे सामने कह सकते थे—पर्चे में लिखने की क्या जरूरत थी?" वह हल्के मूड में थी. "ठीक है, मैं कमाता नहीं हूं. पर इतनी हैसियत तो है कि दवाई ला सकूं. तुम्हारी तो सारी तनख्वाह ही दवाई में चली जाती है. पार्टी पॉलिटिक्स ने मुझे न घर का रखा है, न बाहर का. फिर भी तुमने इस आवारा को जिसे लोग शराबी, झक्की कहते हैं, अम्माजी की सेवा करने का मौका दिया, ये क्या कम है?" ऐसे अंदाज पर वह मुस्करा कर रह जाती है.

जीरो वाट का बल्ब जल रहा है. एक खयाल उसे मां की बीमारी से ज्यादा भयानक लगता है, जो उसे रोज रात को परेशान करता है. उसका गला सूखने लगा. पास रखी सुराही को देखकर वह वितृष्णा लिये उठी और बराबर के पार्टीशन में गयी. खटोले पर सोया राकेश, दाढ़ी भरा चेहरा. सीने के बटन खुले हुए, उससे चार वर्ष छोटा. क्या लगता है. उसका? सब कुछ तो लगता है—उसका. वही है अब उसकी जिंदगी. उसके जी में आया कि यह झिंझोड़ कर कहे—"राकेश तुम मुझे अपना लो. मैं टूट रही हूं. मां ठीक नहीं होगी-मां ठीक नहीं होगी....."

"क्या बात है दीदी?" राकेश हड़बड़ाकर जाग गया. उसने परेशान अरुणा के चेहरे को पसीने से तरबतर पाया.

"कुछ नहीं रे, तू सो जा. मां की दवाई का टाइम हो गया है न." और वह पलट पड़ी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेटी

कौन कहता है कि आज संबंध नाम भर को रह गये हैं! क्या कहा, सोच में पड़ गये हैं आप? तो लीजिए, जरा मुन्नी से ही मिल लीजिए!

□ मैत्रेयी पुष्पा

प्रमुख कृतियां: 'लकीरें' (कविता संग्रह), 'तुम्हारे बिना' (उपन्यास) व 'राह सुगम है.'
संप्रति: जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में कार्यरत.
संपर्क: डी-11/237, किदवई नगर वैस्ट, नयी दिल्ली-110 023

धूल नहाये पैरों से जिस रेत भरे रास्ते पर मैं चल रही थी वह तनिक भी अजनबी नहीं था. यहां होकर तो मैं अपने बचपन में रोज स्कूल जाती रही हूं. गांव से सारे विद्यार्थी सुबह सबेरे ही बस्ता लादकर चल देते थे और भागभूगकर स्कूल के घंटा बजने का वक्त पकड़ ही लेते थे. मैं मन ही मन बड़ी दुखी होती थी... 'मेरी मां को भी न जाने क्यों मुझे पढ़ाने की धुन सवार है?' मेरी सहेलियां पढ़ाई से मुक्त गांव में ही उपले थापती, जाड़ों की धूप में बैठी खिलखिलातीं, रोटी बनाना सीखती और गीत गातीं. इन सभी कलाओं से वंचित होने का दुख मेरे नन्हे कलेजे में हर-वक्त सालता था.

जिस राह से मैं स्कूल भागी हुई जा रही होती थी, उसी रास्ते पर मेरी अभिन्न सखी मुन्नी के खेत थे. वह वहीं अपने पिता के साथ खेतों में बुवाई कराती मिलती, कभी पानी लगा रही होती और कभी रहट हांक रही होती. मुझे मुन्नी से ईर्ष्या होने लगती थी कि उसके मजे हैं चाहे जब घर चली जायेगी, रोटी खायेगी और फिर खेलेगी बस. एक मैं हूं... सारे दिन पढ़ाई में लगी रहूंगी, कभी न याद होने वाले इतिहास, भूगोल को मास्टरजी के डर से जोर-जोर से रटूंगी फिर चार किलोमीटर पैदल चलूंगी तब कहीं लौटकर घर का दरवाजा देख पाऊंगी—भूख के मारे अलग बुरा हाल!

लौटकर ही मुन्नी से मिलना हो पाता था. मुझे देखते ही वह भागकर मेरे घर, आ जाती—फिर जिस ललचायी निगाह से मेरे बस्ते की ओर देखती—मुझे आज भी उसकी वह ललक-दृष्टि याद है. लेकिन उस समय वह मुझे निरी मूर्ख लगती—भला पढ़ाई के लिए क्या ललकना? मेरे खयाल से उस समय पढ़ाई से ज्यादा नीरस कोई दूसरा काम नहीं था. लेकिन मुन्नी हमेशा मेरी किताबों की उलट-पलट करती रहती. मेरी और उसकी रुचियां सर्वथा भिन्न होते हुए भी हम न जाने किस सूत्र से एक दूसरे से बंधे हुए थे. उसे छोड़कर मुझे स्कूल जाना जरा नहीं रुचता था. बहुत बार मैं स्कूल के रास्ते में मुन्नी के खेतों पर रह जाती और उसके साथ रहट हंकवाती रहती. कितनी बार उसकी मां से भी मिन्नत की थी...

"चाची मुन्नी को स्कूल भेज दो न!"

"अरी बिटिया क्या कहती हो,वह लड़की जात, कहां जायेगी और क्या करेगी पढ़ लिखकर! तुम्हारी बात और है वसुधा, अकेली औलाद, बेटा बेटी-तुम्हीं हो अपनी मां की, सो जिंदगी भर पढ़ो तो कोई कुछ कहने वाला नहीं, बाप न भइया."

इतना लंबा तर्क सुनकर मैं भी चुप हो गयी क्या कहती इसके आगे. मैंने भी सोच लिया,मेरे पढ़ने का यही कारण है,नहीं तो मां मुझे भी घर का काम सिखाती. वह लड़कपन था,शिक्षा का लाभ मुझे दिखता भी कैसे.

इतवार का दिन था, मैंने बाल धोये थे... सुखाने छत पर पहुंच गयी. मुन्नी के घर की छत से ही हमारी छत भी मिली थी. कुछ ही क्षण पश्चात मेरे कानों में मुन्नी की आवाज पड़ने लगी...

"अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रही. तुम पांच-पांच लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है... मेरी किताब-कापी के पैसे तुम्हें भारी हैं अम्मा!"

"रोज एक ही बात की हठ करती है तू. हमने कह दिया न, नहीं पढ़ा सकते तुझे..." उसकी मां ने एक बात खींच के कह दी थी.

"क्यों नहीं अम्मा, मुझे क्यों नहीं?"

"चुप होती है कि नहीं? बहुत जबान चल गयी है तेरी, तू लड़कों की बराबरी करती है. बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं हमारी, हमें सहारा देंगे. तू पराये घर का दलिद्दर. तेरी कमाई नहीं खानी हमें... कह दिया, कान खोलकर सुन ले." मुन्नी इसके आगे क्या कहती? एक ही हांक में चुप हो गयी. मैं इतना तो अवश्य समझती थी कि मुन्नी बड़ी चतुर और बुद्धिमान लड़की थी. अगर उसे पढ़ाया जाता तो वह अति प्रतिभाशाली छात्रा साबित होती, अपने भाइयों के मुकाबले वह कुशाग्र बुद्धि बालिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

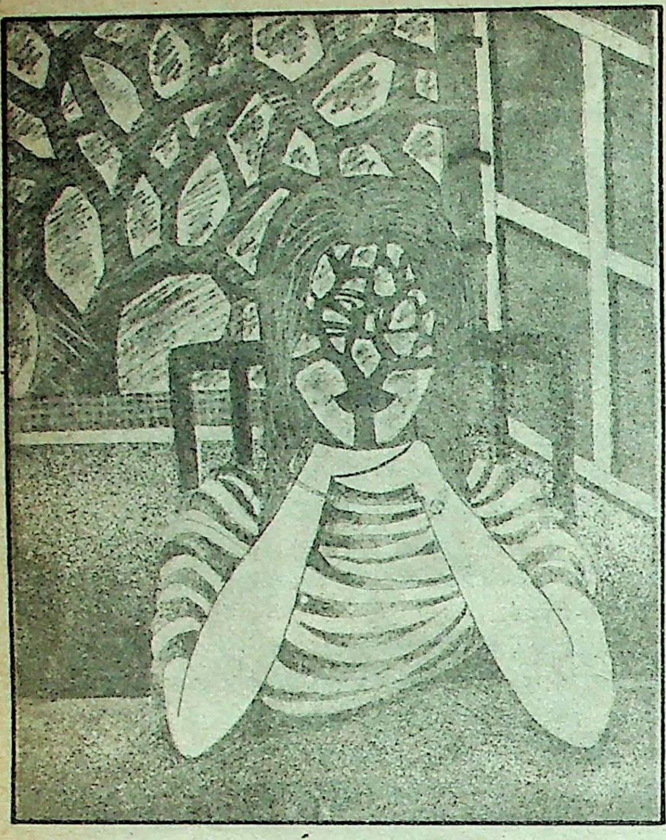

थी.

पढ़ाई के अतिरिक्त मुन्नी उन सारी विद्याओं में पारंगत हो गयी थी जिन्हें सीखने का जरा-सा भी अवसर वह पा सकी. उसकी जैसी पाक-कला मुश्किल से ही देखने को मिलती. ढोलक पर थाप देकर गाना उठाती तो गली में चलते लोग एक पल को रुक जाते. पड़ोस में पंडितजी के हितेश की शादी में जब मुन्नी नाची थी तो मुझे अपनी सारी विद्या धूल नजर आने लगी थी. कैसी वाह-वाह हुई थी उसकी. उसकी देह में अभूतपूर्व सौंदर्य जगमगा उठा था... कमर की लचक के साथ ही घाघरा ऐसे घूम रहा था मानों जमीन नाच उठी हो. सिलाई-कढ़ाई में अति प्रवीण. वह मेरी सखी पूरे गांव को अपना लोहा मनवा चुकी थी.

वह अपनी अम्मा की सारी जिम्मेदारी उठाकर घर का सारा काम करती रही. मुंह अंधेरे भाइयों के लिए पराठे सेकती रही. उन्हें स्कूल भेजती रही, उनके कपड़े धोती रही, पिता के साथ खेत में काम कराती रही. और बासी-कूसी रोटी खाकर चंद्रकला-सी बढ़ती रही. फिर भी ब्याह के कारण अपने माता-पिता की चिंता का विषय बनती रही. लेकिन चाचा को मुन्नी की शादी के लिए भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ी. वह रूपवती गुणवती बड़ी सरलता से अपनी रिश्तेदारी में ब्याह कर चली गयी

जब वह गयी तो मुझे लगा था कि जैसे मेरा कलेजा आधा कटकर रह गया हो. मुझे जितना कष्ट हुआ था, उसकी मां उतनी ही आश्वस्त हो गयीं थीं. मुन्नी के जन्म से ही जिस भार को उन्होंने महसूस किया था, उससे मुक्त हो जाना अपने में एक अहं काम था. अब क्या था चाचा-चाची के यहां. सिर्फ लड़के रह गये थे... उनका क्या 'चेक' हैं कभी भुना लो... अपनी मनमर्जी पर निर्भर हैं. यही धारणा उनके लिए आनंद-दायिनी थी.

मुन्नी गांव आती-जाती तो थी... मायके आने की रस्म अदा करने बस. चाचा-चाची तो उसे ब्याह कर गंगा नहा चुके थे. वह आती तो एक धोती और डलिया के सामान का वजन ही पड़ जाता चाचा पर... बेटी दे ही क्या सकती है लेकिन उसके मन में मां के प्रति जो लगाव था पिता के वात्सल्य का अथाह सागर था... उस पर किसी की दृष्टि कहां जाती थी. वहां तो पुत्र-मोह का ऐसा ताना-बाना बुना पड़ा था जिसमें से मुन्नी झांक तो सकती थी लेकिन उसके पार माता-पिता के स्नेह आंचल तक नहीं पहुंच सकती थी.

समय बीतने लगा... लड़कों की शादियां होने लगीं. पढ़ाई-लिखाई में ऐसा खास तो कोई लड़का निकला नहीं. एक अवश्य जूनियर इंजीनियर हो गया. वह सबसे बड़ा था. ब्याह भी खूब दान-दहेज के साथ हुआ उसका... चाची के पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे, लेकिन दूसरी बार आकर ही बहू ने सारा सामान समेटा और ऐलान कर दिया कि इस गंवई गांव में वह एक पल भी नहीं रह सकती... लड़का बीबी का सामना कहां कर सकता था... दबी जुबान से उसके समर्थन में ही खड़ा हो गया. अगले दिन ही दोनों हलद्वानी को विदा हो गये. एक बार आया तो वह नकद रुपये भी ले गया, जो चाचा ने उसकी ससुराल से दहेज स्वरूप प्राप्त किये थे... किराये के मकान की मुश्किलें दिखाकर तथा नया फ्लैट लेने की योजना बताकर.

विवाह होते गये, बहुएं आती गयीं, लड़कों के तेवर बदलते गये. दूसरे नंबर का लड़का वहीं गांव में ही दुकान करने लगा था अतः जाता कहां, लेकिन उसकी बहू असल बनिये की बेटी आयी, चाचा-चाची की चाय-चीनी तक का हिसाब बड़ी तंगदिली से रखने लगी. अतः चाची उस कुल वधू से अलग चूल्हा कर बैठी.

इस प्रकार कोई किसी तरह तो कोई किसी बहाने सब अपना-अपना अलग घोंसला बना बैठे. चाचा-चाची निपट अकेले-न्यारे पूत पड़ोसी दाखिल हो गये. मुन्नी के रहते चाची ने तवे पर चंदिया नहीं डाली थी लेकिन बुढ़ापे में तो खटना लिखा था. आंखें साथ नहीं देती थीं. धुंधला दिखने लगा था. घुटने के जोड़ अलग अकड़ने लगे थे. लड़कों के साथ बुढ़ापे ने भी तेवर दिखाने शुरू कर दिये. इसके अलावा पांच-पांच बहुओं की सास अपनी चार रोटी अलग डाले... इस तौहीन का दंश कहीं गहरे टीसता था. आस-पड़ोस में निकलने में भी झिझक लगती थी. अभी तक तो पांच पुत्रों की मां होने के ठसक में अकड़कर रही थीं, सिर उठाकर चली थीं और मुहल्ले में सौभाग्य की प्रतीक बनकर रही थीं. कर भी क्या सकती थीं. कभी-कभी चाचा ही उफन जाते.

"अरे घर-घर चूल्हे मिट्टी के हैं. आजकल कौन किसी की मानता है." कहकर चाचा को शांत कर देती.

बहुत दिनों बाद मैं अब की बार गांव आयी थी. अपने घर थोड़ी देर ही बैठकर चाची की कुशल क्षेम लेने उनके घर पहुंच गयी.

"चाची इ इ," मैंने आवाज दी लेकिन कोई उत्तर नहीं आया हालांकि द्वार में घुसते ही वे मुझे आंगन के पार चौके में बैठी दीख गयी थीं, उन्होंने इधर-उधर देखा लेकिन फिर पूर्ववत चूल्हे की ओर झुक गयीं.

"चाची इ इ!"

"कौन है?" धुंधआते चूल्हे को प्रज्ज्वलित करने का प्रयत्न करते हुए ही बोल रहीं थीं. पनियाती मोतिया बिंद उतरी आंखें शायद मुझे देख नहीं पा रहीं थीं. वे मुन्नी की मां जिनकी वह कैसी सेवा करती थी आज ऐसी लाचार.

"चाची... मैं वसुधा." कहती हुई मैं उस बूढ़ी काया से करीब-करीब सटकर बैठ गयी.

"वसुधा बेटी कब आयी? आंखें अंधी हो चलीं. दिखायी कहां देता है... बेटी सो तुम्हें देख नहीं पाये हम." इधर-उधर की बातें करती रही उनसे. जल्दी ही मैंने पूछ लिया... "चाची मुन्नी कब से नहीं आयी?"

"मुन्नी....मुन्नी कैसे आवे बिटिया... भाभी भौजाइयों का घर... यहां हम ही निभ जायें यही बहुत है. अरे क्या बतायें बेटी, हमारे बनाये घर में से हमें ही निकालने को फिरती हैं ये बुहएं. खेती-पाती सब बंटा ली, घर भी ले लेंगे तो हम रहेंगे कहां? तुम न्याय की कहना वसुधा."

"लडके कुछ नहीं कहते चाची."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उनकी क्या पूछो बिटिया, घोर कलजुगी हैं, बहुओं के गुलाम हो गये हैं नासपीटे." चाची क्रोध का लावा उगलते हुए तैश में बोल रहीं थीं. मैं भी उनके साथ दुखी हो उठी, कभी ऐसा सोचा नहीं होगा कि पांचों ऐसे निकल जायेंगे. हमारी उम्मीदें ही हमें कहीं का नहीं छोड़तीं. ये मोहजन्य पीड़ाएं वृद्धावस्था को और जर्जर करके रख देती हैं.

"मुन्नी को चिट्ठी लिखवायी है बिटिया पर अपने घर-गृहस्थी से उसे भी कहां फुर्सत होगी." वे यह कहकर अपने मन को ही तसल्ली दे रहीं थीं. बेटी से किसी प्रकार की आशा उन्हें थी या नहीं, मैं कह नहीं सकती, लेकिन जिस दिन मुझे इस गांव से लौटना था, हितेश दौड़ा-दौड़ा आया था मेरे घर...

"वसुधा, मुन्नी आ गयी है. तुझे पूछ रही थी."

सुनते ही मैं उसके घर की ओर भागी थी—देखा कि वह सामने से चली आ रही है...

"अरे वसुधा, खूब मिली अबकी बार!" कहती हुई वह मेरे गले लग गयी. आंखें छलछला उठीं हम दोनों की. इस साख्य-भाव में भी न जाने कितने सागर समाये होते हैं.

"जब से गांव आयी हूं मुन्नी, तुझे ही याद कर रही हूं."

"मेरे आने का तो था नहीं वसुधा, अम्मा की चिट्ठी पहुंची... तो अपने को रोक नहीं पायी. साथ अपनी बेटी को भी ले आयी हूं. वह यहीं रहेगी अम्मा की रोटियां बना दिया करेगी. अम्मा को दिखायी नहीं देता न..." कहते हुए मुन्नी फफककर रो पड़ी. देर तक खड़ी रोती रही, मैं उसे बहलाती रही..."

"रो मत मुन्नी, अच्छा किया तूने. लेकिन मूर्ख, यह उसके पढ़ने की उम्र है. यहां पढ़ेगी कैसे?"

"वसुधा, तू भी तो यहीं रहकर पढ़ी थी, ऐसे ही वह भी पढ़ लेगी..." कहकर वह अपनी रक्ताभ आंखें पोंछ रही थी. □

कपड़े

□ सुहेल वहीद

नये कलेक्टर ने दो दिन पहले ही पदभार ग्रहण किया था. शहर के बड़े-बड़े उद्योगपति, नेता और अधिकारी उनसे मिलने आ जा रहे थे. एक व्यक्ति साफ सफेद कुर्ता पैजामा सफेद टोपी लगाए कलेक्टर के कमरे में घुसा. कलेक्टर ने एक चुस्त प्रशासक होने का परिचय देते हुए खड़े होकर आने वाले व्यक्ति से हाथ मिलाकर उसका अभिवादन किया फिर पूछा कि कैसे कष्ट किया, कोई काम...?

"नहीं.... नहीं.... हुजूर के दर्शन करने चला आया..."

"अच्छा.... अच्छा... बैठिए..."

"नहीं साहब ऐसे ही ठीक है... अब चलते हैं...."

"अरे नहीं... चाय तो पी लीजिए..." कलेक्टर घंटी बजाते-बजाते रुक गए, फिर बोले, ..."बैठिए पानी तो पिएंगे..."

"नहीं साहब.... अरे बस, आप की कृपा दृष्टि चाहिए...." आने वाला व्यक्ति हाथ जोड़े आगे की ओर ऊपर से झुकता ही जा रहा था.

"अरे आप कैसी बातें करते हैं, अब सेवा का अवसर मिला है, मेरी ओर से कोई कसर बाकी नहीं रहेगी..., अब देखिए न इससे पहले मैं जहां था वहां तीन साल कोई रुका नहीं... मैं था जो तीन साल रहा... और शान से रहा, हर कोई खुश, जब तबादला हुआ तो वहां की जनता आने नहीं दे रही थी कुछ लोगों ने तो आंसुओं से विदा किया, अब यहां भी आप लोगों का सहयोग रहा तो यहां भी सब अच्छा ही रहेगा..." कहते-कहते कलेक्टर के चेहरे पर सुर्खी दौड़ गयी.

"अरे सा...ब मेरी क्या औकात है... आप जो हुकुम देंगे सो करेंगे... अच्छा जी चलते हैं..."

"अरे वो चाय...."

"नहीं सा....ब..."

"अच्छा फिर आइएगा... आते रहिएगा."

"अच्छा साहब नमस्कार."

"नमस्कार."

उस व्यक्ति के जाने के बाद बूढ़े से कलेक्टर ने चैन की सांस ली. फिर घंटी बजायी. चपरासी आया तो उससे पानी मांगा. अचानक उनको न जाने क्या याद आया कि पानी का गिलास मुंह से लगाए ही उन्होंने चपरासी की तरफ देखते हुए आंखें नचायी और एक हाथ से दरवाजे की तरफ इशारा करते हुए इशारों से हाथ की उंगलियां घुमा-घुमाकर पूछा कि जो साहब अभी आए थे वह कौन थे?

चपरासी ने कुछ समझने और कुछ न समझने वाले अंदाज में एक बार सर हिलाया फिर खामोश रह गया.

कलेक्टर ने गिलास का पानी अपने गले के नीचे उतारते ही लगभग चिल्लाकर चपरासी से पूछा, "अरे मैं पूछ रहा हूं कि जो साहब अभी आये थे कौन थे... इनको जानते हो ?"

इतना सुनना था कि चपरासी के चेहरे पर कई रंग आये और गये... उसने आंखें फाड़कर बड़ा-सा मुंह खोला दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाए और बोला, "हे राम... आप उसको नहीं जानते... अरे साब ये तो अपना कपट लाल है, आपके बंगले का चौकीदार..." कलेक्टर यह सुनते ही कुर्सी से खड़े हो गए.

"क्या....?"

"क्या" उन्होंने इतनी जोर से कहा कि पड़ोस में खड़ा चपरासी दो कदम पीछे हट गया कलेक्टर धड़ से कुर्सी पर गिरे और एक हुंकार भरी.

"हूं.... चौकीदार... बुलाओ उस हरामजादे को."

चपरासी भागता हुआ गया और कंपट लाल को लेकर अंदर आया, वह पहले ही की तरह दोनों हाथ जोड़े ऊपर से आगे की ओर थोड़ा झुका हुआ अपना झुर्रियों वाला चेहरा लिए कलेक्टर के सामने खड़ा हो गया... मुस्कराने की कोशिश में थोड़ा हकलाया.

"....सा...ब.... कोई हुकुम..."

झुंझलाये हुए कलेक्टर की गरजती हुई आवाज निकली, "क्या नाम है....?"

".....सा...ब.... कंपट लाल...."

"तुम्हें बिल्कुल तमीज नहीं... कपड़े जरा ठीक-ठाक पहना करो..." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलीविजन

□ मुज्तबा हुसैन

अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

जब हम छोटे थे तो मुल्क में टेलीविजन का चलन नहीं था. लिहाजा हमें घटिया फिल्मों को देखने के लिए सिनेमाघर जाना पड़ता था... लक्ष्मीचंद गुप्त द्वारा अनूदित उर्दू हास्य लेख.

दुनिया में कुछ चीजें ऐसी हैं जिनके होने या न होने के फायदे और नुक्सान दोनों मौजूद होते हैं. खुद हमारे घर में हमारे सहित दो-चार चीजें ऐसी हैं जिनके फायदे और नुक्सान के बारे में हम अब तक फैसला नहीं कर सके कि उनके होने का फायदा कितना है और न होने का नुक्सान कितना है. खुद अपने होने या न होने के फायदे या नुक्सान के बारे में अपने मुंह से क्या अर्ज करें. हम तो अपने होने के फायदे ही गिनायेंगे लेकिन हमारे परिवार के सदस्य जानते हैं कि हम न होते तो वे किस कदर फायदे में रहते!

टेलीफोन, रेफ्रीजिरेटर और टेलीविजन तो खैर हमारे सामने की चीजें हैं जिनसे फायदा हासिल करने की कोशिश में हम लगातार नुक्सान उठा रहे हैं. हमारा टेलीफोन तो खैर अब ज्यादातर हमारे पड़ोसियों के इस्तेमाल में ही रहता है. यही वजह है कि हमें अपना टेलीफोन नंबर तक याद नहीं रहता. लिहाजा कोई जब हमसे हमारा टेलीफोन नंबर पूछता है तो हम अपनी बीमा पालिसी का नंबर बता देते हैं. जो चीज हमारे इस्तेमाल ही में न रहती हो उसका नंबर याद रखने का क्या फायदा?

यही हाल हमारे रेफ्रीजिरेटर का है कि उसमें ज्यादातर पड़ोसियों के सड़े हुए आम, उनकी बदजायका सब्जियां और हमारा शिष्टाचार सुरक्षित रहता है. जहां तक टेलीविजन का संबंध है, इस सिलसिले में यह अर्ज करते चलें कि इस चीज से हम जरा देर से परिचित हुए हैं.

जब हम छोटे थे तो मुल्क में टेलीविजन का चलन नहीं था. लिहाजा हमें घटिया फिल्मों को देखने के लिए सिनेमाघर जाना पड़ता था. टेलीविजन के आने का एक मोटा फायदा तो यह हुआ कि अब हम घर बैठे घटिया फिल्में देख सकते हैं लेकिन नुक्सान यह हुआ कि सिनेमाघर जाते थे तो टिकट की क्यू में ठहरकर हमें खासा शारीरिक व्यायाम करना पड़ता था जिसके कारण हमारी सेहत अच्छी रहती थी. उन दिनों बामुहावरा जबान भी बोल लेते थे, क्योंकि हमने बहुत-सी अनौखी गालियां टिकट-घर की क्यू में ही सीखी थीं. सिनेमा देखने का तो सिर्फ एक बहाना होता था, असल मकसद तो अपनी सेहत और जबान दोनों को बेहतर बनाना होता था.

हमारे घर में टेलीविजन किस तरह आया, इसकी भी एक अलग दास्तान है. आइये, पहले हम आपको उन मुश्किलों से परिचित करायें जो टेलीविजन न होने से हमें दरपेश आती थीं.

यह सात-आठ बरस पहले की बात है. हमें पता था कि हमारे दो पड़ोसियों के घर टेलीविजन आ चुका है. लेकिन इसके बावजूद हम अनजान से बने रहे. एक दिन हम शाम को नियम-विरुद्ध जल्दी घर लौटे तो देखा कि हमारे घर पर ताला पड़ा हुआ है. हम परेशान हुए कि आखिर ऐसी कौन-सी आफत आ गयी कि घर के सारे लोग घर से गायब हैं. घंटे भर बाहर खड़े अपने घर के लोगों की वापसी का इंतजार करते रहे. कुछ देर बाद देखा कि न सिर्फ हमारा पूरा खानदान बल्कि मुहल्ले के बाज और खानदान भी हमारी पड़ोसन के घर में से बरामद हो रहे हैं. पता चला कि पड़ोस के टेलीविजन पर फिल्मी गानों का प्रोग्राम देखा जा रहा था. हमने अपने बीवी को डांटा तो बोलीं, "तुम्हें खुदा ने इतनी सामर्थ्य तो दी नहीं कि खुद एक टेलीविजन खरीदो. अब अगर हम लोग पड़ोसन के घर जाकर टेलीविजन देख आते हैं तो इतना नाराज होने की क्या जरूरत है!" बात माकूल थी, लिहाजा इस घटना के बाद हमने अपनी इज्जत को बचाने की खातिर हमेशा देर से घर आना शुरू कर दिया.

देर से घर वापस आने के बावजूद हमारी जान-बख्शी नहीं होती थी क्योंकि बच्चे प्रायः उस शाम के टेलीविजन प्रोग्राम पर टीका-टिप्पणी करने में व्यस्त रहते थे और हम एक तटस्थ राष्ट्र की तरह खामोश बैठे उनका मुंह तका करते थे. इतवार के दिन तो अजीब हालत होती थी. हम किसी बच्चे को बुलाते तो मालूम होता कि वह बच्चों का प्रोग्राम देखने के लिए पड़ोसी के घर गया हुआ है. कुछ देर बाद दूसरे बच्चे को बुलाते तो मालूम होता कि अब की बार वह नौजवानों का प्रोग्राम देखने गया है.

इसी बीच जब किसी मुल्क की क्रिकेट टीम हमारे मुल्क में क्रिकेट खेलने आयी तो इन पर एकाकीपन का यह भयानक दौरा पड़ा कि घर की दीवारें हमें काट खाने को दौड़ती थीं. सारे दिन हमारे परिवार के लोग पड़ोसी के घर में क्रिकेट मैच देखने में तल्लीन रहते और हम अकेले घर में बैठे आंसू बहाया करते थे. इन क्रिकेट मैच के ये वही पांच दिन थे जिनमें न सिर्फ हमारी क्रिकेट टीम हार गयी बल्कि हम भी हार गये. और हमने फैसला किया कि हमारे घर में भी अब टेलीविजन आना चाहिए ताकि हमारे एकाकीपन का कुछ तो इलाज हो. यद्यपि अब तो हर घर में टेलीविजन आ चुका है लेकिन जिन दिनों इसका चलन आम नहीं था, उन दिनों टेलीविजन के होने का एक नुक्सान यह भी था कि चोर टेलीविजन का ऐंटीना देखकर घरों में चोरी करते थे. किसी घर पर ऐंटीना खड़ा होता था तो चोर समझ लेते थे कि इस घर में टेलीविजन के बावजूद खुशहाली भी है. मगर अब यह बात नहीं रही.

टेलीविजन के न होने से जो मुश्किलें हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

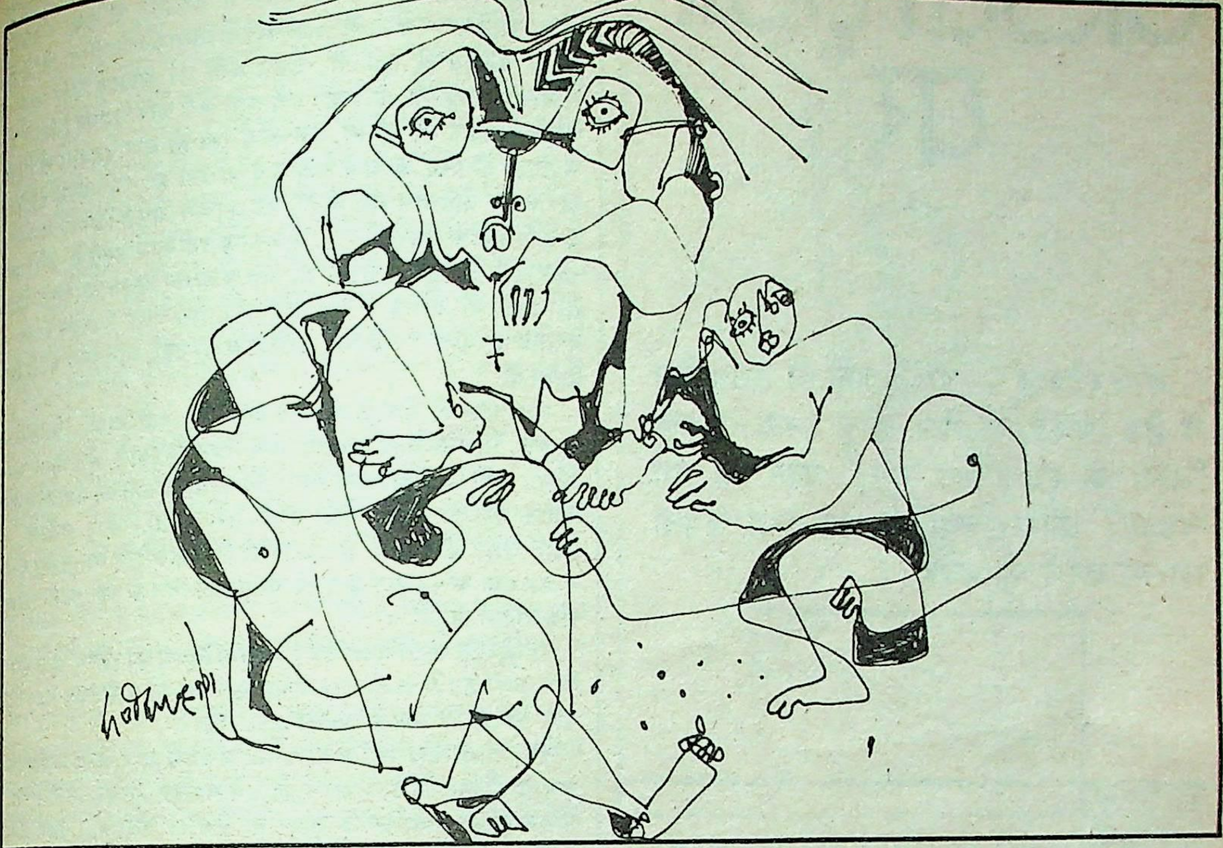

पेश आयी थीं उनका हमने संक्षेप में जिक्र किया है. मगर अब टेलीविजन के होने से हमें जिन मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है उनका हाल हम किस तरह बयान करें. जब टेलीविजन नहीं था तो हम अपने बाल-बच्चों के हालात से इसलिए बेखबर रहते थे कि वे ज्यादातर पड़ोसी के घर में टी.वी. प्रोग्राम देखने में व्यस्त रहते थे, अब जबकि घर मे टेलीविजन आ गया है तो हम तब भी अपने बाल-बच्चों के हालात से बेखबर रहते हैं क्योंकि अब वे ज्यादातर टेलीविजन सैट के सामने पाये जाते हैं. यद्यपि हमें अपने बच्चों के आज के हालात का पता नहीं है लेकिन अब उनका सामान्य ज्ञान खासा अच्छा हो गया है, उन्हें फिल्मी अभिनेताओं और राजनेताओं के जन्म दिन का तो पता होता है लेकिन उन्हें अब यह याद नहीं रहता कि खुद उनके बाप का जन्म दिन कब है, उन्हें किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के बीमार होने की खबर तो होती है लेकिन उन्हें यह मालूम नहीं होता कि खुद उनका बाप इसी घर में इसी बीमारी का शिकार है.

चूंकि हमारा टेलीविजन नया और रंगीन है इसीलिए हमारे पड़ोसी और उनके बच्चे हमारे घर में टी.वी. प्रोग्राम देखना ज्यादा पसंद करते हैं. लिहाजा अब हमारा घर, घर नहीं सिनेमाघर बन गया है और अब हम इसे उसी तरह चला रहे हैं जिस तरह कोई सिनेमा घर चलाता है. हमने अपने घर में टी.वी. प्रोग्राम देखने वालों को श्रेणीबद्ध कर दिया है खुशहाल पड़ोसियों को हम सोफे पर बिठाते हैं, उनसे कम खुशहाल पड़ोसियों को सीधी-सादी कुर्सियों पर बिठाते हैं और जो पड़ोसी उनसे भी गये-गुजरे होते हैं उन्हें फर्श पर बिठाते हैं. यह और बात है कि उन सबको बिठाने के बाद खुद हमारे बैठने के लिए कोई जगह बाकी नहीं रहती. लिहाजा सिनेमा-घर के गेट-कीपर की तरह दरवाजे में से झांककर टी.वी. प्रोग्राम देखते हैं. बात यहीं पर खत्म नहीं होती, हमें प्रोग्राम देखनेवालों की उनकी हैसियत के अनुसार खातिर-तवज्जो भी करनी पड़ती है. जब तक टेलीविजन चलता है, हम कोई काम करने के काबिल नहीं रहते.

एक और समस्या की तरफ भी आपका ध्यान आकर्षित करना जरूरी है कि टेलीविजन का ऐंटीना बहुत नाजुक चीज होता है. जरा-सी हवा चले तो उसका मिजाज-नासाज हो जाता है और परिणाम स्वरूप टेलीविजन पर शक्लें यों दिखायी देती हैं जैसे सारे पात्र नशे में धुत हों, क्योंकि इसके बाद स्क्रीन पर उनकी शक्लें झूलने लगती हैं. समझ में नहीं आता कि हीरो कौन है और हीरोइन कौन? और यह भी कि हीरो हीरोइन से प्रेम प्रकट कर रहा है या उसे डांट रहा है. ऐसे वक्तों में हमें प्रोग्राम देखने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है. कभी-कभी तो यों भी होता है कि टेलीविजन से आवाज गायब हो जाती है और आप खामोश फिल्मों के दौर में दाखिल हो जाते हैं, सिर्फ पात्रों के क्रियाकलापों से आपको पता लगाना पड़ता है कि कहानी किधर को जा रही है. ऐसे वक्त टेलीविजन के होने के नुक्सान आपके लिए अधिक सुस्पष्ट हो उठते हैं.

आखिर में एक बात और अर्ज करते चलें कि जब से टेलीविजन घर में आया है, हमारे बच्चे बहुत जहीन और होशियार हो गये हैं. यह और बात है कि सालाना इम्तिहान में उनके नंबर कम आने लगे हैं. पहले ये जहीन नहीं थे मगर इम्तिहान में हमेशा अव्वल दर्जे में कामयाब होते थे. अब जहीन बहुत हो गये हैं लेकिन इम्तिहान में तीसरे दर्जे में कामयाब होते हैं. हमने भी अब इस मामले में गौर करना छोड़ दिया है. क्योंकि आज की दुनिया में विशेष योग्यता के साथ कामयाबी की कोई अहमियत नहीं है. असली अहमियत तो आम होशियारी और जहीन होने की है. लिहाजा सब कुछ जानते हुए भी हम घर मे टेलीविजन और अपनी औलाद को एक साथ बरदाश्त किये जा रहे हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलता हुआ घर

बंगा स्टेशन पर पकड़े जाते ही उसने जेब में हैंड ग्रिनेड का पिन खींच लिया. उसके जिस्म के टुकड़े उड़ गये .. कौन था वह लड़का? आखिर क्या थी इस तरह अपना खात्मा करने की वजह?

□ तरसेम गुजराल

जन्म: 10 अप्रैल, 1950
प्रमुख कृतियां: 'जलता हुआ गुलाब' (उपन्यास) 'खुला आकाश', 'आजाद गुलाम', 'पंजाबी कहानी: रचना और परिवेश' (संपादन व अनुवाद)
सम्मान: 'प्रेमचंदोत्तर कहानी का वस्तुपरक मूल्यांकन' पर पी.एच.डी. लेने पर 'नवरंग' द्वारा सम्मानित. 'भाषा विभाग: पंजाब' की ओर से सर्वश्रेष्ठ निबंध लेखन पर पुरस्कृत तथा उपन्यास लेखन के लिए 'प्रेमचंद महेश सम्मान' प्राप्त.
संपर्क: डब्ल्यू जी-42, इस्लाम गंज, जालंधर.

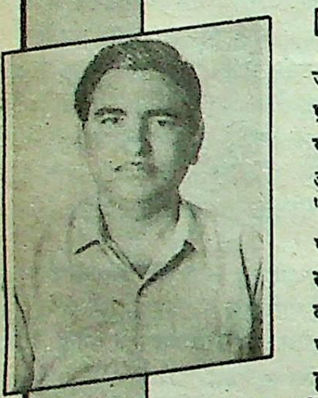

सुरजन सिंह की आंखों में धुआं-सा भरने लगा. दोनों कंधों पर जैसे मनों बोझ लद गया हो और पांव संभल न पा रहे हों. दिसंबर की ठंड के बावजूद जिस्म पसीने से तरबतर हो गया. लरजती हुई नजर उसने कमरे में डाली. पीले पर्दों के सिवा कुछ नहीं था. चीजें धुंधली होकर गडमड हो रही थीं. उसने बंती को आवाज देनी चाही परंतु आवाज अर्राती-सी रह गयी. उसे लगा जैसे चोर उसकी जिंदगी भर की कमाई लूटकर जा रहे हों. वह जाग रहा हो और दहशत से किसी को सहायता के लिए आवाज तक न दे पा रहा हो. उसे इसमें इसकी जरा खनक तक नहीं लग रही थी कि वह सुरजन सिंह है जिसके नाम से शहर के तमाम नामी-गिरामी गुंडे, चाकूबाज तक कांप उठते हैं, जब बिलकुल बेहरमी से वह धुनाई करता था, वह चर्चा का विषय था. छोटे-मोटे चोर तो उसके दो थप्पड़ न सह पाते और सब कुछ उगलने लगते. माल बरामद करवाना उसके लिए बायें हाथ का नहीं, बायें हाथ की तर्जनी का काम था.

बीस साल की नौकरी में उसने क्या-क्या नहीं किया... जिसको चाहा बचाया, जिसको चाहा फंसाया. केस तैयार करवाने, झूठे गवाह भुगताने में उसे कभी कोई जटिलता पेश नहीं आयी. गवाह को पेश होने से पहले बयान पढ़वाते वक्त वह आंखें तरेर देता. क्या मजाल, गवाह इधर-उधर बोल जाये. जज के कमरे से निकलते ही न्यायालय के प्रांगण में वह एक थप्पड़ जड़ देता तो गवाह को दिन के तारे, उडनतश्तरियां सब दीखने लगते.

तहकीकात करते वक्त वह मिनटों में किस्से का रहस्य भांप लेता और फिर कसूरवार से या तो पूरा लगान वसूलता या घसीटकर थाने ले जाता और आदमी के अगले-पिछले भुला देता.

इन पिछले कुछ वर्षों में तो छात्रों, मजदूरों और अन्य कर्मचारियों के जलूसों को तितर-बितर करने की उसे महारत हासिल हो गयी थी. पलों में वह समझ जाता उसके ऊपर के अफसर साहिबान क्या चाहते हैं. लाठी चलाने, आंसू गैस छोड़ने और गोलियां चलाने की वारदातों में उसने अच्छी दक्षता का प्रदर्शन किया था. वह जान गया था कि कितना कुछ भी हो जाये, कोई कुछ भी नहीं उखाड़ पाता. ज्यादा से ज्यादा शोर मचने पर एक कमेटी ही बिठा दी जाती है जिसकी रिपोर्ट्स या तो आती नहीं, आती हों तो उनमें कोई दम नहीं रहता. मजदूरों की उस हड़ताल में जब उसने सेठ गोपीचंद के कहने पर कुछ दबंग आदमियों को पकड़कर क्रालिंग करवायी थी तो काफी शोर मचा था, पर कुछ नहीं बिगड़ा था. उसने तो पहले दिन ही खुलेआम कह दिया था, "...तंक जोर लगा लें, कुछ नहीं होनेवाला! सेठ का अच्छा असर-रसूख है. अखबारों में उठा एक धूल का ववंडर है, सब जरा देर में बैठ जायेगा."

वह तो पहली बार नर्स के मामले में गच्चा खा गया. राम औतार एम.एल.ए. परसुराम के साडू भाई हैं. बड़े आदमी हैं. गर्ल्स होस्टल में कभी-कभार आना-जाना लगा रहता है. इसका मतलब यह तो नहीं कि कोई मामूली नर्स उनके दोस्त के सामने उन्हें अपमानित कर दे और धमकी देने लगे कि आगे से अगर उन्होंने उधर कदम रखा तो उन्हें भुगतना पड़ेगा. और उसी शाम को एक दावत में राम औतार उसे और उसके अफसर को घेरकर बैठ गया, "सरकार अपनी हो और इस तरह दो टके की छोकरियां पगड़ी उछाल दें, गर्ल्स होस्टल में आने-जाने पर पाबंदी लगाती फिरें और धमकियां देती फिरें, ऐसी सीनाजोरी भला कहां बरदाश्त की जायेगी! ऐसी धमकियों से दब गये तो चल चुका सब! बेइज्जत होते रहें और दुबककर बैठ जाते रहें... तुम लोगों के रहते... यह लानत सिर्फ मुझ पर नहीं बरसी, तुम्हारे और तुम्हारे आदमियों पर बरसी है... इस खाकी वर्दी पर बरसी है!.... वह छोकरी होस्टल में लीड़री झाड़ती फिरे... पालिटिक्स करती फिरे... उसकी मां की... पंख कतर दो चिड़िया के... बहुत उड़ने लगी है! सुनते हो... मेरा वहां आना-जाना उससे इजाजत लेकर होगा... उस दो टके की छोकरी से... वह होती कौन है बकवास करनेवाली...?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम औतार का गुस्सा किसी तरह कम नहीं हो रहा था.

दूसरे दिन सुरजन सिंह ने लड़की को चौकी में बुलवा लिया. उसका इरादा था कि उसे समझा देगा या डांट धमका देगा—तुम्हें क्या पड़ी है इस आंधी में कूदने की! अपना मस्त रहो कैरियर बनाओ. जिस लड़की के साथ जो होता है, भुगत लेगी. हां, उस पर कोई आंख उठाकर भी देखे तो बता दे. दूसरों के होम में अपने हाथ नहीं जलाते फिरते. जब अपना पल्लू बचाना ही प्रतिकूल हो रहा है... इस सब में बहुत चक्करबाजी है. वह कहां उलझती फिरेगी, उसका नौकरी का सवाल है... वगैरा-वगैरा.

वह एक सांवली-सी लंबे चेहरेवाली लड़की थी. बनाव सिंगार के प्रति थोड़ी उदासीन रहते हुए भी आकर्षक लग रही थी लेकिन उसके चेहरे पर मृदुता एकदम गायब थी. उसकी जगह उसके चेहरे पर बदबू में से गुजरने और परेशान किये जाने का भाव था. उस पर उस डर का कोई निशान तक नहीं था जो पुलिस चौकी में आते हुए एक औरत लड़की के चेहरे पर होना चाहिए.

सुरजन सिंह को उस लड़की से इस व्यवहार की कतई उम्मीद नहीं थी बल्कि उसके सोचे से सब कुछ उलट हो रहा था. आते ही उस लड़की ने सवाल किया, "मैं जानना चाहती हूं मुझे यहां क्यों बुलवाया गया है? देश के जिस अमन चैन के लिए आप तैनात हैं, उसमें मैंने कौन-सा खलल डाला है?"

वह समझ गया था कि लड़की साधारण नहीं है, जितना उसने समझा था, और लड़की का एक-एक शब्द गुस्से और नफरत की आग में झुलसा हुआ था.

"तुम शायद यह नहीं जानती कि तुम क्या और कहां बोल रही हो!"

"मैं खूब अच्छी तरह जानती हूं कि मैं सही बोल रही हूं और घटिया लोगों के सामने दुम हिलाते रहनेवालों के सामने बोल रही हूं."

तभी सुरजन सिंह से मिलने मलकीत आ गया. उसे मलकीत के साथ जाना था. उसने चंदर को बुलवाकर लड़की का ध्यान रखने के लिए कहा और कहा कि वह थोड़ी देर में लौट आयेगा तब तक इसका दिमाग भी ठंडा हो जायेगा. अगर ज्यादा चिल्लपों मचाये तो मामूली-सी डोज दे देना. चंदर ने 'आप जरा भी चिंता न करें' की सूरत में सिर हिलाया.

मलकीत के साथ काम निपटाकर लौटते वक्त उसने एक बोतल ले ली और एक रेस्तरां में बैठकर पीते रहे और गपशप करते रहे इस सबमें तीन-चार घंटे गुजर गये.

उसके चौकी में लौटने पर चंदर ने बताया कि लड़की अंदर कमरे में है. वह जाना चाहती थी लेकिन उसे जाने नहीं दिया गया. ज्यादा प्रतिवाद करने पर उसे एक थप्पड़ मारा गया है.

सुरजन सिंह दूसरे कमरे में गया. लड़की के बाल बिखरे से थे. चेहरे पर अपमान और क्षोभ का भाव था और आंखों में जैसे चिंगारियां दरक रही हों.

"इस सबका क्या मतलब है आखिर? मुझे क्यों परेशान किया जा रहा है? किस बात के लिए मुजरिम-सा सलूक किया जा रहा है?"

सुरजन सिंह ने बताया कि असली वजह क्या थी और कहा कि वह अपनी निपटाये, उसे दूसरी लड़कियों की क्या पड़ी है? उसे आखिर लीडरी करने से क्या मिलने वाला है सिवाय परेशानियों के.

लेकिन लड़की तो जैसे फट पड़ी, "आप लोग इस हद तक घटिया हो चुके हैं जिसके बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता. दरअसल गुंडागर्दी को तरजीह देनेवाले आप लोग ही हैं—लेकिन इस पूरी साजिश का नकाब उलट दिया जायेगा और हमारे साथी अब चुप बैठने वाले नहीं हैं."

वह सब कुछ जो बाद में अखबारों में छपा है कि सुरजन सिंह ने शराब के नशे में नर्स की अस्मत पर हमला किया और उसका ब्लाऊज फाड़ डाला, पूरी सच्चाई नहीं है. यह ठीक है कि सुरजन सिंह के पेट में आधी बोतल से ज्यादा दारू तल्खी पैदा कर रही थी परंतु इतनी में वह होश तो

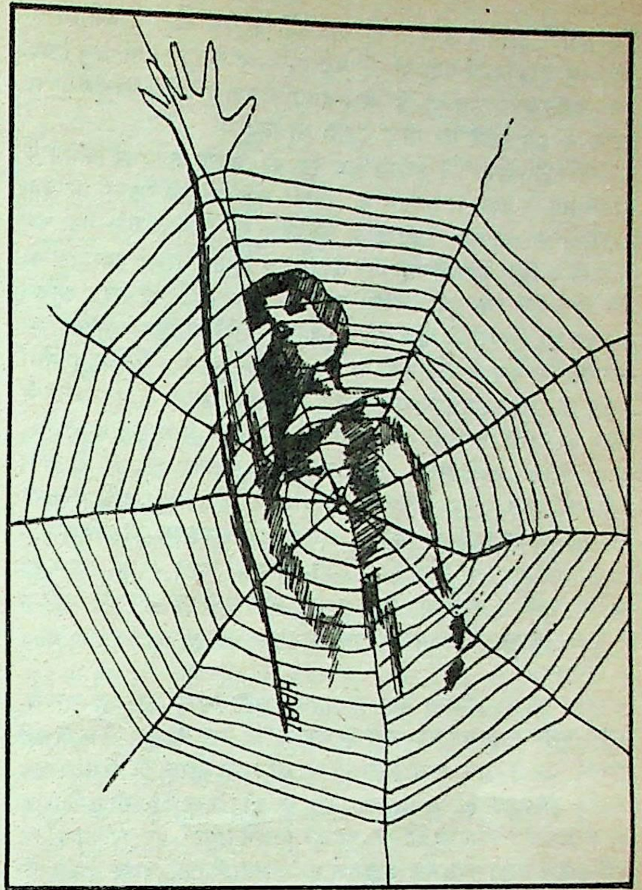

नहीं खो देता और अगर वह होश नहीं खोता-तो यह कहना इतना वाजिब नहीं है कि शराब के नशे में उसने थाने में एक लड़की पर हमला किया. क्योंकि वह इस घटना, जिसे वह पुलिस की नौकरी में किसी ज्यादा बड़ी घटना का दर्जा भी नहीं देता, के बाद भी अपने अफसर से यस सर के लहजे में बातें करता रहा है.

जबकि वास्तविकता यह है कि सुरजन सिंह से यह बरदाश्त नहीं हो रहा था कि एक अकेली जिसे थाने में घंटों बैठना पड़ा हो और जो किसी पुलिस कर्मी से एकाध थप्पड़ भी खा चुकी हो, इस तरह दबंग लहजे में बातचीत करे और उसके चेहरे पर खौफ की जरा छाया तक न हो, वह यही चीज पैदा करना चाहता था. यही वजह है कि जब वह लड़की उर्फ नर्स टस से मस होने को तैयार नहीं थी और चुनौती भरे लहजे में बढ़-चढ़कर बात कर रही थी, उसने बर्र से उसका ब्लाऊज खींच डाला उस वक्त उसका इरादा उसे नंगा करने का उतना नहीं था जितना दहशत पैदा करने का.

उस लड़की के होस्टल की चार साथिनें उसकी तलाश में चाय वाले छोकरे के बताये जाने पर कि उसने सिपाही के साथ जाते देखा था, वहां पहुंच गयीं.

सुरजन सिंह को लड़की को डर से पीले पत्ते की तरह कांपती देखने की जिद उस दिन निलंबित करनी पड़ी.

सिर्फ होस्टल की लड़कियों में नहीं, दूसरे कालेजों के लड़कों में भी इस घटना को लेकर गुस्से की एक लहर व्याप्त हो गयी. उन्होंने जिलाधीश के दफ्तर के सामने रैली की. कुछ कार्यालयों के कर्मचारियों ने इसके विरोध में एक दिन का सामूहिक अवकाश किया. अखबारों में इस खबर को खूब उछाला गया.

सुरजन सिंह को जिस दिन सस्पेंशन के आर्डर सर्व किये गये, उस दिन तक उसने इस घटना को बिलकुल महत्वहीन समझा था. उसे अपने ऊंचे अधिकारियों पर बहुत गुस्सा आया था जिन्होंने अब पूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिम्मेदारी उस पर डाल दी थी. यहां तक कि राम औतार, जिसके लिए यह सब कुछ किया गया था, भी बदला-बदला लग रहा था. उसे इसके लिए बहुत बुरा लगा था. उसका वह बुरा लगना या दु:खी महसूस करना आज के इस क्षोभ का सौवां दरजा भी नहीं था.

बिंदर की डायरी ने उसकी अब तक की जिंदगी के सामने कितने ही सवालिया निशान लगा दिये थे. उसकी अब तक की जिंदगी का क्या मतलब था आखिर? जिंदगी के पैंतालीस वर्ष जिसका एक-एक पल आदमी के लिए बेशकीमती हीरे जैसा होता है, उसके लिए क्या राख का ढेर था? वह क्या पूरी जिंदगी एक अंधे चमगादड़ की तरह खंडित इमारत की दीवारों के साथ सिर टकराता रहा है? ऐसा किस साजिश का हिप्नोटिज्म उस पर सवार था कि वह पूरा वक्त खासकर पिछले पच्चीस बरस जो उसने इस नौकरी में गुजारे हैं, अपनी जिंदगी के मतलब जैसी चीज पर कभी सोच भी नहीं पाया कि उसे अपने आसपास अपने कद, अपने कदम, अपने सफर, यहां तक कि अपने रुतबे तक की भी होश नहीं रही. बस पकड़ना, पीटना, कबूलवाना, छोड़ देना, छाती में किसी चिंगारी को चमकने का मौका तक न देना और शराब की तल्खियों में खलूस को जहर में बुझाते रहने की कोशिश करते रहना. हर वक्त घटिया गालियां, बदबूदार माहौल और खोखले ठहाकों की प्रतिध्वनियों में गुजार अफसरों का हुक्म बजाना और सूअर की तरह पड़े रहना, बदबू में लथपथ.

उस नर्स से सामना होने से पहले उसने लोगों को भेड़-बकरी, भुनगे-बनने से ज्यादा बड़ा दर्जा या महत्व दिये जाने की जरूरत कभी नहीं समझी. उसमें जाने सच्चाई की लौ की कौन-सी चमक थी जिसका सेंक उसकी उंगलियों को पहली बार लगा था और दिल में किसी ऐसी फांस की तरह उतर गया था कि रह-रहकर सालने लगता. वह पूरा-पूरा दिन उसे नजर आता परंतु वह चाहे पल भर के लिए ही सही, चमक उठता और आज बिंदर की डायरी के एक-एक लफ्ज ने उसमें फिर बिजलियां भर दी थीं.

सुरजन सिंह सोचा करता था कि जिंदगी में जो कुछ उसका बनना-बनाना था, बन चुका, लेकिन बिंदर जरूर बड़ा आदमी बने. बिंदर के लिए जो कुछ वह जुटा सकता था, उसने हर तरह से जुटाया.

एक तरह से उसका हासिल बिंदर ही था और वही उसके हाथ से निकल गया था. वह जैसे हाथ से उड़े परिंदे को अब टकटकी बांधकर देख पाने में असमर्थ हो गया हो और अब उन हाथों को घूर रहा हो जिनसे वह निकल गया हो और उसकी उंगलियों में उसकी नर्म छटपटाहट का स्पर्श हो... फांस की तरह यह बात उसके गले में अटकी हुई थी. किसी भी तरह नीचे उतर नहीं पा रही थी कि वही बिंदर उसे यानि अपने बाप को किसी अच्छे आदमी का दर्जा नहीं देता रहा. अच्छा आदमी तो दरकिनार, वह उसे आदमी से बदतर समझता रहा है. यह सब कुछ कोई दूसरा अपनी जुबान से कहता तो वह शायद यकीन नहीं करता या शायद उसका मुंह तोड़ देता परंतु यह सब बिंदर ने अपने हाथों से कलमबद्ध किया हुआ था और हर बात दस्तावेज के रूप में उसके रूबरू थी.

बिंदर की हरकतें उसे अजीब लगती रही थीं. बिंदर की नये कपड़ों नयी चीजों, खेल-तमाशों के प्रति उदासीनता ने बंती को भी घायल कर दिया था. रात में जाग-जागकर उसके कमरे की ओर झांकती और दरार से आती पीली रोशनी के बारे को देखती और बुदबुदाती... अभी तक पढ़ रहा है. सो क्यों नहीं जाता. तभी तो सेहत नहीं बनती. हड्डियां निकली हुई हैं इस उम्र में. यह उम्र तो हंसने-गाने-चहकने की है... एक यह है कि हंसता हुआ देखने को तरसते रह जाते हैं.

एक बार जाड़े के शुरू में बंती ने जिद करके उसके लिए तीन सौ रुपया अलग निकलवा लिया था. कालेज जाता है. अच्छे लोगों में उठता-बैठता है... उसके पास काम का कोई गर्म कपड़ा नहीं है. एक ही स्वैटर है पिछले साल की... आप पैसे दे दें अपनी मर्जी का सिलवा लेगा... परंतु जनाब मार्कीट जाकर मां के लिए गर्म शाल ले आये और बाकी का रुपया किताबों में खर्च कर डाला.

उसकी मां की चिंताओं और बुड़बुड़ाहटों में उसे यह तो पता चलता रहा कि वह दूसरे लड़कों से थोड़ा अलग है परंतु वह ऐसा कभी नहीं सोच पाया कि उसके भीतर उसे लेकर इतनी मारकाट मची होगी और जो कुछ आज उसकी डायरी के आइने में अपना एक्सरे फोटो देखा है इसकी तो वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था. उसके पास बिंदर के साथ बातचीत कर कुछ जान पाने का कभी समय ही नहीं रहा. सुबह जब आंख खुलती तो बिंदर जा चुका होता. रात आमतौर पर देर-देर से आता, आता भी तो पी हुई होती और उस हालत में वह उससे बातचीत करने से गुरेज करता. मगर कभी सामना हुआ और बातचीत करने के लिए सोचा भी तो यह सोचकर टाल गया कि अपने आप ठीक हो जायेगा. परंतु ठीक क्या होना था, सब कुछ गलत होता चला गया. और यह उसकी एक खामखयाली से कम नहीं था कि उससे महज बातचीत करने से सब कुछ सुधर जाता. इस सब के लिए जो कुछ दूसरी चीजों पर मुनस्सर करता था वे अच्छी और हक में होने की बजाय कहीं ज्यादा गलत और विरूप थीं. इतनी गलत और बेहूदा होते हुए भी वे सतही नजर से ठीक-ठाक होने का आभास देने लगती थीं.

सुरजन सिंह की नजर कमरे के पीले पर्दों पर टिक गयी... हमारे घर के दरवाजों और खिड़कियों पर मोटे पीले पर्दे गिरे रहते हैं. मुझे इन पर्दों की रंगत लपटों की रंगत लगती है... ऐसा लगता है जैसे पूरे घर को अपनी लपटों में घेर रखा है. और मेरे घर का मुखिया मेरा पिता आग से बचाव की कोई सूरत पैदा करने की बजाय शराब के नशे में धुत पड़ा है—और यह हालत सिर्फ मेरे घर की नहीं है.''

सुरजन सिंह की हालत उस मरीज की थी जिसने थोड़ा वक्त पहले जहर खा लिया था. जहर की मात्रा इतनी ज्यादा नहीं कि उसको मौत की झोली में डाल दे और उस पार लौटाने के लिए संघर्ष चल रहा हो परंतु जहर से उसका पूरा जिस्म जल रहा हो.

डायरी का पन्ना उसके सामने खुला था...

''मेरे बाप ने अपनी जिंदगी में सिर्फ नौकरी की है... नौकरी के अलावा उसकी जिंदगी में किसी सामाजिक, सांस्कृतिक काम की जगह नहीं है. उसके बाद का वक्त उसका नौकरी के दौरान या नौकरी के प्रभाव में पी हुई शराब में और पीने में तथा पीकर घर में कोहराम मचाने में गुजरता है.''

सुरजन सिंह के सामने डायरी के एक-एक वर्क से बिंदर की नये सिरे से पहचान हो रही थी. एक-एक शब्द जैसे दहक रहा था: ''वे अगर ऐसा सोचते हैं कि पढ़ाई खत्म करने पर डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रशासन-अधिकारी या व्यापारी बनूंगा. डेढ़ दो लाख रुपया दहेज लेने वाला शो-पीस का मॉडल बनूंगा और गुदगुदी पत्नी के साथ कोठी कार और लंबी रकमों की सुविधाएं अर्जित करूंगा तो वे गलत सोचते हैं. मैं उस पीढ़ी में हूं जिसे पूरा जीवन होम कर देना है आनेवाली पीढ़ी की दासता के जंजाल से मुक्ति और सुख-सुविधा के लिए.''

अगले एक सफे पर लिखा था—

''मेरा बाप दलाल साम्राज्य की गाड़ी खींचने वाला रेंडियर है. इसने अंधे हुक्म का पालन करने के लिए कई घरों को उजाड़ दिया है. अगर मुझे कभी पार्टी से इसे उड़ा देने का हुक्म मिला तो संशोधनवादी कहलाने की जगह मैं इसे गोली से उड़ा दूंगा.''

सुरजन सिंह को इस बात से बड़ी हैरानी हुई कि उसके बेटे के सामने पार्टी कार्यक्रम के आगे तमाम रिश्ते फीके हैं. यहां तक कि पार्टी के हुक्म के सामने वह अपने बाप की जान की भी जरा परवाह नहीं करता. उसे और उसकी पत्नी को यह बात तब भी समझ नहीं आयी थी जब उसकी पत्नी और बिंदर की मां ने बिंदर की किताबों की अलमारी में देशी पिस्तौल देखी थी.

वह तो उस दिन जूतों से बात करना चाहता था लेकिन बिंदर की मां ने कहा कि किसी दोस्त की होगी. वापस कर देगा. यह दिन-रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़नेवाला मासूम-सा लड़का ऐसा-वैसा दीखता है? उसे भी कहां पता था कि विंदर के भीतर क्या चल रहा था.

एक दिन विंदर चुपचाप घर से चला गया. वे दिन सुरजन सिंह की सख्त ड्यूटी के थे. देश भर में बहुत जगहों पर लड़कों ने कुहराम मचा रखा था. अब पंजाब में भी वही हवा लगती जा रही थी. सत्ता को गाजर-मूली समझनेवाले इन लड़कों के लिए सख्त आर्डर थे लेकिन वे बांके जवान मौत को हथेली पर लिये फिरते थे. सुरजन सिंह को यह समझ न आता कि इतने पढ़े-लिखों की मत कैसे मारी गयी है. कई मामलों में लड़कियां भी बड़ी बहादुरी से काम कर रही थीं. मल्कीत कहता—तितलियां अब तोप से टक्कर लेंगी.

सुरजन सिंह रात अढ़ाई बजे लौटा. विंदर की मां रो रही थी. उसे आस थी कि कहीं दोस्तों के साथ फिल्म देखने निकला होगा, आखिरी शो. लेकिन वह तो दुपहर का घर से निकला हुआ था. इतनी देर लगातार वह घर से कभी बाहर नहीं रहा था. सुरजन सिंह ने फिर वर्दी पहन ली और बाहर निकल पड़ा. विंदर कहां जा सकता है? कहीं कोई दुर्घटना? सिविल अस्पताल में पता करवाया. गलत शराब पीकर मरा हुआ एक मजदूर मिला. उसकी सोहबत किन लोगों में थी? सुरजन सिंह अपनी नौकरी-चाकरी और अफसरों की बेगारी में ही इतना डूबा हुआ रहता कि उसकी अपने पुत्र, अपने इकलौते पुत्र के बारे में जानकारी बहुत कम थी... घर में किताबों की अलमारी में पिस्तौल मिलने के दिन वह कुछ हिला जरूर था लेकिन फिर वह अपनी नौकरी की उथल-पुथल में इतना व्यस्त रहा कि इस पर ज्यादा सोचने की फुर्सत ही नहीं रही.

विंदर की मां बंती भी उसके दोस्तों के बारे में ज्यादा नहीं जानती थी. वह सिर्फ इतना बता रही थी कि जब वह गया उसने वही शाल लपेटी हुई थी जो वह उसके लिए खरीदकर लाया था.

वह पुलिस में था और इसलिए समझता था कि विंदर को एक-दो दिन में ढूंढ लेगा लेकिन उसके सभी प्रयास अधूरे और विफल होते रहे. विंदर की मां को दौरे पड़ने लगे. बेहोशी कितनी देर न टूटती. वह नाक दबाकर पानी मुंह में डालता. मुश्किल से होश आता. वह उसे दोष देती कि पुलिस में रहकर भी वह विंदर को नहीं ढूंढ रहा. दस दिन तक उसने विंदर के रास्तों के पत्ते तक को हिलता नहीं देखा था. वे दिन बड़े उथल-पुथल के दिन थे. पूरे पंजाब में भी जैसे आफत टूट पड़ी हो. कई नौजवान पुलिस मुकाबलों में मारे दिखाये जा रहे थे.

एक दिन सुनने में आया कि बंगा स्टेशन पर एक लड़का पकड़ा गया. पकड़े जाने पर उसने जेब में हैंड ग्रिनेट का पिन खींच लिया. उसके जिस्म के टुकड़े उड़ गये.

फिर विंदर की मां का धैर्य छूटने लगा. उसे ज्यादा तकलीफ इस बात की थी कि पुलिस में रहकर भी उसका पति उसके बेटे की कोई खोज-खबर नहीं पा रहा. रो-रोकर वह बेहाल हो जाती. उसके रोने के सामने सुरजन सिंह खुद को बड़ा असहाय और कमजोर-सा समझता. इन दिनों उसे लगता कि वह किसी प्राणरहित पुतले की तरह चल-फिर रहा है.

बंगा में एक लड़के के पकड़े जाने और उसके आत्मघाती प्रहार के दो दिन बाद संध्या के समय एक लड़की सुरजन सिंह के घर में दाखिल हुई. पहले उसने कभी भी संध्या का वक्त घर में नहीं गुजारा था लेकिन विंदर के चले जाने के बाद वह ज्यादातर पत्नी के पास बने रहना चाहता. उसका कुछ पता नहीं था, कब चक्कर खाकर गिर पड़े. डाक्टर को दिखाया था. कहता था मर्ज नहीं है, सदमा है. इसका इलाज सदमे के बाहर निकलना ही है. प्रकाश के घेरे में आते ही सुरजन सिंह पहचान गया. कैसे नहीं पहचानता भला. वही नर्स थी जिसका ब्लाऊज चर्र से फाड़ दिया था सुरजन सिंह ने. वही बेखौफ आंखें. वही जिसके कारण वह सस्पैंड हो गया था.

"तुम!" उसके मुंह से निकला.

"मुझे पता नहीं था कि आप विंदर के पिता हैं."

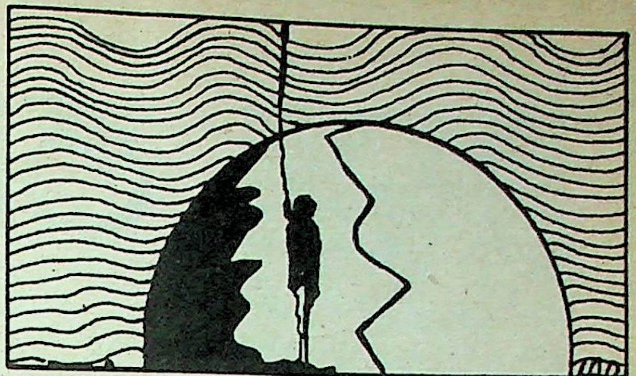

"विंदर कहां है? कहां है विंदर?"

विंदर का नाम सुनकर उसकी मां उठकर बैठ गयी. उसकी निस्तेज आंखें जैसे चमक उठी हों.

"विंदर अब इस दुनिया में नहीं है."

विंदर की मां के भीतर से भोथरी छुरी से काटने जैसा रुदन निकला और वह बेहोश हो गयी. लड़की ने हाथ का पैकेट कुर्सी पर रखा. सुरजन सिंह को अभी कुछ भी समझ आ पाता, इससे पहले ही लड़की पानी का गिलास लेकर मां के चेहरे पर पानी के छींटे मार रही थी. उसे कुछ भी बताना नहीं पड़ा कि गिलास कहां है और पानी घर में किस जगह मिलेगा. बेहोशी नहीं टूटने पर उसने मां की नाक दबायी. तब जाकर वे उठीं. उठते ही फिर रोने लगीं. हौसला देने की भाषा लड़की के पास भी नहीं थी. वह पैकेट उठाकर बरामदे में आ गयी और विंदर की तस्वीर देखने लगी. अत्यंत पीड़ा ने अचानक उसे मथना शुरू कर दिया. देश की मिट्टी को पैशाचिक कदमों से मुक्ति दिलाने के लिए कितनी माओं ने अपने बेटे और कितनों ने अपने कुर्बान कर दिये.

सुरजन सिंह चार-पांच मिनट बाद आया, "मुझे नहीं पता था कि तुम विंदर की साथी हो." साथी कहने से पहले वह दोस्त कहने लगा था लेकिन फिर उसे खयाल आया कि विंदर लोग आपस में साथी का संबोधन देते होंगे.

"मुझे भी नहीं पता था कि आप विंदर के पापा हैं." लड़की ने कुछ कड़वाहट से कहा.

"विंदर कैसे..."

"उसे आपके कुशल विभाग ने पकड़ लिया था लेकिन हमारा साथी उनकी पकड़ में आकर भी पकड़ा नहीं जा सका. बंगा स्टेशन पर उसने अपनी जेब में..."

"तो क्या बंगा स्टेशन पर दो दिन पहले..."

"जी हां... वह जांबाज बहादुर साथी अमर शहीद विंदर ही था."

सुरजन सिंह के सामने पूरी जमीन लट्टू की तरह घूम रही थी. इसे किसी भी वक्त एक खरबूजे की तरह फोड़ा जा सकता है. उसे लगा.

"विंदर की यह दो चीजें मेरे पास थीं, जो मैं आपको पहुंचने आयी हूं. एक उसकी शाल और दूसरी डायरी."

सुरजन सिंह को उसकी आवाज दूर बहुत दूर से आती लग रही थी. उसने जाने कैसे साहस बटोरकर कहा, "तुम कुछ देर रुक जाती."

"जी नहीं. रुकना हमारे बस का नहीं. चील की तरह आपके विभाग की निगाहें हमारा पीछा करती हैं हर वक्त..."

लड़की हवा की तरह आयी और आंधी की तरह चली गयी.

सुरजन सिंह शुक्र मना रहा था कि विंदर की लाश को लावारिस लाश घोषित कर जला देने की बात उसकी पत्नी को नहीं मालूम.

वह उसके कमरे में जाने के लिए आगे बढ़ा तो बुत की तरह खड़ी पत्नी को सामने पाया.

उसने उसके कंधों पर हाथ रख दिया. पता नहीं सहारा देने के लिए या पाने के लिए.

घर के पीले पर्दे अब उसे आग की तरह लग रहे थे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

पिछले अंकों में आप हरि, रामबरन, परकाश, सहदेव ठाकुर आदि आदि से मिल चुके हैं. इन सबकी अपनी-अपनी समस्याएं तो हैं पर एक समस्या साझी भी है—गोरे मालिकों और उनके सरदारों के अत्याचार से जूझने की समस्या. अब गास्तों की ही बात लें. पांच साल के इस बच्चे के साथ जो दुर्घटना घटी थी उसकी जिम्मेदारी मालिकों की ही थी पर वे कहां तैयार थे उसे निभाने के लिए. काफी सोच समझकर हरि और उसके साथियों ने तय किया कि मजदूर संघ का गठन किया जाये. अब पढ़िये आगे की कथा

सप्ताह बाद उस बरसाती शनिवार को जब आकाश पर काली बदलियां तो थीं पर बारिश शुरू नहीं हुई थी, परकाश काटेज पहुंच आया था. उसका खयाल था कि शनिवार होने के कारण हरि दोपहर में उसे घर पर मिल जायेगा. जब उसे मूसा भी घर पर नहीं मिला तो वह हरि के घर लौट आया था. दो घंटे पहले वह पहुंचा था. इन दो घंटों में वह हरि की उस मोटी-सी बही को लेकर बैठ गया था जिसमें हरि अपने कभी-कभार के कुछ विचारों को लिखता रहा था. परकाश को उन विचारों से कहीं अधिक अच्छे लगे वे सारे रेखाचित्र जिन्हें व्यंग्य शैली में हरि ने बीच-बीच के पन्नों में बनाया था. लगभग सभी चित्र खेतों और कारखानों की उन भिन्न-भिन्न स्थितियों-परिस्थितियों का अंकन लिये हुए थे जिन्हें हरि वर्षों से देखता आ रहा था. सभी चित्र गन्ने के खेतों में मालिकों और सरदारों के जुल्मों की कहानी सुनाते प्रतीत हो रहे थे. कारखानों के चित्रों में मालिकों को पैसे बटोरते और मजूदरों को भूखे मरते दिखाया गया था. अब साढ़े चार बजने को था. इस बीच जोरों की बारिश शुरू हो गयी थी. हरि की मां ने उससे खाने का अनुरोध किया था पर वह यह कहकर टाल गया था कि घर से खाकर निकला था. अलबत्ता तब से अब तक उसने चाय दो बार पी ली थी. हरि की मां ने कहा था कि शायद वर्षा के कारण हरि कहीं रुक गया होगा. परकाश को हरि के इतनी देर तक घर न लौटने के कारण का अनुमान हो चला था.

और जब कोई दूसरे आध घंटे बाद गोनी की घोघी ओढ़ हरि मूनसामी के साथ घर के भीतर दाखिल हुआ तो अपने उसी अनुमान के आधार पर परकाश ने उससे पूछा, "पांच बजने को है, अभी तक काम कर रहे थे क्या?"

हरि ने सिर के घोघी उतारकर देवी को थमाते हुए बस हामी भर दी. अपने अनुमान को सही मानकर परकाश ने आगे पूछा, "कोर्वे कर रहे थे?"

"हां, आप बहुत पहले से आये हैं क्या?"

"आखिर यह कोर्वे का सिलसिला कभी रुकने का नहीं?"

"कैसे रुकेगा?"

देवी के द्वारा ले आये कपड़े को उसने मूनसामी के हाथों थमा दिया. मूनसामी ने उस कपड़े से अपने ऊपर के पानी को पोंछते हुए हरि बेबसी की-सी आवाज में बोला, "अगर दो मजदूर कोर्वे के लिए इनकार करने का साहस कर भी जायें तो उससे क्या हो जायेगा! बाकी तो सभी उसे नियति और कानून माने जिंदगी भर करते रहने को तैयार होंगे."

देवी दो कटोरों में गर्म चाय ले आयी. पहले कटोरे को उसने मूनसामी के हाथ पर रखा और दूसरे को अपने भाई के हाथ. परकाश से जब पूछा तो उसने यह कहकर मना कर दिया कि दो बार पी चुका था. जब परकाश ने चाय पी ली, हरि ने कहा, "यह कोर्वे खेतों के मजदूरों को चूसने लूटने की बहुत बड़ी जमीदारीं साजिश है."

"हमें तो सप्ताह भर के काम के बाद इन मालिकों और सरदारों के लिए चार-पांच घंटे ही मुफ्त में काम करना पड़ता है, पर सुना है कि दूसरी कोठियों में तो रविवार को भी मजूदरों से कोर्वे करवाया जाता है. आखिर यह कोर्वे कौन-सा शब्द है परकाश भैया?"

"यह तो शब्द से कहीं ज्यादा पूंजीपतियों का अपना कानून है. फ्रेंच कोश में इसका अर्थ कुछ है और मालिकों की अपनी किताब में कुछ और. वे इसे मजदूरों का फर्ज और फर्मबरदारी मानते हैं. उनका यह दावा है कि चूंकि उनकी कृपा से मजूदरों को नौकरी करके पैसे प्राप्त होते हैं इसलिए वे मजदूरों के अन्नदाता हैं और कोर्वे अपने अन्नदाता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करना होता है."

'छह दिन के थके-मांदे होने पर भी हमें विवश होकर उनके लिए मुफ्त में काम करना पड़ता है. ईख काटने लादने से लेकर उनकी गाय-बकरियों के लिए चारा-जुटाकर बाड़े तक छोड़ना पड़ता है."

"और तुम इस तरह के शोषण करनेवालों तथा अंधा कानून चलानेवालों के साथ होड़ लेने को सोचते हो!"

"अब तो सिर्फ सोचना ही नहीं है, बल्कि कर बैठना है."

"याने कि..."

"हमने अपना मजदूर संघ बना लिया है."

"मजदूर संघ बना लिया? क्या मतलब?"

"हम दो-तीन दिनों में इसका पंजीकरण भी करने जा रहे हैं."

"कितने लोग..."

"हमने आठ सदस्यों से संघ की नींव डाली थी. अब हमारी बही में पंद्रह नाम हैं."

"पागलों के?"

"नहीं भैया, साहस करके नहीं नहीं कहने वालों के?"

"इस साहस और नहीं का परिणाम?"

"देख लेंगे!"

"और तुम्हारे ये भाई-बहन, तुम्हारी मां, इनका क्या होगा जब तुम्हें नौकरी से निकाल दिया जायेगा! बात मालिकों के कानों तक पहुंचने की देर है, तुम पंद्रह मजदूरों को नौकरी से हटाने में दो मिनट की भी देर नहीं होगी. इस पर सोचा है?"

"हमने यह सोच लिया है कि किसी भी हालत में अब शोषण को बढ़ावा नहीं दे सकते. अपना पूरा हक न पाकर तो खामोश ही रहे अब तक लेकिन उधर की मनमानी और जुल्मों के आगे अब चुप नहीं रहा जा सकता."

चाय पी चुकने के बाद मूनसामी अपनी जगह से उठा. गोनी की घोघी उठायी और बोला, "मैं चलता हूं हरि. कल त्रिओले की ओर जाना है न?"

"हां. तुम घर पर ही रहना. मैं और मूसा उधर ही से निकलेंगे."

घोघी ओढ़कर वह बाहर निकल गया. हरि ने परकाश को बताया, "मूनसामी हमारा सबसे सक्रिय सदस्य है."

बाहर वर्षा और जोर पकड़ चुकी थी. छत दो-तीन जगहों से टपकनी शुरू हो गयी थी. हरि ने एक व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ कहा, "लोग कहते हैं यह पानी नहीं बरस रहा, सोना बरस रहा है. पर यह कोई नहीं बताता कि किसके लिए!"

"तो बही में इन व्यंग्य चित्रों में तुम यही बताना चाहते हो क्या?"

"आपने मेरी बही देखी क्या?"

"तस्वीरें तो तुम बहुत सटीक बना लेते हो पर उनका करोगे क्या?"

"मैं तो बस उन्हें बनाकर अपने भीतर की खीज को दूर करता रहता हूं."

"इनमें तो तुमने किसनसिंह और मदन के बारे में भी तस्वीरें बनायी हैं."

"उनके संघर्षों को दिखाने की कोशिश की है."

"किनको दिखाने की?"

हरि ने इस प्रश्न का उत्तर न देकर बाहर की वर्षा का खयाल करके कहा, "अगर यह सोना इसी तरह बरसता रहा तो आपको यहीं रात बितानी पड़ेगी."

"घर पर लोग चिंतित होंगे."

"वे जानेंगे कि पानी की वजह से आप यहां रह गये. यों भी आपसे आज बहुत सारी बातें करनी है."

वर्षा मूसलाधार होती गयी. बाहर समय से पहले अंधेरा फैल चुका था. कुछ ही देर बाद घर में चिराग जलाने ही पड़े. देवी ले आयी वह मिट्टी के तेल का चिराग. रावेनाल की पतली दीवार के उस पार हरि की मां के बार-बार मना करने पर भी घर के दो सबसे छोटे बच्चे हुड़दंग मचाते रहे. देवी कई बार अपने रसोई के काम को छोड़कर उन्हें चुप रहने की हिदायत दे जाती.

बिजली कड़कने और बादल गरजने के कुछ क्षण, घर के भीतर एक भारी खामोशी के क्षण थे जब बिजली थमी और बादल गरजने बंद हुए तो उस दूसरे भाग से बच्चों की अब तक की सहमी हुई आवाजें फिर जोर पकड़े गयीं. रिस रही छत से पानी की कुछ बूंदें संदूक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर टपकीं जहां चिराग था. हरि ने उस जलते हुए चिराग को उसकी जगह से हटाकर दूसरी जगह पर रख दिया. वक्त से पहले रात हो आयी थी. हरि की मां ने आवाज देकर हरि को बुलाया. हरि जब उसके पास पहुंचा तो उसने दबे हुए स्वर में उससे पूछा, ''क्या पकाना होगा?''

''क्यों? यह तो तुम मुझसे पहली बार पूछ रही हो. जो कुछ पकता रहा है. वही पके. हमसे पूछने की जरूरत कहां से आ गयी?''

''आज घर में पहुना है.''

''क्यों? अच्छा-अच्छा! तो तुम परकाश भैया की बात कर रही हो. लेकिन मां, तुम उसे मेहमान न समझो. वह तो वही खायेंगे जो इस घर में पकेगा.''

''देवी बता गयी है कि भात के साथ सिर्फ मट्टर की दाल होगी. बाहर बारिश है वरना पड़ोस से...''

''पड़ोस से क्या चाहिए, बताओ, मैं मांग लाता हूं.''

''दाल के साथ कोई चटनी तो होनी ही चाहिए.''

''तो?''

''सुग्रीम भाई के यहां इमली और पोदिना मिल जायेंगे.''

''ठीक है, मैं लाये देता हूं. पर क्या देवी उसे इस बरसात में पीस पायेगी?''

''तुम इसकी चिंता मत करो.''

''हरि को अपने बचपन की कई घड़ियां उस कम समय में भी एक-एक करके याद आ गयीं. उस भारी बरसात में जब गोनी की घोघी ओढ़े वह घर से बाहर हुआ तो अतीत की पहली घटना जो बिजली की तरह उसके जेहन में कौंधी, वह थी.... वह अंधेरी रात... उसके बाप की सारी जायदाद के चले जाने के बाद घर में अनाज के खत्म हुए चौथा या पांचवा दिन था. उसकी मां ने उसे एकांत में बुलाकर कहा था. कि वह कहीं से कुछ ले आये ताकि घर के छोटे बच्चे भूख के मारे मरने से बच जायें. एक बार उसकी मां ने अपनी चांदी की हंसुली और बिछिया उसके हाथों में रखकर कहा था कि वह उन जेवरों को रामजी सरदार के यहां गिरवी रखकर कुछ अनाज ले आये. फिर एक दिन जब रसोईघर के चूहे तक उस अभाव से तंग आकर डेरा छोड़ भाग गये थे और घर की जूठन पर पलने वाले कुत्ते भी जब आंगन में आना बंद कर चुके थे तो इसी तरह की बरसाती शाम में हरि को घर से निकलना पड़ा था. उसका सबसे छोटा भाई भूख से चिल्ला-चिल्लाकर अधमरा हो गया था.

''घर के पिछवाड़े में फ्रीआ-पें का जो पेड़ था, उसमें जो बचे हुए फल थे उन्हें हरि की मां उबाल-उबालकर सुबह-शाम अपने बच्चों को खिलाती रहती थी. पर जब वे रोटी फल भी समाप्त हो चुके थे तो एक दो अवसरों पर उसने कच्चे पपीते पकाकर बच्चों के पेट भरे थे.

पड़ोस के तीसरे घर में जाकर हरि को इमली और पोदिने की पत्तियां मिलीं. उन्हें जब रसोई में छोड़कर हरि परकाश के पास पहुंचा तो उसे उस पुस्तक के पन्नों को उलटते-पलतटे पाया जिसे वह अपनी गोद में लिये बैठा था. हरि के बैठ जाने पर उसने अपने हाथ की उस हस्तलिखित पुस्तक को उसकी ओर बढ़ा दिया. हरि ने पुस्तक को अपने हाथ में थाम लिया. उसे पहले भी देख-चुका था इसलिए उसे खोले बिना ही जान गया था कि वह किसनसिंह की पुस्तक थी. प्रकाश ने कहा, ''इस पुस्तक को हम लोग बारी-बारी से संभाले आ रहे हैं. आज से यह जिम्मेवारी तुम्हारी हो जाती है.''

हरि ने कुछ कहा नहीं. पुस्तक को माथे से लगाया फिर उसके पन्नों को पलटकर उन पर सरसरी नजर दौड़ायी. इतना तो वह जानता ही था कि इस देश के मजदूरों की वह पहली पुस्तक थी. चाहे वह एक ही मजदूर के द्वारा लिखी हुई क्यों न थी, पर उसे अब तक के सभी मजदूर अपनी ही पुस्तक मानते आये थे. चांदनी रातों में जब गर्मी की अकुलाहट अपनी पराकाष्ठा पर होती थी तो कई बस्तियों में मजदूर एक दूसरे को रामायण या आल्हा की कहानियों के साथ-साथ किसनसिंह की पुस्तक की उस दर्दनाक कहानी को भी सुनाते थे. परकाश जहां बैठा था, वहां भी छत से बूंदें रह-रहकर टपकने लगीं. हरि ने उन बूंदों को देखकर छत की ओर देख फिर परकाश से थोड़ा-सा पीछे हट जाने का अनुरोध किया. थोड़ा पीछे हटकर परकाश ने मुस्कराते हुए कहा, ''अभी अपने घर में होता तो अब तक सात-आठ जगह बदल गया होता. तभी हरि की मां पीतल के तीन पुराने कटोरों के साथ भीतर आ गयी. खाट और संदूक के आसपास की टपकनेवाली जगहों पर उसने उन पात्रों

घटना-कथा

ईमान

□ नलिन पांडे

एक गांव में डाका पड़ा था. खून-खराबा लूट-पाट... विपक्ष ने इस मामले को नमक मिर्च लगाकर खूब उछाला. विपक्ष के बड़े नेताजी ने दावे के साथ कहा कि डाकुओं द्वारा कुछ लड़कियों के साथ बलात्कार किया गया है. उन्होंने मुख्यमंत्री से इस्तीफे की मांग ऊंचे स्वर में उठायी. मुख्य मंत्रीजी इन खबरों से बड़े उखड़े. वह तुरंत घर में बने तहखाने में डाकुओं के सरदार से मिले. सरदार ने कहा, ''साहिब! अपना कुछ ईमान होता है. हमारा गिरोह ऐसी हरकतें नहीं करता और फिर आपके कहे बिना.....'' मुख्यमंत्रीजी आश्वस्त हुए और वापस अपने एयरकंडीशन रूम में आकर कोने में सजी गुलाब की कली मसलने लगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रख दिया ताकि फर्श और बिछावन गीले होने से बच जायें. उन पीतल के कटोरों में रह-रहकर टपकने वाली बारिश की बूंदों से कभी छन की आवाज आ जाती तो कभी टन की. हरि अपनी योजनाओं पर बात करता रहा. परकाश सुनता रहा. हरि ने जब अपनी बातें समाप्त कीं तो परकाश ने उसे उन दो व्यक्तियों की संघर्ष कथा उसे सुनायी जिन्होंने मजदूरों के हित आवाज उठायी थी. पर जिन्हें पूंजीपतियों और सरकार, दोनों ने मिलकर कहीं का न रह जाने को विवश कर दिया था. हरि के प्रण को जान लेने के बाद परकाश ने उसे हताश करने के लिए सारी बात नहीं बतायीं बल्कि इसलिए बतायीं कि वह उन सारी अड़चनों को पहले से जानकर उसके लिए तैयार रहे. आज वह आया ही था यह कहने के लिए कि हरि, अगर सचमुच तुम्हें विश्वास है कि तुम अपने मजदूर साथियों का कुछ हित कर सकोगे तो मेरी शुभकामनाएं तुम्हारें साथ हैं. उसने कहा, ''तुम्हारा एक आदमी से मिलना बहुत जरूरी है.''

''किससे?''

''डाक्टर मौरिस क्यूरे से.''

''सुना है उसके बारे में?''

''सिर्फ सुनने से काम नहीं चलेगा. तुम्हें उसके अधिक से अधिक करीब पहुंचकर उसके आंदोलन से जुड़ना होगा. डाक्टर मौरिस क्यूरे का मजदूरों के प्रति जो समपर्ण है, वह सचमुच तुम्हारे लिए अपनाने की चीज है. इस लड़ाई को अलग-अलग खेमों से नहीं लड़ा जा सकता. डाक्टर मौरिस को इस समय शक्ति की आवश्यकता है. तुम्हें उससे अपने लिए शक्ति और हौसला हासिल करना है और उसे अपनी ओर से वह शक्ति प्रदान करनी है जिसकी उसे इस समय सख्त जरूरत है. आजकल पोर्टलुई शहर में उसका एक दफ्तर है. शहर का मेरा एक दोस्त तुम्हें उससे मिला सकता है. मेरी जब उससे पिछली भेंट हुई थी, तभी उसने मुझे यह बताया था कि अगर उसे कुछ उत्साही और समर्पित नौजवानों का सहयोग मिल गया तो वह मजदूरों के ट्रेडयूनियन के साथ ही साथ मजदूरों का एक दल, एक राजनीतिक पार्टी भी बना सकता है. मैं चाहता हूं कि इस दिशा में तुम उसके सहयोगी बनो.''

हरि परकाश की बात बड़े ही ध्यान से सुन रहा था. बोला, ''मैं अवश्य ऐसा करूंगा परकाश भैया.''

बाहर की बारिश के उस शोर के बावजूद पड़ोस के किसी घर से ओझाई की हांहू-हांकू और ढोलक की आवाजें आ रही थीं. खाने के बाद रात में काफी देर तक हरि और परकाश के बीच बातें होती रहीं. गोनी के उभारे हुए बोरों के एक ही बिछावन पर दोनों सो गये. मुर्गे की पहली ही बांग पर परकाश हरि से पहले जाग गया फिर बिछावन पर उस वक्त तक पड़ा रहा जब तक हरि की नींद नहीं टूटी.

वर्षा सुबह की उस प्रथम घड़ी तक भी होती रही थी. जैसे ही थमी, परकाश घर लौटने के लिए बैसाखी के सहारे उठ खड़ा हुआ. उसने अपनी जेब से एक चवन्नी निकालकर हरि की ओर बढ़ा दी. हरि पूछ बैठा, ''यह किसलिए?''

''मैं जानता हूं कि तुम गाब्रियेल के बेटे के लिए कुछ पैसे जुटा रहे हो. मैं अपना हिस्सा दे रहा हूं.''

''लेकिन...''

''मेरी हालत अभी उतनी बुरी नहीं है कि मैं किसी की मदद के लिए अपनी जेब से चवन्नी न निकाल सकूं.''

हरि ने उस चवन्नी को अपनी मुट्ठी में लेकर कहा, ''ठीक है परकाश भैया, गास्तों के लिए उगाही जा रही रकम का यह सबसे कीमती अंश होगा.''

हरि ने साईकल निकाल ली. परकाश पीछे बैठा था और हरि ने पेडल पर बायां पांव रख दिया. कुछ दूर तक साईकिल को चलाकर फिर दांये पांव को ऊपर उठाकर उस पार के दूसरे पेडल पर रखने में सफल हो गया. रास्ता पानी और कीचड़ से भरा हुआ था. जब साईकिल ने अपनी रफ्तार ले ली तो पीछे से परकाश ने कहा, ''ज्यादा तेज मत चलना, रास्ते में फिसलन है.''

हरि मुस्कराकर बोला, ''मैं तो इसका आदी हूं.''

सूरज काफी देर से ऊपर आया था.

क्रमशः

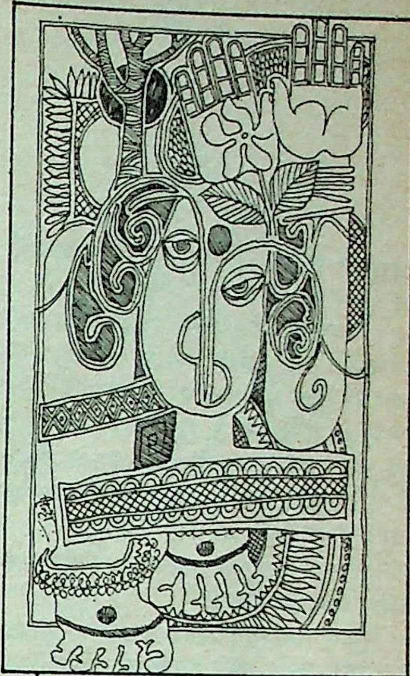

अगले अंक में

डा. मौरिस क्यूरे के साथ हरि की पहली मुलाकात कैसी रही? ...क्या उन्होंने हरि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया?... क्या थी वह चीज जो मुलाकात के बाद डा. क्यूरे ने हरि को सौंपी थी?... ऐसे ही और भी कई सवालों के जवाब...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दहेज की दरकार, बिल का सदाचार

□ गोपाल चतुर्वेदी

हमें खुश होना चाहिए. हम परेशान हैं. अपने अधिकांश देशवासियों से बेहतर होने के एहसास के बावजूद. हमारे पास दो कमरों का मकान है. ज्यादातर के पास घर के नाम पर खुला आसमान. पर तुलनात्मक समृद्धि के नुकसान अधिक हैं. झुग्गी-झोपड़ीवालों को हर दल पटाता है. इतने वोट एकमुश्त हथिया लिये तो जीत पक्की. वहां न बिजली के बिल आते हैं न पानी के. कोई नेता राशन कार्ड बनवाता है. कोई नल लगवाता है. कोई बिजली का आश्वासन देता है.

सफल लोग सिर्फ अपना हित सोचते हैं. कम कामयाब कभी-कभी दूसरों का. हमने अपने आपको धिक्कारा कि दूसरों के बारे में सोचकर हमने वक्त क्यों जाया किया. पर क्या करते. एक पंखे और चार लट्टुओं के चक्कर में बिजली विभाग के निम्नलिखित पत्र ने हमें विवश कर दिया.

प्रिय महोदय,

दस हजार रुपये बिजली का बिल आने के बारे में आपका आरोप पत्र मिला. आपने यह भी सूचना दी है कि औसत के अनुसार आपका अधिकतम बिल चालीस-पचास रुपये होना चाहिए.

आपकी शिकायत विचाराधीन है. आपसे अनुरोध है कि आप एक सप्ताह के अंदर बिल का रुपया जमा करवा दें. नहीं तो मजबूरी में हमें आपकी बत्ती बंद करनी पड़ेगी.

हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि जैसे ही आपकी शिकायत पर निर्णय हुआ, हम अधिक या कम राशि आपके भविष्य के बिलों से एडजस्ट कर लेंगे. कृपया प्रमाण-पत्र तत्काल भेजें कि इस प्रक्रिया से आप सहमत हैं.

प्रमाण-पत्र आने के बाद ही आगे की कार्रवाई की जायेगी.

शुभकामनाओं सहित,

आपका,
चिरागदीन

जब डाकिये ने दस हजार का बिल दिया था तो नये साल का इनाम भी लिया था. बस तब से हमारा और बिजली विभाग का पत्राचार जारी है.

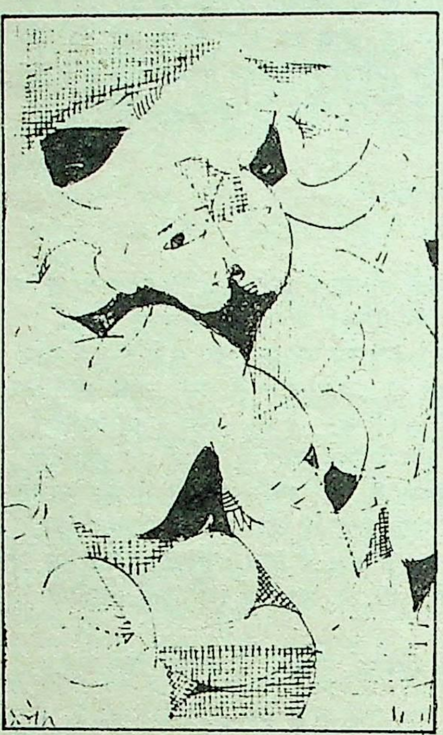

हमारे पड़ोसियों से बड़े मधुर संबंध हैं. वक्त जरूरत राशन का आदान-प्रदान चलता है. ऊपरवालों के लिए नीचे के घर कारपोरेशन के कूड़ेदान हैं. नीचे वाले अर्थात् हम कभी दायेंवाले पड़ोसी को कूड़े से कृतार्थ करते हैं, कभी बायेंवाले को. हमारे आजू-बाजू के पड़ोसी भी यही करते हैं. अक्सर हम लोग एक दूसरे से कतराते हैं, पर सामने पड़ ही जायें तो गले लग जाते हैं. पत्नियां भी हमारे भाईचारे की आदर्श आचार-संहिता का पालन कर अपना कर्तव्य निभाती हैं. जब भी दो मिलती हैं तीसरे की बुराई करती हैं. हमारे बायें पड़ोसी सरकार में हैं. विद्युत विभाग के पत्र ने हमें उनसे सलाह लेने के लिए विवश कर दिया. अपने शहर में बिजली घूमने-फिरने की शौकीन है. सुबह सैर को गयी थी. लिहाजा हमने कुंडी खटखटाकर हांक लगायी, "शर्माजी हैं!"

"कौन?" अंदर से आवाज आयी.

"हम, राधेश्याम," हमने परिचय दिया.

दरवाजा खुला. लुंगी लगाये शर्माजी अवतरित हुए. "क्या जमाना आ गया है! न बिजली है न पानी!" उन्होंने वर्तमान परिधान की वजह बतलायी. हमने हां में हां मिलायी. फिर पत्र उनके हवाले किया. हमें हमदर्दी की उम्मीद थी. उन्होंने बधाई दी.

"राधेश्यामजी, आप किस्मत वाले हैं."

"क्यों?" हम खीझे.

"यहां लोगों की जिंदगी रिमांइडर भेजते बीत जाती है. आपको जवाब तो मिला."

"पर दस हजार कहां से लायें."

"यह तो आप जानें. सरकार में ईमानदार भविष्यनिधि से बहाने बनाकर रुपये निकालते हैं, समझदार इधर-उधर से कमा लेते हैं."

"आप ही बताइये क्या करें?" हमने अपील की.

उन्होंने समस्या पर विचार के लिए वक्त चाहा. हमने शाम की चाय की दावत दी. वह पधारे और फिर से पत्र पढ़कर बोले, "आपका मामला 'विचाराधीन' लिखा है. सरकार में ऐसा तब लिखते हैं जब फाइल गुम जाती है. बिजली के दफ्तर में हमारे गांव का राम राज है. आप हमारा नाम लेकर उससे मिल लो."

दूसरे दिन हम बिजली के बीहड़ में थे. इधर सबसे समान व्यवहार की नीति है. इसी के अंतर्गत वहां भी बिजली नदारद थी. वहां एक बूढ़े चपरासी ने अजनबी पाकर हमें घूरा, "किससे मिलना है?"

हमने 'रामराज' बुदबुदाया.

"लेखावाले कि प्रशासन के?" उन्होंने गुगली फेंकी. हमने अपनी समस्या बयान की.

"तब तो मामला लेखावाले का है. पर आजकल दोनों छुट्टी पर हैं."

हमने गुजारिश की, "किसी अधिकारी से मिल लें!"

"क्यों नहीं! पर अफसर दिन भर मीटिंग में रहते हैं."

"हम क्या करें?" हम गिड़गिड़ाये.

"आप इंतजार कर सकते हैं."

"फिर हमें ध्यान आया कि पत्र पर किन्हीं चिरागदीन नाम की हस्ती के हस्ताक्षर थे. हमने मौका न चूकते प्रश्न किया, "यह चिरागदीन कौन हैं!"

"चिराग बाबू जन संपर्क अधिकारी हैं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

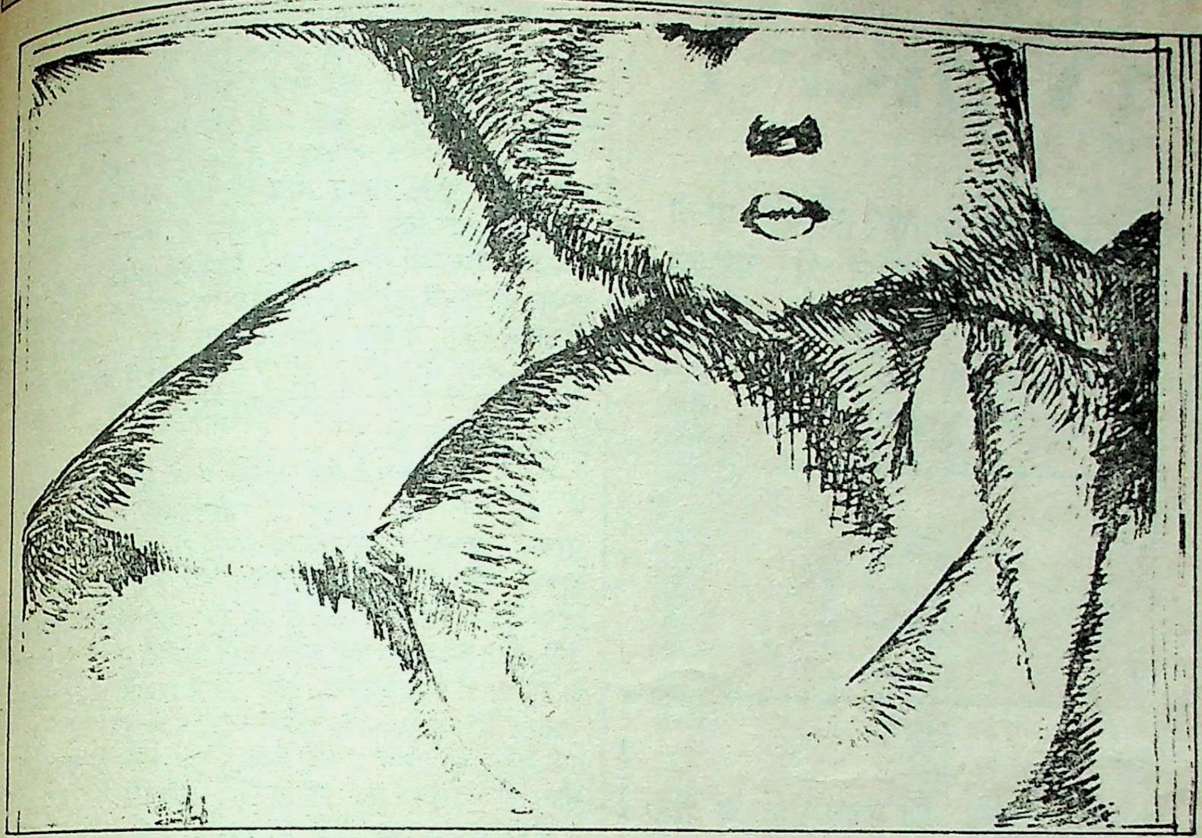

"उनसे मुलाकात मुमकिन है."

"वह तभी मिलते हैं जब बत्ती रहती है. बत्ती जाते ही वह पत्रकारों को चाय पिलाने ले जाते हैं. आपने देखा नहीं! अखबारों में हमेशा हमारी कार्य-कुशलता के कारनामे छपते हैं."

अपनी दशा पानी मांगने की हो गयी. वह हमें कैंटीन ले गये. बेसन की बर्फी खिलायी. बर्फ का पानी पिलाया. हमने पैसे देने की पेशकश की तो इंकार कर दिया, "आप ही लोगों का तो दिया खाते हैं."

उन्होंने दरयाफ्त किया, "आखिर आपकी परेशानी क्या है?"

हमने बिना कौमा-फुलस्टाप दास्ताने-दस हजार सुना डाली. उन्होंने मेज पर कोहनी रखकर अंदाज लगाया और बोले, "लगता है आपकी दहेज वाली डिमांड है."

"यह क्या होती है?" हमने जानना चाहा.

"मोहन सिंह की लड़की का शादी है. उसने पांच लाख में सौदा कर इनकम टैक्स सेवा का दामाद खरीदा है. इसी चक्कर में कहीं दस, कहीं बीस हजार का बिल भेज दिया है. इधर हमारे दफ्तर में लड़कियों-की शादी की बाढ़ आयी हैं. उसी अनुपात में गलत बिलिंग भी बढ़ी है. आप कितना दे सकते हैं?"

हमने हिसाब लगाया. सौ-दो-सौ होम करने की दरियादिली दिखायी.

"इतना तो अपना रोज का चाय पानी का खर्चा है!" चपरासी ने चाबुक लगायी हमें उन्होंने यकायक जानना चाहा, "आपका अपना मकान है?"

"जी हां." हमने सीना फुलाकर उत्तर दिया.

"आप कार से आये हैं!"

हमने इंकार में सिर हिलाया. उन्होंने हमारी नौकरी के बारे में तफशीश की. "अच्छा तो आप सरकारी नहीं, प्राइवेट हैं. चलिये आपको मोहन सिंह से मिलवा दें."

एक छोटी-सी केबिन में मोहन सिंह दो मोमबत्तियों के बीच बैठे बिलों में घोटाला कर रहे थे. "आइये रामू काका." उन्होंने रामू चपरासी का स्वागत किया. अब तक गर्मी से अपना दिमाग भन्नाने लगा था. हमने चर्चा शुरू की, "सुना है, आपकी लड़की की शादी है!"

"जी हां. आपको कोई एतराज है!"

"इसीलिए आपने बिलों में धांधली की है?"

"देखते नहीं, हम कितनी निष्ठा से काम कर रहे हैं! कुछ के बिल इस बार बढ़ाये हैं, बाकी के अगली बार बढ़ायेंगे."

"लड़की की शादी में हमें मदद से इनकार नहीं है. पर उसूलन हमें घूस देना नहीं स्वीकार है."

"आप बिल के पेमेंट को घूस कहते हैं? घूस तो कांग्रेस के साथ चली गयी. अब तो ईमानदार सरकार है. उसकी नीतियों में हम यकीन रखते हैं. न भ्रष्टचार करते हैं न बोफाचार. अपनी तो एक ही पुकार है, जनता ही जनता की मददगार है."

"हम आपके अधिकारी से कमप्लैन करेंगे!" हमने धमकी दी.

"जरूर करिये. आप बिल मत जमा करिये. आपकी मर्जी. हम सिर्फ आपकी बिजली काटेंगे. यों लालटेन-मोमबत्ती में काफी मजा है. आप भी ट्राई करिये प्लीज."

"इस लूट और भ्रष्टाचार के खिलाफ क्या कोई सुनवाई नहीं है!" हम रिरियाये.

"यह आपकी गलतफहमी है. हम सब करप्शन के खिलाफ रोज गेट-मीटिंग में नारे लगाते हैं. पर दहेज की रकम की वसूली तो सामाजिक शिष्टाचार, सहयोग और सौहार्द की बात है. अधिकारियों से हम सहयोग करते हैं, वह हमसे भ्रष्टाचार भ्रष्ट लोग करते हैं, सदाचार सभ्य लोग."

रामू ने बीच-बचाव कर एक हजार पर तोड़ करवाया. हम हताश बस की तलाश में चल पड़े. हमारे पास आकर एक मारुति रुकी. "चलिये आपको घर छोड़ दें!" रामू की आवाज आयी. पता लगा कि उनकी कार ही नहीं कोठी भी है. "सब जनता से कमाई मेवा है. दिलजले इसे करप्शन कहते हैं. हम सदाचारी तो बस जनता की सेवा करते हैं." रामू ने मुझे घर पहुंचाते हुए अपना और बिजली विभाग के मुलाजिमों का फलसफा बताया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषोत्तम

नाम देते भी क्या बनता है उसको? यों तो सैकड़ों नाम दे डाले हैं लोगों ने उसे... पर इन सारे नामों के बावजूद वह अपने मन में कोई भी नाम दे पाये क्या उस अनामा को...? धारावाही कथाखंड की पहली किस्त—

□ भगवतीशरण मिश्र

जन्म : 27 मार्च, 1939
प्रमुख कृतियां : 'पहला सूरज', 'पवन पुत्र', 'प्रथम पुरुष' (उपन्यास)
कहानी, उपन्यास व संस्मरण लेखन.
संप्रति : निदेशक : राजभाषा विभाग, पटना (बिहार)
संपर्क : 45/60 गवर्नमेंट फ्लैट्स, बैली रोड, पटना

यह भी होना था? माखन-चोर आदि की उपाधि तक तो ठीक. अब मणि-चोर भी बनना लिखा है उन्हें! और दधि-छाछ, घी-मक्खन की चोरी-छीनाझपटी—तो बीते समय की बातें हुईं—बाल्यकाल की. उस समय कोई दधि-चोर कहे या चित चोर, मन में कोई बात उठती भी कहां थी? बल्कि उस विनोद-प्रमोद में एक आनंद ही आता था—अनाम, अनजाना. ओह, कहां फिसल गये यमुना पर फिसलती जल-बूंदों की तरह ही गोकुल के वे भले दिन? वहां की चांदनी-भीगी रातें, गोधूली-पूरित संध्याएं, ओस-सने प्रातः और वे रुपहली, अलसायी दुपहरियां? और किस विस्मृति के गर्भ में सोकर रह गये वहां की, निश्छल सरिता-सी गोप-गोपियां, प्राणप्रिय बाबा नंद और स्नेह की साकार सरिता-सी यशोदा अम्मा! विपत्ति और व्यथा के ऐसे क्षणों में ही तो उनकी स्मृति, बरबस मानस-पटल पर नाना आयामों के साथ उभर आती है. सच स्वजन ही याद आते हैं संकट काल में. पर चाहकर भी कहां जाना हुआ उधर? वे तो आ नहीं सकते इधर और वह....? स्मृति की एक सशक्त तरंग-सी उठी है.

नाम देते भी बनता है क्या उसको? यों तो सैकड़ों नाम दे डाले लोगों ने अब तक उसे. गोकुल के ग्वालबालों से लेकर मथुरा के पुरजनों-परिजनों और द्वारिका की अपनी ही अर्द्धांगिनी रुक्मिणी तक ने राधा से लेकर वृषभानुसुता, कनुप्रिया और ईर्ष्या-वश कृष्णार्पिता तथा विक्षिप्ता तक कह डाला लोगों ने उसे. किंतु वही जानते हैं कितनी पवित्र, कैसी पुनीत है वह—चांदनी धुली किसी कालिंदी-तरंग की ही तरह. पर इन सारे नामों के बावजूद वह अपने मन में कोई भी नाम दे पाये क्या उस अनामा को? कोई संज्ञा गढ़ पाये उसकी? भला अपने का भी कोई स्वयं नाम गढ़ता है? पहचान पाता है कोई क्या अपने ही अंदर रची-बसी अपनी ही अंतरात्मा को? शायद नहीं, कभी नहीं. कहां पूर्ण हो पाता है आजीवन; स्वयं से स्वयं का ही परिचय? अपना ही आत्मसाक्षात्कार? तो कैसे नाम दे पाते वह उसे जो केवल उनके अंतर में ही आसन मार नहीं जमी थी बल्कि उनके तन के पोर-पोर रंग-रंग में भी रच-बस गयी थी. कहने में फिर भी अच्छा लगता है आज भी— रा...धा. सारे नामों, सारी संज्ञाओं में आज भी यही अब भी खींचता है चुंबक की तरह मन-प्राणों को. ज्वार जगा जाता है राजनीति-ग्रस्त हो आये—अंतर-मन में आज भी उसका स्मरण. सच सोख ही ले गयी न द्वारिका अंदर के सारे स्नेह-स्रोत को? हिलोरे लेते, राशि-राशि सलिल-संकुल-सागर के कूल बसी यह नगरी कैसे सुखा ले गयी उनके मन के स्नेह-सलिल को ही? और कैसी निष्ठुर विवशता है यह कि चाह कर भी चढ़ा नहीं पाते वह इस नाम को अपनी जीभ पर? चौबीसों घंटे अंदर श्वासों की सीढ़ियों पर चढ़ते-उतरते, हृत-पिंड की धड़कनों से सदा एकाकार होते इस नन्हें किंतु अमृत-रस-सने नाम को वह होंठों की कैद से बाहर भी नहीं ला सकते. कैसी है यह विडंबना?

हां, चोरी की बात चली थी. चोरी तो फिर भी चोरी ही होती है और हर चोर कोई-न-कोई चिह्न छोड़ ही जाता है अपना—कि उसी की छोर पकड़, पकड़ ही बैठते हैं लोग उसे. और पकड़ ही लिया था प्रगल्भा रुक्मिणी ने उस दिन, अत्यंत यत्न से छुपायी इस चोरी को अथवा जान-बूझकर ही चिढ़ा बैठी थी वह उन्हें सदा की तरह. रा...धा का भूत जो सदा सवार रहता था उस पर! पता नहीं कितनों ने कितनी बार अपनी ओर से विष ही बनाकर उगला था इस अमृत-सदृश नाम को उनके कानों में—कहने को ये कृष्ण तुम्हारे हैं. पर आज का यह द्वारिकाधीश कल का वही गोपाल है जो गोकुल की गलियों और करिल-कुंजों में बावला बना फिरता था उस गोपबाला रा....धा के पीछे, ठीक वैसे ही जैसे चांदनी में किसी की परछाई भागे उसके साथ-साथ.

सच, बड़ा विचित्र यत्न ढूंढा था उस दिन रुक्मिणी ने उनकी चोरी पकड़ने का—अपनी ओर से तो चोरी पकड़ने का पर उनकी बातें तो उनकी सबसे अधिक दुखती रग पर हाथ रख देने का था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जरा इधर तो आना द्वारिकाधीश!" इठलाकर कहा था उसने, अपने स्वर में अंतर का सारा स्नेह उड़ेलते हुए. पर संबोधन भी क्या चुना था इस अवसर के लिए? पीछे, लगा था यह जान-बूझकर उन्हें अधिक-से-अधिक जलाने के लिए ही था—अवमानना के अंधे गर्त में उन्हें अधिक-से-अधिक नीचे उतारने के लिए. यह प्रकट करने के लिए कि आज चाहे तुम भले छत्र धारण करते हो, अपने उन्नत मस्तक पर, पर कभी मयूर-पंखों का मुकुट सजाए तुम गोप-बालाओं के मन हरने में ही अपनी संपूर्ण बुद्धि का व्यय किया करते थे!

"क्या बात है प्राण-प्रिये?" सच इस संबोधन पर झुंझलायी ही होगी रुक्मिणी, जी भर कर, और जो कुछ वह कहने अथवा करने जा रही थी उसके लिए और कृत-संकल्प हो आयी होगी वह.

"इधर आना, और समीप," और कहने के साथ ही वह स्वयं सट आयी थी उनके प्रशस्त वक्ष से. वे कहीं जाने को प्रस्तुत हो रहे थे. शायद आखेट को. कवच आदि से मंडित कर लिया था अपने को. इसी रूप में आलिंगन देना पड़ा था उन्हें पट्टमहिषी को. पर अद्भुत किया था उस दिन रुक्मि-अनुजा ने. कलेजे को नहीं, कानों को सटाया था उनके वक्ष से उसने और जैसे लौह कवच से मंडित वक्ष के अंदर की धड़कन को पढ़ने में भी बड़ी सहजता से सफल हो गयी थी वह.

"कृष्ण!" सहसा उसके मुंह से निकला था. प्रसन्न हुए थे, चलो औपचारिकता का बंधन तो काटा प्राण-वल्लभा ने! हां इससे कम उसे मानते ही कहां थे वे? राधा उनकी विवशता थी तो रुक्मिणी उनकी आवश्यकता. अगर ऐसी बात नहीं होती तो रूप की इस साक्षात् देवी के हरण तक के उस दुस्साहस पर वे उतरे भी कैसे होते जिसे सोच-सोच आज भी उनका मन कई तरह की मिली-जुली भावनाओं के चक्रव्यूह में जा फंसता है. उसके औचित्य-अनौचित्य तक के विश्लेषण पर उतर जाता है. किये पर सोचना कभी उनका सिद्धांत नहीं रहा, उनके द्वारा प्रतिपादित और आचारित जीवन-दर्शन का दूर से भी संबंध नहीं है विगत के रो-मंथन का, उसको लेकर पश्चाताप-ग्रसित होने का. नदी के बह गये जाल की तरह, भूत, समय के अजस्र प्रवाह में प्रलुप्त हो जाता है. उसको लेकर कैसा सोच, अनावश्यक ऊहा-पोह, व्यर्थ का विवेचन-विश्लेषण, प्रश्न-प्रति-प्रश्न? पर रुक्मिणी-हरण-प्रसंग को लेकर कहां अब भी सामान्य हो पाये थे वह? वह तो किसी साही के नुकीले कांटे की तरह अब भी अड़ा पड़ा था उनके अंतर के अंदर. वह सभी के बीच से उसे अंक में भर उठा भागना, रथारूढ़ होना और रथ का रुक्मि और उसके संगी-सहायकों के द्वारा पीछा किया जाना. फिर उनके साथ वह निर्णायक युद्ध. अनावश्यक रक्तपात. कैसी घोर विडंबना है यह उनके जीवन की कि जो नहीं करना चाहते है वह, वही करणीय बन खड़ा होता है उनके आगे. कब मान्यता दी है उन्होंने संघर्ष को, युद्ध को, अपने अंतर-मन में? मानव के रक्तपात से भी कोई अधिक कुकृत्य बन सकता है मानव के हाथों? युद्ध से भी बड़ा, व्यर्थ, अनावश्यक और कुरूप कलंक हो सकता है मानवता के देदीप्यमान भाल का? उस मानवता का जो देवत्व के समकक्ष स्थापित करने को आतुर है अपने को? कब युद्ध पसंद किया कृष्ण ने? पर होता क्या रहा अब तक? वही तो घटित होता रहा बार-बार उनके जीवन में जिसे नहीं घटना था, कभी नहीं घटना था. रुक्मिणी के लिए लड़ा युद्ध तो फिर भी छोटा था—घड़ी-प्रहर का. पर जरासंध के साथ हुए अनेकानेक दीर्घ-संघर्ष? दोनों पक्षों के असंख्य योद्धाओं की पंक्ति पर पंक्ति का बार-बार रण-क्षेत्र के शस्य के कटे पौधों की तरह बिछ जाना और इस सबके पूर्व भी गोकुल में बकासुर, अघासुर और कालिय नाग आदि के साथ के वे युद्ध? पूतना का प्राणोत्सर्ग? क्या यह सब चाहा था उन्होंने? यह हिंसा, यह रक्तपात? मनुष्य के हाथों ही, मनुष्य की निर्मम समाप्ति? नियति, प्रकृति के साथ किया जा रहा यह क्रूर अमानुषिक व्यवहार? किंतु थोपा गया सब उन पर. सब कुछ आरोपित हुआ उन पर अनचाहे, अनामंत्रित,

अनाहूत. और तो और अपने ही हाथों अपने ही मामा कंस के बध की बात को कैसे भूल जायें वह—अपने सारे जीवन-सिद्धांतों और स्वयं निर्धारित आदर्शों के बावजूद, विगत के चवर्ण को त्याज्य की संज्ञा देने की अपनी दृढ़ आस्था के आलोक में भी अपने ही रक्त-संबंधी के संहार को समय के इस दीर्घ के बाद भी स्मृति-पटल से धो-पोंछ देना इतना सहज है क्या? सच, नहीं जी पाता है मनुष्य अपने ही आदर्श को न? पर-कटे पंक्षी की तरह ही तो फड़फड़ा कर रह जाता है वह अपनी ही नीतियों-नियमों के पिंजरे में बंद? बार-बार ये बातें आती हैं मन में. नहीं चाहते हुए भी अतीत किसी उद्दंड और ढीठ आईने की तरह आ खड़ा होता है उनके मानस-चक्षुओं के समक्ष और वे सारे कृत्य जिनकी ओर से वे बार-बार आंखें मूंदना चाहते हैं उनकी आंखों के समक्ष अपना कुंठित नर्तन आरंभ कर देते हैं. हां, यही होता है हर बार. जब-तब ऐसी स्थितियां सामने आती हैं, अभी भी होता है. आगे भी होता रहेगा. जब युद्ध की संभावना बनेगी तब-तब वे संतप्त होंगे. युद्ध छोटा हो या बड़ा, उन्हें व्यथित करेगा, भले ही उसे टालने में वे सफल रहें या असफल—भले ही प्रचंड रूप से धधकती युद्धाग्नि में उन्हें अपने हिस्से की भी आहुति देनी पड़े पर वह विशता ही होगी. मन से कभी समर को महत्व न उन्होंने दिया है न कभी देंगे. पर पता नहीं अभी भविष्य के गर्भ में क्या-क्या छिपा है? पता नहीं महाकाल कब किस महाविनाश का सहभागी तो सहभागी, सूत्रधार तक बना छोड़े उन्हें? भगवान कहा जाता है उन्हें. कम—से-कम उसका अवतार. सोलहों अंशों से पृथ्वी पर प्रादुर्भूत परब्रह्म. नहीं समझ पाये अब तक वे इस भेद को. किधर से क्या कुछ असामान्य, अलौकिक और अद्भुत है उनमें कि नर से नारायण बन बैठे वह, लोगों के मध्य? पर कहां समझ पाता है मनुष्य चाहकर भी सब कुछ स्वयं के संबंध में भी? पर बात इतनी तो अवश्य है कि जब तथाकथित अवतार अथवा ब्रह्म भी विवश है वही कुछ करने को जिसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय की बात

□ नीना गर्ग

वर्षों पुरानी बात है. एक सुनसान इलाके में एक प्रेमी युगल परस्पर प्रेमालाप कर रहा था. प्रेमिका दुःखी थी कि उसका पिता किसी धनी परिवार के युवक से उसका विवाह करने जा रहा था. वह गरीब ओर बेरोजगार प्रेमी से कह रही थी कि उसके बगैर वह सुखी नहीं रह सकेगी. गरीब प्रेमी मूक मुद्रा में उसे देखता रहा, फिर अपनी फटेहाली को देखने लगा.

ठीक इसी समय राजशाही पुलिस के कई घुड़सवारों ने दोनों को घेरे में ले लिया. लड़की को पुलिस ने मुक्त कर दिया लेकिन प्रेमी युवक को गिरफ्तार कर वह राजा के सामने ले आये. राजा उसे देखकर प्रसन्न हो उठा और बढ़कर उसने अपने सिर का ताज युवक के सिर पर रख दिया और बनवास चला गया. यह बात युवक को बाद में पता चली कि राजा की कोई संतान नहीं थी. वह किसी उस जैसे ही युवक को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, जो गरीब हो, प्रेमी हो और स्वप्न देखता रहता हो.

अब वह गरीब प्रेमी युवक मुल्क का राजा बन गया और उसके ठाठ हो गये. उसने राज-काज में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी. कई युद्ध लड़े, उनमें वह विजयी भी हुआ और राज्य भर में उसकी जय-जयकर शुरू हो गयी.

एक दिन उसके दरबार में उसकी प्रेमिका उससे मिलने आयी.वह बहुत प्रसन्न थी. उसने बताया कि वह अब भी अविवाहित है. उसने धनी परिवार के युवक से विवाह करने से इनकार कर दिया था. जब से उसे पता चला कि उसका प्रेमी राजा बन गया है, वह खुशी से फूली नहीं समा रही है. बड़े प्रयत्नों से आज वह उसके समक्ष उपस्थित होने में सफल हो पायी है.

युवक ने मूक नेत्रों से उसे देखा फिर गर्दन झुकाकर अपनी शाही पोशाक निहारी फिर प्रेमिका को देखने लगा. प्रेमिका अब तक मौन हो चुकी थी. प्रेमी राजा ने गर्दन घुमाकर अपने महामंत्री से पूछा, "महामंत्री! यह लड़की कौन है? इसे यहां तक किसने आने की अनुमति दी? क्या यह लड़की कुछ पागल है? □

वह अकरणीय मानता है तो सामान्य मनुष्य नियति के दुष्चक्र से कैसे और क्यों मुक्त कर पा सकता है अपने को?

बात कहां से कहां आ गयी? हां, उस दिन रुक्मिणी के कान आ लगे थे लौह कवच-मंडित उनके वक्ष से और वह एक मंद पर किंचित् कुटिल मुस्कान के साथ बोल पड़ी थी, "कृष्ण!"

"बोलो!"

"यहां से तो विचित्र ही आवाज आ रही है."

"कहां से?"

"अब क्यों कौतुक करते हो? तुम्हारे कलेजें से और कहां से?"

"कौतुक मैं कर रहा हूं या तुम?" उन्होंने रुक्मिणी को अपने और समीप लाने का प्रयास करते हुए कहा था पर वह थी कि अपने बायें कान के अलावा और कुछ सटने ही नहीं दे रही थी उनके वक्ष से. "कलेजे की धड़कन ही तो पहुंच रही होगी तुम तक? और लौह पदों को छेदकर आयेगी तुम तक तो विचित्र तो होगी ही वह कुछ हद तक."

"चुप करो. धड़कन थोड़े है यह?" उसके मुख की वह भंगिमा वैसी ही वर्तमान थी.

"क्या है?"

"नाम है."

"नाम?" उन्होंने आश्चर्य से पूछा था.

"हां, नाम." अब वह खिलखिला पड़ी थी, होंठों की वह कृत्रिम अथवा अकृत्रिम कुटिल मुस्कान सावनी धूप की तरह गायब हो गयी थी और पावस की निर्झरिणी की मुद्रा में ही खिलखिलाती बोली थी वह, "हां, नाम ही तो है वह जिसे मैं तुम्हारी हर उठती-गिरती सांस में सुन रही हूं. लो, बता ही देती हूं क्या धड़क रहा है यहां—रा...धे! रा...धे! रा...धे!" और छिटककर दूर खड़ी हो गयी थी रुक्मिणी. खिलखिलाती, वायु-आंदोलित पुष्करिणी की तरह ही तरंगायित, पुलकित. और वे थे कि उन पर घड़ों पानी पड़ गया था—अब भी नहीं निकला है राधा का कांटा रुक्मिणी के मन से? और सच तो यह है कि वह उन्हीं के मन से कहां निकल पाया है? आज भी जब चोरी का यह कलंक उनके भाल मढ़ा गया है तो उसी बहाने द्वारिका का यह तथाकथित मणि-चोर, माखन-चोर बन वृंदावन के करिल-कुंज में जा बसा है. वृषभानुसुता के क्रोड़ में पड़ा है वह—"लो राधे, एक बार जो तुमने मुझे चित्तचोर कहा तो चोर की यह संज्ञा ही रह गयी मेरे साथ. पर किससे कहूं अपना संत्रास, अपनी मनोव्यथा? तुमने चोर कहा तो मान लिया, गोकुल के गोप-गोपियों ने यह विशेषण दिया तो शिरोधार्य कर लिया उसे. पर अब इस कुटिल सत्राजित् ने लगाया यह आरोप? कैसे पी जाऊं इस विष को? बाल्य काल का वह चंचल चोर इस प्रौढ़ावस्था में भी सच का चोर बन आयेगा क्या? तुम रहती थी तो तुम्हारे कानों में सब दुःख-दर्द उड़ेल खाली कर लेता था अपने को? पर अब किससे कहने जाऊं? इतनी रानियों, पटरानियों से घिरा यह कृष्ण तो आज भी अकेला है, नितांत एकाकी. आज भी तो केवल तुम्हारा है तुम्हारा. और तुम्हारे नहीं होने ही से तो सबका होने और नहीं होने का कोई अर्थ नहीं है. कोई गलत थोड़े कहा था उस दिन रुक्मिणी ने, ठीक ही सांस-सांस में तो बसी हुई हो तुम ही—हां तुम ही, तुम ही तो कनु-प्रिया. तुम्हारे बिना कृष्ण अधूरा है. किधर से पूर्ण है, पूर्ण ब्रह्म का अवतार कहा जाने वाला यह भोला कृष्ण, राधा के बिना? और कौन समझेगा हमारे-तुम्हारे इस अद्भुत अलौकिक संबंध को? सदा शरीर के स्तर पर ही सोचने वाला साधारण मनुष्य तुम्हारे और मेरे अशरीरी, अलौकिक संबंध की प्रगाढ़ता को कौन-सी संज्ञा दे पायेगा? है उसकी शब्दावली में ऐसा कोई शब्द तो परिभाषित कर दे हमारे संबंधों की पुनीतता, अलौकिकता और कहो तो इसकी विचित्रता को ही! सांसारिक अर्थों में एक दूसरे के समीप होने की कल्पना-मात्र से भी रहित हम किस तरह एक दूसरे से अभिन्न बने रहे हैं, और रहेंगे यह बात क्या विश्व कभी ठीक से समझ पायेगा?

अंत नहीं था कृष्ण के सोच का—उनके पश्चाताप का. अब यह सत्राजित द्वारा लगाया गया कलंक? इसे तो धोना ही पड़ेगा उन्हें. और चाहे-अनचाहे शायद फिर वही तो नहीं करना पड़े उन्हें जिससे वह सदा बचना चाहते हैं—युद्ध. चाहेंगे कि बिना इसके भी काम चल जाये. सत्राजित के आरोप के अपराध में द्वंद्व युद्ध में उसे समाप्त कर देने से चोरी का कलंक तो लगा ही रह जायेगा उनके माथे पर? और तब जब जीवन के किसी प्रहर में सचमुच वह मिल गयी, वही उनकी प्रेरणा, उनके सारे संघर्षों के साथ ही उनके अनगिनत उत्कर्ष और उत्थान की वह एक-मात्र, उत्स, वह, वह राधा! और वह कह बैठी, 'कृष्ण, तुम तो सच के चोर निकले!' तो क्या उत्तर देंगे वह उसे? नहीं, नहीं इस कलंक से मुक्ति पानी ही होगी उन्हें, स्ययं तक रुकि मणि की चोरी के इस मिथ्या कलंक से. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राहत की एक सांस

उन्हें ऐसा क्यों लगा कि पत्र पढ़कर वे फंस गये हैं? अगर ऐसा पता होता तो भला वे लिफाफा खोलते ही क्यों!
कैसी है यह मुसीबत और क्या वे इससे बाहर निकल पाये?

□ कुमार अंबुज

जन्म: 1957 ग्राम मंगवार, जिला: गुना, (म.प्र.)
विविध पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां व कविताएं प्रकाशित. अपने लेखन के विषय में अंबुज का कहना है—"अभी खुद को पहली ही सीढ़ी पर पाता हूं. कविताओं में काफी रुचि है, पढ़ने में भी और लिखने में भी. 'आसपास की छोटी घटनाएं गहरे तक असर करती हैं और शायद लिखने के लिए बाध्य-कारण भी बनते हैं. चीजें आसानी से पीछा नहीं छोड़तीं, इसलिए लिखना पढ़ना भी नहीं छूटता... कुछ सार्थक हो, इसका प्रयास जरूर करता हूं."
संप्रति: स्टेट बैंक ऑफ इंदौर में सेवारत.
संपर्क: स्टेट बैंक ऑफ इंदौर, 41, स्टेशन रोड, मुंगावली, जिला: गुना, (म.प्र.)-473443

शादी से पहले मजीद भाई पूरे पांच वक्त की नमाज अदा करते रहे. इस कस्बे में मास्टरी प्राप्त हुई तब भी सही वक्त पर पांच टाईम दुआ करने और मांगने की आदत नहीं छूटी गड़बड़ हुई शादी के बाद. शहनाज के इस घर में आने के बाद ही बहुत सारी तब्दीलियां, घटनाएं-दुर्घटनाएं हुईं. तीन बरस में ही दो औलादें हुईं और अब्बा जन्नत को प्यारे हुए. खर्चों की आफतें आयीं और नौकरी जान से ज्यादा कीमती लगने लगी. धीरे-धीरे खुदा पर यकीन थोड़ा कम हुआ और नमाज अदा करना पहले अनियमित हुआ और फिर एकदम खत्म हुआ. कभी-कभी वे काफिरों की तरह बातें करते नजर भी आ जाते. हालांकि वे अपने इस अंदाज को पूरी तरह तरक्कीपसंद मानते फिर भी उन्होंने अपनी साठ सालाना अम्मीजान और छत्तीस पार कर रही शहनाज की खुदा-परस्ती में कभी इतनी दखलंदाजी नहीं दी कि उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचे. यों अपने मन में वे कभी-कभार सोचते थे कि गरीबों का रखवाला खुदा ही होता है और इस विचार से उन्हें क्षणिक राहत भी मिलती कि शायद खुदा की मेहरबानी से दिनों का कालापन एक दिन अपने-आप गायब हो जाएगा और वे अपने पूरे परिवार के साथ खुशहाली में दिन काटेंगे.

खैर, कैसे भी कटे, काफी दिन कट गये थे और बाकी के दिन कट ही रहे थे. शादी को पंद्रह बरस गुजर गये थे और इस बीच उन्हें खुदा की देन के रूप में तीन और औलादें प्राप्त हुईं. शुरू की चार लड़कियों के बाद पांचवीं संतान 'लड़का' आयी, कोई दो बरस पहले ही. मजीद भाई को कई बार समाज को बदल डालने के दौरे पड़ा करते थे. उसी क्रम में, लड़का होते ही उन्होंने विचार बनाया कि नसबंदी करा ली जाये. दुर्भाग्य से यह विचार उन्होंने अपनी प्यारी शहनाज को बताया, शहनाज ने अम्मी को और फिर घर में तूफान आ गया. मजीद भाई झेंपू किस्म के प्रगतिशील थे जो क्रांति करने के पहले कई बार अपने आप से बहस करते थे और उसके सारे 'नेगेटिव' पहलुओं पर सोचते. और हर बार होता यह था कि उन्हें कोई न कोई समझा देता था कि सारी दुनिया का ठेका आपने ही ले रखा है क्या! उनके शांति-प्रिय मन में यह आसान बात आसानी से ही समा जाती और वे सारी क्रांति का दु:ख चुपचाप पी जाते. इस बार भी ऐसा ही हुआ. मैयत का इंतजार करती, खांसती अम्मीजान और खुदा-ओ-कुरान की दुहाई देती बीबी के दिल को वे दु:खा नहीं सके. नसबंदी का विचार त्याग दिया. मन मारकर सोच ही लिया कि जो खुदा चाहेगा, वही होगा. और फिलहाल खुदा ने उनके लिये काफी तंगी और बदहाली का इंतजाम कर रखा था.

सरकारी हिसाब के मुताबिक मजीद खां वल्द मोहम्मद खां आजकल ग्रेन एडवांस, फेस्टीवल एडवांस, सोसायटी लोन और प्राविडेंट फंड के ऋणों से ग्रस्त थे, जो उन्होंने विभिन्न प्रसवों और रिश्तेदारी की शादियों के वक्त लिये थे. इन कारणों से उनकी छोटी-सी तनख्वाह उन्हें और छोटी होकर प्राप्त हो रही थी. इसी तनख्वाह को वे हर महीने शहनाज के सांवले-खुरदुरे हाथों में (जो शादी के वक्त निहायत गोरे और हाय अल्ला करने लायक खूबसूरत हुआ करते थे) नीची निगाह से रख देते. शहनाज ने बीड़ी बनाने का काम शुरू कर दिया तो मजीद भाई को अंदर से बहुत ही खुशी और राहत मिली, ऊपरी तौर पर उन्होंने कहा, "क्यों इल्लत पालती हो!" उन्हें इस बात का जवाब देने की जरूरत शहनाज ने महसूस नहीं की.

स्कूल के सामने नाकेदार के पास आया अखबार वे रेस्ट-अवर्स में चाट जाते थे. स्टॉफ में किसी से कोई बात फालतू नहीं करते और चुप रहकर ही स्कूल का वक्त काट आते. दरअसल, पिछले कुछ सालों से वे इस बात से भी डरते थे कि गपशप या बातचीत में कहीं आर्थिक मुद्दों पर बात आ गयी तो व्यर्थ ही भेजा खराब होगा. उनका उठना-बैठना या गपशप सिर्फ अपने पड़ोसी शकूर मियां से होती जो अपने जमाने में पहलवानी किया करते थे और उमर गुजर जाने पर अपना शौक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

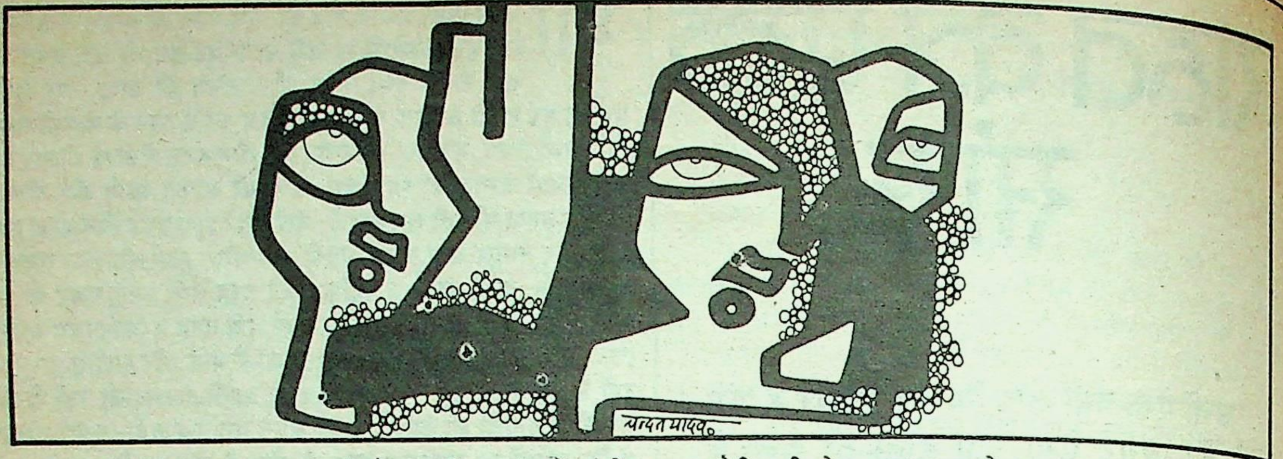

आजकल हाथी-घोड़े लड़ाकर पूरा करते हैं. उनकी शतरंज के साथी होते अपनी पसंद के मजीद भाई. मजीद भाई की ओर से कोई पहल, कोई उत्साह या खीझ नहीं होती थी. वजीर मर गया, कोई बात नहीं. जीत गये तो ठीक, हार गये तो मलाल नहीं. चोमोहरी हो गयी तो सबसे अच्छी बात. ठीक अपने जीवन की तरह ही वे शतरंज के साथ पेश आते. इसलिए तो शकूर मियां के लिये मजीद भाई एक आदर्श साथी थे

तो, खुदा की मेहरबानी से मजीद खां सपरिवार अपने दिन इस तरह काट रहे थे. बच्चे बीमार होते, अच्छे हो जाते. कई दिन तंगी के आते, उधारी कर ली जाती. कभी ऊब आती, बच्चों से लाड़ कर लेते. गुस्सा आता तो देश की व्यवस्थाओं पर उसे शालीनता से उतार लेते. और वे इस बात से वाकिफ थे कि इससे बेहतर फिलहाल उनके लिये कछ नहीं. हां, पूरे मोहल्ले में उन्हें 'मास्टरजी' का सम्मान हासिल था और कस्बे के शरीफ मुसलमानों में उनकी गिनती होती थी.

वाकया अचानक यह हुआ कि एक जुम्मे के दिन वे स्कूल पहुंचे. हेडमास्टरजी से हाजिरी-रजिस्टर लेकर दस्तखत किये और डस्टर उठाकर चौथी कक्षा को पढ़ाने चल दिये. अचानक हेडमास्टरजी ने एक लिफाफे की ओर संकेत करते हुए कहा—''खान सा., आपकी चिट्ठी.'' मजीद भाई अचकचाये. पत्रों की दुनिया से उनका वास्ता बहुत कम था. फिर भी लिफाफा देखकर उन्हें अच्छा लगा.

बच्चों का शोरगुल क्षण भर के लिए खान सा. को देखकर थम गया. उन्होंने अभ्यास क्रं. बारह के सवाल लगाने का आदेश बच्चों को दिया और अपनी उत्सुकता को खत्म करते हुये लिफाफा खोल डाला. उसमें से उन्हें छपा हुआ एक छोटा-सा पर्चा बरामद हुआ, जिसके शीर्षक में मोटे अक्षरों में छपा था—''खुदा के बंदों! इस पर अमल करो, पढ़ो, यह हकीकत है.'' नीचे छोटे अक्षरों में छपा था—''मदीना मुनब्बर से शेख अहमद ने यह वसीयतनामा भेजा है, जिसमें लिखा है कि जुमे की रात को मैं रोजा-ए-मुबारक कुरान-शरीफ पढ़ रहा था कि मुझे नींद आ गयी. सपने में देखता क्या हूं कि हजरत सल्लाल्लाहो अलह वसल्लम तशरीफ लाये और फरमाया कि बहुत बुरा वक्त आ गया है. औरतें अपने शौहर की खिदमत नहीं करतीं, पर्दा नहीं करतीं, औलादें मां-बाप का कहना नहीं मानतीं, लोग हज जाते समय खैरात नहीं करते. हजरत ने आगे कहा—शेख अहमद तुम दुनिया के आदमियों को समझा दो कि कुरान में भरोसा रखें, पीर के दिन रोजा रखें, नमाज पढ़ें, गरीबों को जकात दें. कयामत करीब है. जो शख्स इस वसीयत की नकल बांटेगा उसकी हम कयामत के दिन किफायत करेंगे, जन्नत की राह दिखायेंगे. जो शख्स ऐसे एक सौ पर्चे छपवाकर तकसीम करेगा उसे चौदह दिन में खुशी हासिल होगी. आगे मालुम हो कि बंबई में एक आदमी ने पांच सौ पर्चे बांटे तो उसका मरता हुआ लड़का बच गया, एक भाई ने ऐसे सौ खत लिखे तो उसके रुके काम पूरे हुए, एक भाई ने एक खत को गलत मान कर तौहीन की तो उसका जवान बेटा चल बसा. एक दूसरे भाई ने पर्चे छपवाने में टल लगायी तो उसका (खुद का ही) इंतकाल हो गया. इस पर्चे को छपवाकर न बांटने से जरूर गम उठाना होगा. मेहरबानी कर इस खत को झूठा साबित करने की कोशिश न करें वरना नुक्सान उठाना होगा. जिस तरह कुरान पर भरोसा किया, इस पर भी करें, और हजार-पांच सौ पर्चे छपवाकर जरूर बांटें. खुदा हमको नेक सियादत और इस पर चलने की तौफीक अदा करें. आमीन.

पत्र यानी पर्चा पढ़ते हुये मजीद भाई को खीझ आने लगी थी जो पढ़ चुकने के बाद दयनीय हो गयी थी. उन्हें लगा कि वे पत्र पढ़कर फंस गये हैं. यदि कुछ ऐसा अंदाज होता तो वे लिफाफा खोलते ही नहीं, हाय! अब क्या किया जाये. लिफाफे पर उन्होंने पता लिखने वाले के दस्तखत पहचानने की कोशिश की लेकिन नाकामयाब रहे. उस पर लगी सील को देखा, फिर भी अंदाज नहीं लगा. किस नामुराद ने यह दुश्मनी निकाली है! क्या करें, क्या न करें?

हालांकि खुदा की बंदगी करना उन्होंने छोड़ दिया था लेकिन उनके घर में पूरी तरह से खुदा के लिये भरोसा और सहारे का एहसास था. वैसे उनके खुद के मन में भी विरासत में मिला हुआ खानदानी डर अल्लाताला के लिये था. फिर भी यह पर्चा पढ़कर उन्हें कुछ ऐसा लगा जैसे किसी अपहरणकर्ता ने चिट्ठी भेजी हो—''रुपया लेकर हाजिर हो जाओ वरना तुम्हारे लड़के को कत्ल कर दिया जायेगा.'' कुछ देर तक तो वे उस पर्चे को उलटते-पुलटते रहे फिर हिम्मत करते हुए सोचा कि सब बकवास है. फाड़ साले को. हिम्मत इतनी कर डाली कि कुर्सी से खड़े हो गये मगर फिर धम्म से बैठ गये. कहीं बीबी-बच्चों को कुछ हो गया तो,... इस विचार की क्षीण-सी संभावना ने ही उन्हें एकदम कमजोर कर दिया. उन्होंने पर्चे को कुर्ते की जेब में डाल लिया. थोड़ा होश आया तो ध्यान आया कि बच्चे बेहद ऊधम कर रहे हैं. उन्होंने जोर से एक डांट पिलायी तो बच्चे सहम गये, बच्चे खान साहब से तेज डांट की उम्मीद नहीं करते थे. हालांकि वे अपनी तरफ से पूरा धीरज रख रहे थे लेकिन पर्चे की इबारतें उनके दिमाग में आंधी में पत्तियों की तरह चक्कर काट रहीं थीं.

घर पर बड़ी बेटी फरीदा और बेगम शहनाज बीड़ियां बना रही थीं. उनके स्कूल से जल्दी आ जाने को हल्के आश्चर्य से देखा गया. मजीद भाई ने अपनी बेचैनी छिपाने का पूरा प्रयत्न किया और एक गिलास पानी भी पिया. कुछ देर खटिया पर बैठे और शकूर मियां के यहां चल दिये. शकूर मियां भी चौंके. दुआ-सलाम के बाद बाजी जम गयी. मजीद भाई ने अपना वजीर गलती से ऊंट के मुंह में रख दिया और पूरी बाजी नीरस हो गयी. शायद पहली बार उन्हें हार का गम हुआ. शकूर मियां को लगा कि मामला कुछ गड़बड़ है. उनके इसरार पर मजीद भाई ने अपनी बेबसी छिपाने की कोशिश करते हुए परेशानी भरे अंदाज में पर्चे की दास्तान सुना डाली. शकूर मियां संजीदा आदमी थे. उन्होंने पर्चे की दरयाफ्त की और उसे पूरा पढ़वाकर सुना फिर उन्होंने मशवरा दिया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्चे छपवाकर बंटवाना ही बेहतर होगा वरना खुदा न जाने क्या आफत लाये. वैसे तो खुदा किसी का बुरा करता ही नहीं है लेकिन छपवाने में हर्ज कुछ नहीं.

मजीद भाई घर लौट आये और पर्चे को संभालकर कुरान के जर्जर पन्नों में रख दिया. थोड़ा वक्त गुजर गया था और उन्हें हिम्मत आ गयी थी इसलिए मन ही मन में वे सोच चुके थे कि फिलहाल पर्चे नहीं छपवायेंगे, जो होगा, देखेंगे. शकूर मियां की बात का यह हिस्सा उन्हें अच्छा लगा था कि खुदा किसी का बुरा नहीं करता.

इस वाकये को कोई एक हफ्ता गुजर गया. पर्चे की बात उनके दिल-ओ-दिमाग से लगभग गायब हो गयी. जिंदगी अपने पुराने ढर्रे पर चल निकली. अक्तूबर ढलान पर था. मौसम ने ठंडी करवट लेना शुरू कर दी थी. इधर मजीद भाई के इकलौते साहबजादे को जुकाम हो गया. नाक बहने लगी. ऐसे मौकों पर उनके पूरे परिवार का स्वास्थ्य एक हकीमजी की मेहरबानी पर निर्भर था. बन्ने मियां को लेकर शहनाज हकीमजी के यहां गयी और पुड़ियाएं लेकर लौट आयी. मगर एक दिन... दो दिन... तीन दिन... पूरे पांच दिन हो गये, बन्ने को आराम नहीं आया. जुकाम के साथ अब खांसी भी शुरू हो गयी थी.

इसी स्थिति में जब रात के आखिरी हिस्से में बन्ने को खांसी का लंबा दौर चला तो मजीद भाई की नींद भी खुली. तफसील ली तो पता चला कि पिछले सात-आठ दिनों से बच्चे की तबीयत खराब है और हकीमजी की पुड़ियों का कोई असर नहीं है. खैर, थोड़ी-बहुत थपकियां देने के बाद बन्नेजी सो गये पर मजीद भाई आशंकाओं से भर गये और उन्हें दो हफ्ते पहले मिले उस पर्चे की याद आ गयी. मजीद भाई आखिर एक सीधे-सादे मगर सच्चे पिता और शौहर थे और बन्ने उनका इकलौता बेटा था. रात के बाकी हिस्से में उन्हें नींद नसीब नहीं हुई. इस बीच अपने मन को उन्होंने बहुत समझाया कि यह सब योग-संयोग ही है वरना खुदा को क्या पड़ी है कि वह अपने ही बंदों से बदले की बात करें. लेकिन कुविचार उनके मन में बैठ चुका था. जब वे कोई ठोस निर्णय नहीं ले पाये तो उन्होंने शहनाजो से बात करने का विचार पक्का किया. यों वे इस तरह की कोई बात करने की इच्छा अपनी बेगम से रखते नहीं थे मगर अपनी बेचैनी में कोई और रास्ता उन्हें नजर आया नहीं. पौ फटते-फटते मजीद भाई ने धीरे-धीरे शहनाज को संक्षिप्त रूप में उस पर्चे की बात बतायी और 'कहीं ऐसा तो नहीं' वाक्य पर बात छोड़ दी. बाकी शहनाज समझदार थी. यह किस्सा सुनकर बह चिंतित हो गयी और लगभग रो पड़ने को हो आयी. मजीद भाई अचानक अपने आपको अपराधी महसूस करने लगे. पूरी बातचीत, उलाहने, झुंझलाहट और बेबसी की चर्चाओं के बाद भी शहनाज इस पक्ष में थी कि कम से कम पांच सौ पर्चे छपवाकर बंटवा दिये जाएं... और अब तक तो यह काम हो भी जाना चाहिये था. उतावली में शहनाज ने यह भी बता दिया कि हफ्तेवार बीड़ियों की पगार से उसने पचास रुपये बचाये हैं और इस नेक काम के लिये वे रुपये खर्च किये जाएं ताकि अल्लाताला हमें खुशी दे, बच्चों को ठीक रखें. पचास रुपयों की बात सुनकर मजीद भाई को तसल्ली हुई. उनके मन में अब भी यह बात थी कि पर्चे का चक्कर छोड़कर बन्ने को डॉक्टर को दिखा लिया जाये. निगम अच्छा डॉक्टर है, बस फीस ही ज्यादा लेता है लेकिन इलाज में पक्का है. थोड़ी-बहुत उधारी कर ली जायेगी और साठ-सत्तर रुपयों तक बन्ने ठीक हो जायेगा. लेकिन आशंकाओं से लबालब भरे हुए मजीद भाई इस बारे में न तो ज्यादा सोच पाये और न ही अपनी बेगम से कुछ कह पाये.

हकीमजी की पुड़ियाएं एक-एक कर घोलकर पिला दी गयीं मगर शाम छः बजे तक भी बन्ने की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ. खर-खर की आवाज और बढ़ गयी थी. आखिर मजीद भाई ने धीरे से कहा, "कहो तो निगम को दिखा लायें. मैं मुल्लाजी से कुछ रुपये मांग लाता हूं. थोड़ी-बहुत मिट्टी पलीद करने वाली बातें सुनाकर दे ही देंगे." शहनाज ने जवाब दिया, "कुछ नहीं होगा मेरे लाल को, आप तो बस पर्चे उठा लाइये." उनकी अम्मीजान ने जोड़ा, "अल्ला मियां के फाजिल से बीमार हुआ है. पर्चे छपते ही ठीक हो जाएगा." पैसे उधार मिलने की कठिन संभावनाओं और तमाम अनिश्चिंताओं के बीच मजीद भाई को शहनाज और अम्मी के इन उम्मीद भरे बोलों से बहुत राहत मिली. वैसे आजकल उधार पैसे प्राप्त करना काफी मुश्किल होता है और गरीब आदमियों के लिये तो लगभग नामुमकिन-सा, इसे एक गरीब और मजबूर आदमी ही बेहतर समझ सकता है. और मजीद भाई, यह सब समझ रहे थे.

वे प्रेस चल दिये. रास्ते में सोचते जा रहे थे कि अजीब आफत आयी है, फिर सोचा ठीक है, मैं भी इन पर्चों को डाक से ऐसी-ऐसी जगह भेजूंगा कि मजा आ जाएगा. प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, अनेक सांसद और विधायकों की सूची उन्होंने मन ही मन बना डाली. हां, कोई भी पर्चा किसी गरीब के पास नहीं भेजूंगा. बस, तनख्वाह भर मिल जाये.

प्रेस पर पर्चे तैयार थे. पैंतालीस रुपये देते समय दुःख तो हुआ लेकिन अब कोई और चारा भी नहीं था. पर्चे लेकर घर लौट आये. पर्चों को देखकर घर में एक इत्मीनान की सांस शहनाज और अम्मी ने ली. एक पर्चा तुरंत कुरआन के सामने रखकर दुआ मांगी गयी. मजीद भाई ने बन्ने की छाती पर हाथ रखा तो ऐसा लगा मानो अंदर कोई आरा-मशीन चल रही हो. उनका जी बैठने लगा. "लायब्रेरी जा रहा हूं" कहकर घर से निकल पड़े. सोचने लगे कि किधर औरतों की बातों में फंस गया. अफसोस यह भी हुआ कि क्यों कर मैंने बेगम से पर्चे वाली बात कही थी. बाजार से गुजरते हुये एक निगाह डॉ. निगम की दुकान पर डाली. हमेशा की तरह वहां काफी भीड़ थी. कुछ सेकंड के लिये ठिठक गये. फिर, लायब्रेरी की ओर कदम बढ़ा दिए.

लायब्रेरी में यों ही अखबार उलटते-पुलटते रहे. करीब पौन-एक घंटे बाद फरीदा भागती आयी और घबराहट में उसने बताया कि बन्ने की तबीयत बहुत खराब हो गयी है. हफ-हफ कर रहा है और पसलियां चल रही हैं. सांस भी ठीक से नहीं ले पा रहा है. सब रो रहे हैं. शकूर चाचा ने कहा है कि जल्दी से डॉक्टर को बुला कर लाओ. सुनकर मजीद मियां एकदम सन्न से रह गये. यह भी नहीं सोचा कि पैसे कहां से देंगे या कितना जलील होना पड़ेगा और भागते हुए निगम के यहां पहुंचे. हाथा-जोड़ी कर डॉक्टर को घर लाये, तुरंत पैसे देने का वायदा भी किया.

रात के नौ बज चुके थे. घर की इकलौती खटिया पर बन्ने फटे कंबल में लेटा हुआ था और शहनाज कंबल में हाथ डालकर सरसों के तेल की मालिश कर रही थी. उसकी आंखों से लगातार आंसू गिर रहे थे. निगम ने बन्ने को आला लगाया और सिर झुका लिया. डॉक्टर ने उनके कंधे पर हाथ रखकर धीरे से इतना ही कहा, "मास्टरजी, सॉरी. डबल निमोनिया था. घंटे भर पहले भी बुला लिया होता तो कुछ उम्मीद होती."

पूरे घर में रोने-पछाड़ने का काम शुरू हो गया. मजीद भाई जोर से फफक पड़े और बन्ने के शरीर को अपने सीने से चिपका लिया. इसी वक्त रोती-कलपती शहनाज गुस्से में उठी और पर्चों का ढेर उठाकर जलते हुए चूल्हे में फेंक दिया जिस पर घंटे भर से दाल पक रही थी और जो अब तक पतीली से चिपक कर जल भी चुकी थी.

जली हुई दाल की बदबू पूरे घर में फैल गयी थी.

इस जली हुई बदबू में मजीद भाई ने राहत की एक सांस लेते हुए सोचा कि चलो डॉक्टर की फीस का झगड़ा तो नहीं हुआ... और फिर वे हिचकी बांध कर रो पड़े. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरगवासी इमरती का शोक

□ से.रा. यात्री

बहुत बरसों तक मेरा यही खयाल था कि गांव देहात के लोग अपने मनोभावों को छिपाना नहीं जानते हैं. उनकी प्रतिक्रिया तुरत-फुरत होती है और वह उसे एक क्षण के लिए भी स्थगित नहीं करते हैं. पर मेरा यह सोचना कितना गलत था, मैं यही बतलाने जा रहा हूं.

हुआ यह कि मेरी पहली नियुक्ति एक गांव के कालिज में ही हुई. शहरी आदमी के लिए गांव में आवास की तो कोई समस्या ही नहीं है. समस्या वहां शहरी ढंग से रहने भर की है. वह सारी सुविधाएं जो नगर में पैसा खर्च करते ही स्वयं आपके पास आकर मंडराने लगती हैं–गांव देहात में कितना भी रुपया खर्च करने पर पास नहीं फटकतीं. हो सकता है गांव के कालिज में आवेदन पत्र भेजते ही, इसी वजह से मुझे नौकरी मिल गयी हो. वैसे मैंने नगरों के कालिजों में कम प्रयास नहीं किया था.

बहरहाल गांव में नौकरी मिली तो वहां बने रहने का प्रयास भी जरूरी था. लेकिन सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि मेरे पास स्टोव तो था पर मैं चाय बनाने के अलावा और कुछ बनाना नहीं जानता था. अब महज चाय के सहारे छह पीरियड तो हर रोज पढ़ाये नहीं जा सकते थे. मेरे साथ विज्ञान के अध्यापक लुगानी की भी नियुक्ति हुई थी. एक दिन मैंने उनसे पूछा, "भई लुगानी साहब, यहां कैसे गुजर होगी? मैं तो खाना बनाना नहीं जानता. स्टोव तो मेरे पास है मगर यहां तो मिट्टी का तेल भी उपलब्ध नहीं हैं. तेल मिल भी जाय पर खाना बनाना तो एक समस्या ही है."

लुगानी बोला, "मैं तो सिवाय बर्नर जलाने के और कुछ जानता ही नहीं. खाना-वाना बनाने की तो कभी नौबत ही नहीं आयी. यह नौकरी मैंने ले तो ली–पर लगता है यह ज्यादा देर तक नहीं चल पायेगी–महीने दो महीने में छोड़नी ही पड़ जायेगी."

मैंने पूछा, "इन दिनों आप खाने पीने का काम कैसे चला रहे हैं?" लुगानी साहब ने एक छोटी जोत के किसान के घर में मकान के बाहर की एक छोटी-सी अनगढ़-सी कोठरी ले ली थी. वह बोले, "भाई जान मैंने सुरजन सिंह के घर

> 'कैसे-कैसे लोग' स्तंभ में सुपरिचित कथाकार से.रा. यात्री अपने कुछ विशिष्ट जीवन-अनुभवों के साथ आपकी मुलाकात करवाएंगे कुछ उल्लेखनीय चरित्रों से.. आइए, इस नये स्तंभ में पहली बार मिलें–बाबू सिंह की पत्नी से...

में अपना बक्सा और किताबें लाकर डाल दी हैं. कालिज खत्म हो जाने के बाद ढाई-तीन बजे साईकिल चलाकर सासनी जाता हूं–वहां से रोटी खाकर और शाम के लिए कुछ डबलरोटी वगैरह लेकर लौट आता हूं. कई मील आने-जाने में मेरा तो हुलिया तंग हो जाता है."

मैंने कुछ सोचकर लुगानी के सामने एक प्रस्ताव रखा, "लुगानी साहब, क्या यह नहीं हो सकता कि हम दोनों किसी एक ही मकान में जगह लेकर साथ रहने लगें और जैसे भी हो स्टोव पर कुछ बुरा बावला पकाकर फालतू की भागमभाग से निजात पा जायें?"

लुगानी को मेरी यह तजवीज पसंद आयी और अगले कुछ ही दिनों में हम दोनों एक ऐसे किसान के मकान में पहुंच गये जिसके यहां मकान के बाहर की ओर एक लंबा-सा कोठड़ा खाली था. इस जगह हमें यह सुविधा थी कि हमें किसान के घर में बार-बार आने-जाने की जहमत से छुटकारा मिल गया था.

उस कोठड़े में हमने एक कोने में स्टोव और खाने पकाने के दो चार बर्तन रख कर रसोई का ठाठ जमाया और खाना बनाने के विचित्र प्रयोग शुरू कर दिये. हमारी इस प्रक्रिया को देखने के लिये गांव के कई लौंडे लपाड़े और उम्र दराज निठल्ले भी आ जुटने लगे. मैं और लुगानी बिना टिकट का तमाशा बन गये–गांव वाले हमारा तरह-तरह से मखौल उड़ाकर अपना मनोरंजन करने लगे.

हमारी यह दुर्गति देखकर अंततः मकान मालिक किसान बाबू सिंह एक दिन हमारे पास आया और दया भाव से बोला, "माट्टरजी, आप लोगन की मुस्कल देख के मोय बरो छोभ होत है. याते नीम तो जेई हतै के आप हमाये संग खाय लयो करो. जैसी रूकी-सूकी हम खात हैं वा में कछु हुज्जत नाय. तुमन्ने जो रोटी ठेकने को झगरा सरु करो है–जे कऊं मरद को काम हतै? पाय तो बीरबानी ई कस्सकत हैं।" फिर उसने अपनी खास ग्रामीण शैली में परिहास किया, "नाय तो ब्याव कल्लेओ और माट्टनी ले आवो."

उसकी बात में दम था इसलिए मैंने और लुगानी ने सलाह करके यही तय किया कि हम लोग बाबू सिंह के घर में ही खा लिया करेंगे और जो वाजिब होगा उसे हर माह चुका दिया करेंगे.

बाबू सिंह के यहां खाना शुरू करते समय दो दिक्कतें दरपेश आयीं–पहली यह कि वह खाना मेरे लिए और अत्यंत नाजुक लुगानी के लिए काफी चुनौती भरा साबित हुआ. दूसरी मुश्किल यह हुई कि बाबू सिंह के घर में खाने के लिए जाते समय अजीब-सी हया महसूस होती थी. पर संतोष यही था कि सुबह शाम के कई घंटे फिजूल के प्रयोगों में गारत होने से बचने लगे थे.

कुछ महीनों में ही मैं और लुगानी बाबू सिंह के घर के सदस्यों की तरह ही हो गये और हम लोगों की शुरू की झिझक भी जाती रही. हम लोगों के लिए कभी-कभार खीर और दूसरी कोई मिठाई भी बनने लगी तथा छोटे मोटे तीज त्यौहारों पर जब हम अपने घर जाना टाल जाते थे तो पूरी पकवान भी तैयार होने लगे. शहर से कोई मेहमान मिलने आ जाता था तो उसकी खातिर तवज्जो में बाबू सिंह का परिवार कोई कसर नहीं छोड़ता था. हम लोग भी छुट्टियों के बाद घर से लौटते समय बाबू सिंह के बच्चों के लिए छोटे-मोटे उपहार लाना नहीं भूलते थे.

एक दिन हम बाबू सिंह के चौके में बैठे खाना खा रहे थे तो बाबू सिंह की पत्नी ने बतलाया कि उसके दोनों बच्चे अपनी मौसी के घर गये हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए उसे आज आधा ही खाना बनाना है. वह सोचती थी कि शाम को खिचड़ी डाल लेगी. हम लोग इस पर कुछ कह पाते कि तभी चिट्ठी रसा आकर हमारे पास ही एक कार्ड डाल गया.

बाबू सिंह की पत्नी के हाथ आटे में सने थे सो उसने मुझसे कहा, "माट्टरजी तन्नक देखियो तो सई कौन को कारड हतै?"

कार्ड का कोना फटा हुआ था इसलिए मैं तुरंत समझ गया कि किसी की कहीं मौत हुई है. मैंने निरपेक्ष भाव से कार्ड पढ़ा और बतला दिया कि अगौता से रामचंदर ने लिखा है कि बीती दोज को इमरती का सुरगवास हो गया है."

सहसा बाबू सिंह की पत्नी के रोटी थपकते हाथ ठहर गये और वह गहरी उसांस भरकर बोली, "हाय ई तो गजब ई है गयो माट्टरजी. मेरी सगी भाभी इमरती गयी ई तो. इब कहा होय गो—वाकी उमर तो कछु बी नाय हती. बड़ी कच्ची गिरस्थी छोड़ गयी पाछे कूं."

मैंने और लुगानी ने खाना बंद कर दिया—हम दोनों के हाथ में जो कौर थे—वह मुंह की ओर नहीं जा सके. मगर उस औरत ने हमारी इस स्थिति पर कोई ध्यान न देकर पूछा, "आप लोगन कूं कैं रोटी और बनाय दऊं?"

हमने एक स्वर में कहा, "नहीं-नहीं अब और रोटी मत बनाओ—हम और नहीं लेंगे."

उस औरत के कुछ कहने से पहले ही बाबू सिंह बाहर से आता दिखाई पड़ा. जैसे ही वह चौके की दहलीज पर आया उसकी पत्नी ने अपनी भाभी के स्वर्गवास की सूचना देकर उससे पूछा, "तिहारे लैंया कैं रोटी बनाय दऊं?"

"अरे भागमान—पैले माट्टनन कूं तो खवा फेर दो-चार मेरे लैंया बी पव दे." यह बात बाबू सिंह ने इतने सहज ढंग से कही गोया कहीं मौत जैसा कुछ घटित ही न हुआ हो और मरना-जीना साधारण रोजमर्रा की बात हो.

हमारे इनकार का बाबू सिंह की पत्नी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा. उसने चूल्हे से निकली रोटियां हम लोगों की थाली में डालते हुए कहा, "नैंक जल्ली निपट लेवो."

इसके बाद उस औरत ने कोने में खड़ी पीतल की थाली हाथ बढ़ाकर खींची और अपने पति का खाना परसने लगी.

बाबू सिंह ने हमें सांत्वना-सी दी, "भूके मत रैयो—खाय के उठियों."

बाबू सिंह की पत्नी ने बाबू सिंह की थाली उसकी ओर बढ़ाकर हमें संबोधित किया, "और का—भूके च्यौं उठो हो? भर पेट खाय लेव-सामू को तो कछु पतो ई नाय है."

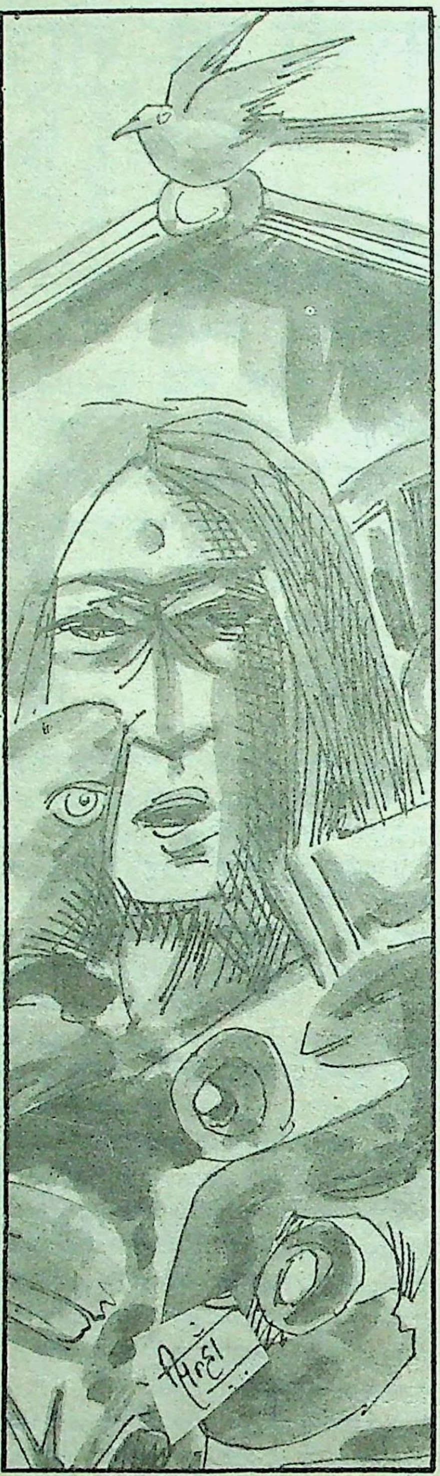

मैंने और लुगानी ने अजीब-सी दबसट में खाना खत्म किया. हमारे देखते-देखते ही बाबू सिंह ने भी दबादब पांच-सात रोटियां दो-तीन मिनट में खा डालीं.

ज्यों ही बाबू सिंह ने खाना खत्म किया उस औरत ने चूल्हे पर लोटा भर पानी डाला और डकराना शुरू कर दिया, "हाय रे मैं मर जाऊं—इमरती तू कित कू गई—मोय च्यौं संग ना ले गयी?" यह रुदन इतना विस्फोटक था कि हम लोगों के बाबू सिंह की ड्यौढ़ी से बाहर आते-आते औरतें उस घर का दरवाजा लांघकर भीतर जाती दीखने लगीं. बाबू सिंह की पत्नी भी चौके से उठकर भीतर दालान में पछाड़ें खाने चली गयी थी.

मैं और लुगानी बाबू सिंह की पत्नी के एक से एक करुण बैन सुनकर सकते में आ गये. यह किसी तरह समझ में घुसनेवाली बात नहीं थी कि जिस औरत ने हमें और अपने पति को अपनी भाभी की मौत की खबर सुनने के बावजूद—इतने धीरज से खाना खिलाया हो और अपने मुंह में एक दाना न डाला हो वह एकाएक इतनी विह्‌ल कैसे हो उठी कि उसकी वेदना का बांध ही टूट पड़ा?

लुगानी ने फुसफुसा कर कहा, "यार यह औरत का कौन-सा रूप है? यह तो गजब की एक्टिंग करती है. मैं तो यही सोचता था कि गांव के लोग एक दम सीधे-सादे एक चेहरे वाले होते हैं पर आज तो मेरा भरम ही टूट गया. मैं तो बाबू सिंह की घरवाली को बहुत भोली औरत समझता था."

कुछ ही देर बाद बाबू सिंह की घरवाली के हिलानेवाले रुदन में गांव की और भी अनेक औरतों का करुण क्रंदन शामिल हो गया और सारा वातावरण अवसाद की लपेट में आ गया. लुगानी और मैं चुपचाप सारा तमाशा देखते सुनते रहे.

हम लोग घंटे-दो घंटे के लिए घर छोड़कर बाहर खेतों की तरफ निकल गये. जब वापस लौटकर आये तो देखा बाबू सिंह के घर से सारी औरतें और आदमी जा चुके थे. बाबू सिंह की पत्नी भी घर के काम काज में लगी हुई थी.

मैं और लुगानी बाबू सिंह के दालान में जाकर खड़े हो गये और सुरगवासी इमरती की मौत पर शोक प्रकट करने के लिए कुछ शब्द कहने की बात पर सोचने लगे. मैं या लुगानी इस संबंध में कुछ बोलते, इससे पहले ही बाबू सिंह की पत्नी ने हमारी ओर आंखें उठाकर पूछा, "संझा कू कधु तीमन (सब्जी) बनाऊं के खिचरी डार लऊं?"

मैं और लुगानी अचरज से एक दूसरे का मुंह देखते रह गये और यह समझने की कोशिश करने लगे कि क्या यह वही औरत है जो दो-ढाई घंटे पहले अपनी भाभी की मौत पर फूटफूटकर रोकर आसमान हिलाये हुए थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

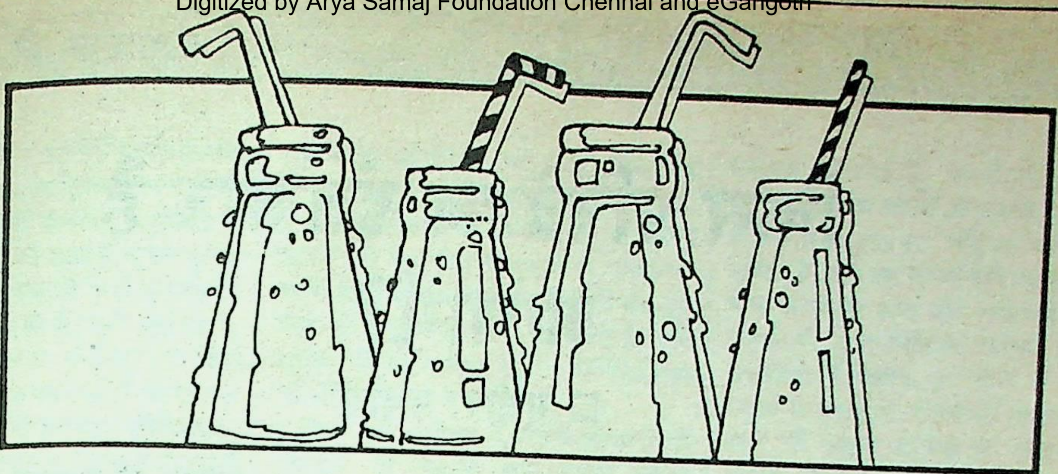

क्या आपको नशे की आदत होती जा रही है?

कार्बोलिक एसिड गैस युक्त पेयों में कैफ़ीन की अच्छी-ख़ासी मात्रा होती है। कैफ़ीन एक नशीली चीज़ है जिसके कारण हृदय-रोग, मनोवैज्ञानिक व्याधियां और जन्म-सम्बंधी खराबियां उत्पन्न हो सकती हैं।

ऐसे पेयों में फ़ास्फ़ोरिक एसिड और अन्य अम्लीय द्रव्य होते हैं जिनसे शरीर में कैल्शियम और फ़ास्फ़ोरस का संतुलन बिगड़ जाता है। अम्लता में बढ़ोतरी, दांतों के इनैमल को क्षति और बच्चों में भूख की कमी, आदि जैसे विकार पैदा हो जाते हैं।

यही कारण है कि ऐसे पेयों के मुकाबले में रूह अफ़ज़ा सदा ही एक अति उत्तम पेय है। क्योंकि यह बनावटी नहीं, बल्कि प्राकृतिक और वास्तविक रूप से ठंडक और तरावट देने वाला शरबत है।

रूह अफ़ज़ा ताज़ा फलों के रस से बनता है। इसमें प्राकृतिक विटामिनों और शक्तिदायक द्रव्यों के साथ-साथ जड़ी-बूटियों और सब्ज़ियों का अर्क भी होता है। इसलिए आपको जब भी ठंडक देने वाले स्वाद-भरे पेय की आवश्यकता हो, तो रूह अफ़ज़ा ही पीजिए। वह शरबत जो 80 वर्षों से भी अधिक समय से अपना नाम बनाए हुए है। और जिसके स्वाद में है पूर्व की परम्पराओं का अनोखापन।

रूह अफ़ज़ा से चुस्त और तन्दुरुस्त रहिए:

रूह अफ़ज़ा शरीर में पानी, कैल्शियम और आयरन की कमी को दूर करता है। यह एक शक्तिदायक पेय है जो रक्त के हेमोग्लोबिन स्तर को बढ़ाता है, और रोग व दुर्बलता के दिनों में शक्ति वापस लाने में सहायता करता है।

रूह अफ़ज़ा कब प्रयोग करें

बचाव और चिकित्सा के लिए :

*शरीर में पानी की कमी *गर्मी से थकावट
*लू लगना *गर्मी से बुखार आना *कै
*दस्त *आमाशय का दर्द

स्थिर रखने के लिए :

*शरीर के आहारिक द्रव्य
*स्वस्थ हृदय-गति
*शरीर में ताज़गी, चुस्ती और शक्ति

जड़ी-बूटियों, आवश्यक तत्त्वों और प्राकृतिक विटामिनों का अनोखा मिश्रण

शरबत

रूह अफ़ज़ा

80 वर्ष से अधिक समय से सब का मनपसन्द शर्बत

हमदर्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस परिंदे का इंतजार है आचार्य?

□ सुधीश पचौरी

कथा-चिंतन के समसामयिक उजाड़ में खड़े हम लोग पीछे पलटकर देखते हैं तो नामवरजी के कथा समीक्षा संबंधी लेख बहुत महान नजर नहीं आते. वे हद से हद छटपटाहट रहित कहीं से अचानक प्राप्त, अन्य सिद्ध अनुमानों और स्पेकुलेशंस का जोड़ बाकी नजर आते हैं. उनकी अपनी ऐतिहासिकता है किंतु वह उतनी बड़ी नहीं जितने के लोग उन्हें शिकायतें पहुंचाते हैं.

'कहानी : नयी कहानी' नाम से संकलित कथा समीक्षा संबंधी ये लेख कहानी को लेकर शुरुआती स्पेकुलेटिव समीक्षा का नमूना है जो यह खबर देता है कि जिस समय ये लिखे जा रहे थे उस समय सब अंधेरे में टटोल रहे थे और कत्तर को बजाजे की दूकान बता रहे थे. भूमिका में कथा समीक्षा की एक पद्धति निकालने की कोशिश की बात नामवरजी ने की है, वह दरअसल एक 'स्पेकुलेटिव' पद्धति है जो शुद्ध निजी रुचि, निजी अंदाज और इच्छाओं पर चलती हैं उसके लिए रचना की जगह अपनी पहुंच कल्पना और यथासंभव कट्टरता या उदारता का सट्टा खेलना महत्वपूर्ण होता है. हर कहानी एक सट्टा खेलने का विषय होती है. स्पेकुलेशन यानी सट्टा.

भूमिका में वे 'ठोस कहानियों' पर टिकने की बात पर जोर देते हैं. हवाई सिद्धांतों में बहकने की जगह. यहां प्रकट आत्म विश्वास अत्यंत विडंबनापूर्ण हो उठता है क्योंकि हम सभी जानते हैं कि इस ठोस के आग्रह के पीछे निजी रुचियों को सिद्धांत बनाने की 'फोल' मौजूद है. इसीलिए जब-जब आज भी कथा चिंतन की बात होती है तो लोग सिर्फ ठोस यानी अपनी-अपनी कहानियों की वैसी ही समीक्षा कराना चाहते रहते हैं जैसी 'परिंदे' की हुई. यानी 'स्थापित' होने के लिए एक समीक्षा की तलाश. यदि परवर्ती कथाकारों पर इस समीक्षा का यह असर पड़ा तो कहना होगा कि यह समीक्षा, समीक्षा बाह्य साधनों से, किसी कहानी के साथ उठने चढ़ने के लिए एक आदर्श समीक्षा मानी गयी. नामवरजी से अब तक रूठे हुए उनके वक्त के कथाकार या

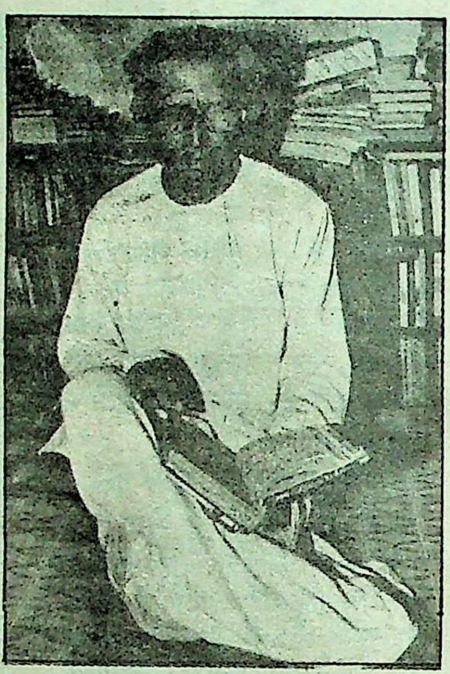

'आलोचना की पुनर्यात्रा' का यह क्रम देवीशंकर अवस्थी से प्रारंभ हुआ था. पिछले अंक में कथा आलोचक सुरेंद्र चौधरी की कथा-समीक्षा पर प्रकाशित टिप्पणी के बाद अब पढ़िये डा. नामवर सिंह की कथा आलोचना पर स्तंभकार सुधीश पचौरी के विचार.

कतिपय नये कथाकार यदि उनकी तरफ समीक्षा के लिए देखकर तरसते हैं तो कहना चाहिए कि इस कृष्ण गोपी संबंध को स्थापित करने में नामवरजी की उसी सटोरिये मार्का समीक्षा का हाथ है.

सच कभी-कभी अचरज लगता है कि वे उन मर्मों तक तब कैसे आसानी से पहुंचे और अब क्यों नहीं पहुंचते. यदि वह समीक्षा किसी गहन और सर्वाश्लेषी चिंतन का परिणाम या खोज होती तो वह अचानक पड़ी बुरी आदत की तरह भुला देने योग्य तो नहीं होती. बाद में नयी कहानी के राजेंद्र यादव, कमलेश्वर यहां तक कि मार्कंडेय यदि उनकी समीक्षा को 'फतवेवाली' और वैयक्तिक कहते पाये गये तो इसीलिए कि यह सच तो एक न एक दिन उजागर होना था. यदि पाठक उनकी स्थापनाओं निष्कर्षों में एक सर्वांग सूत्रता नहीं पाकर और परस्पर विरोधी बातें पाकर खिन्न होता है तो इसीलिए कि नामवरजी की समीक्षा पद्धति में किसी सर्वाश्लेषी रचना-सत्य को खोजने की विकलता लगभग न के बराबर रही है. उनकी भाषा में लगभग निष्कर्ष पर पहले से पहुंचे हुए बड़े भाई की आश्वस्ति बराबर रहती है. एक तरह की उस्तादी के वे कायल हैं.

'नयी कहानी की पहली कृति : परिंदे' (लेख का शीर्षक इसी नाम से है) पर लिखते हुए नामवरजी एक समीक्षा पद्धति-सा कुछ पेश करते हैं. पद्धति में परिंदे की नायिका लतिका की स्मृतियां, अकेलेपन, अवसाद आदि को वे 'नया' कहते हैं. अभूतपूर्व कहते हैं जो कि वे चीजें थीं भी. किंतु परिंदे की महानता कहानी के भीतर किन कारकों से पैदा होती है यह नामवरजी नहीं बताते. यद्यपि वे निर्मल के संगीत की बात करते हैं. प्रभावान्विति की बात करते हैं, फिर प्रभाव की व्याख्या भी करते हैं. इस कुल मिलाकर पर्याप्त मेहनत करते हैं. इस मामले में वे अनूठे हैं. बार-बार फेंट-फेंट कर वे निर्मल की कहानियों के मोहन तत्वों को निकालते हैं.

तर्क यों चलता है कि निर्मल मनुष्य की गहन समस्याओं को उठाते हैं हम क्या करें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

...वे सब प्रतीक्षा कर रहे हैं? मानव नियति का यह व्यापक विश्व साहित्य में नामवरजी को दिखता है. असली समस्या स्वतंत्रता या मुक्ति की है. निर्मल की कहानी मानव मुक्ति का प्रश्न उठाते हुए स्वयं को हिंदी कहानी की परिपाटी से मुक्त करती है. यहीं स्थापन है. स्पेकुलेटिव समीक्षा का सर्वोत्कृष्ट अभ्यास है यहां. और शायद नामवरजी के तमाम इस तरह के लेखों में ऐसा लेख दूसरा नहीं मिलता. एक संपूर्ण ललक के साथ वे रचना के भीतर से मर्म प्रसंग उद्घाटित करते हैं. निर्मल के प्रभाव में वे बह जाते हैं. तभी कुछ बेहद रचनात्मक निष्कर्ष निकालते हैं. इन्हीं के आधार पर वे 'परिंदे' को नयी कहानी की पहली कृति कहकर एक महत्वपूर्ण सामान्यीकरण करते हैं जिस पर बहस अनिवार्य हो उठती है.

यह भी संभव था कि नामवरजी ने निर्मल की कहानियों को पढ़ने की जो खुली पद्धति अपनायी वह अन्य रचनाओं पर भी लागू की जाती. तब शायद एक पद्धति जैसा कुछ स्थिर होता. किंतु सिद्धांत कथन की ओर शास्त्र निर्माण की ओर आने के बजाय, वे ठोस कहानियों की शरण लेते हुए, अपनी यादृच्छिकता की रक्षा करते हैं. शास्त्र या उससे घृणा है तो एक पद्धति के विकास की चिंता की जगह वे कुछ कथाकारों की कुछ कहानियों को अलग-अलग ढंग से पढ़ते हैं अलग-अलग ढंग से पद्धति निकालते हैं. जैसे कोई विक्रेता सस्ते कपड़े का महत्व भी बता देता है और आपका चेहरा देखकर मंहगे का भी महत्व बता देता है, लगभग उसी तरह की गत बन जाती है उनकी समीक्षा की. निर्मल की कई कहानियों में जो नामवरजी को 'अद्भुत-अद्भुत लगता है वह एक्सक्लूसिव' भी है. अद्वितीय भी है.

समीक्षा में हमेशा मौजूद रहने वाली तर्क व्यवस्था के अनुसार सोचें तो यह 'अद्वितीय' का अवगाहन अन्य कथाकारों की कहानियों और 'व्यक्तित्वों' (निर्मल की महानता को वे उनके व्यक्तित्व के भीतर ढूंढ़ते हैं) को खोजने में बाधा नहीं बननी थी किंतु वह बनती है. उदाहरण के लिए राजेंद्र यादव की 'छोटे छोटे ताजमहल' विचारतत्व के कारण ही हास्यास्पद हो जाती है. अनुभूति क्षणों का चित्रण व्यंग्यास्पद हो जाता है. यहां प्रभावान्विति का प्रश्न गौण हो जाता है. निर्मल वर्मा की सूक्ष्मता-प्रियता सभ्यता के भीतर लगने लगती है लेकिन यादव की सूक्ष्मता-प्रियता 'सभ्यता की हदों के पार' अब बिगाड़ लीजिए कुछ. स्पेकुलेटिव या यादृच्छिक आलोचना का दूसरा उदाहरण विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है'. यहां समीक्षक को 'धक्का, देने की युक्ति जुटाने' की लेखकीय भावुकता में 'उतावली' नजर आती है और कहानी दो कौड़ी की. ऐसे और भी उदाहरण जुटाए जा सकते हैं, जहां नामवरजी की समीक्षा पद्धति की केंद्रहीनता परिलक्षित होती है.

किसी भी समीक्षा में, उसके औजारों की पड़ताल की पहली शर्त उसके भीतर अनिवार्य तर्क-व्यवस्था को ढूंढ़ने की होती है क्योंकि कोई भी समीक्षा अपना तर्क स्वयं होती है. वह तर्कातीत नहीं हो सकती. वह तर्क-तिरस्कर्ता नहीं हो सकती. नामवरजी की कथा समीक्षा पद्धति इस नजर से केंद्रहीन समीक्षा पद्धति नजर आती है. यों उसका केंद्र मूलतः निर्मल वर्मा हैं और यह भी सही है कि निर्मल के नयेपन को पहचानने की कोशिश

> समीक्षा को परखने का एक तरीका यह भी है कि समीक्षकों के रचना-चुनाव को भी परखा जाये... और एक चुनाव के कारणों तक, प्रेरकों तक पहुंचा जाये. किसी समीक्षक ने कोई रचना क्यों चुनी, यह सवाल उसकी समूची समीक्षा पद्धति का दरवाजा हो सकता है....

नामवरजी की ऐतिहासिक देन है किंतु नामवरजी की पूरी समीक्षा हर जगह शायद निर्मल को बिना नाम लिए खोजती है और न पाकर कट्टे का निशान लगाती है. हमें तो लगता है कि नामवर आज तक उसी निर्मल और उसी परिंदे को ढूंढ़ रहे हैं.

समीक्षा को परखने का एक तरीका यह भी है कि समीक्षकों के रचना-चुनाव को भी परखा जाय और एक चुनाव के कारणों तक, प्रेरकों तक पहुंचा जाये. किसी समीक्षक ने कोई रचना क्यों चुनी, यह सवाल उसकी समूची समीक्षा पद्धति का दरवाजा हो सकता है. तब पूछें कि नामरवजी ने परिंदे' क्यों चुनी होगी? इसका एक उत्तर कमलेश्वर अपनी 'आधार शिलाएं' नामक संस्मरण श्रृंखला में दे चुके हैं कि तब निर्मल सी.पी.आई. के कार्ड होल्डर थे या नजदीक थे. उन्हें उठाना जरूरी था. पी.पी.एच. से उनका छपना इसका ऐतिहासिक प्रमाण है.

किंतु जितने प्रिय भाव से 'परिंदे' की समीक्षा की गयी है, उसमें कोई आंतरिक कारण भी काम करता हो सकता है. वह क्या हो सकता है? क्या वह 'लतिका' का चरित्र हो सकता है. क्या यह संभव नहीं कि कस्बे और गांव से शहरी बना एक समीक्षक पब्लिक स्कूलों के औपनिवेशिक 'स्पेस' का कहीं उपचेतना में कायल हो, दिल में कहीं इन स्कूलों के जगत के रहस्य को समझने, उसमें रहने की प्रसुप्त कामना हो लतिका जैसी अकेली दार्शनिक स्त्री के अकेलेपन के प्रति हमदर्दी हो जो ह्युबर्ट की जगह खुद को देखना चाहती हो. आखिर रचना के भीतर हम हमेशा स्वयं को ही खोजते फिरते हैं. कहीं ऐसा तो नहीं कि समीक्षक उस वातावरण पर कुर्बान हुआ जो दूर से पब्लिक स्कूलों के महान साफ ईसाई आकर्षण से भरापूरा था, जहां अभी तक गुलाम भारत के गांव के नौजवान पहुंचने की हसरत लिए बड़े हुए कि वह आजाद हो गया. कहीं ऐसा तो नहीं कि निर्मल की महान कथाओं में अतीत के खत्म हो जाने की गहरी छटपटाहट में और उस अतीत को फिर न उपलब्ध कर पाने की कस्बाई मनोग्रंथि में कोई अंतर्सूत्र काम कर रहा हो. यह इस लिए भी देखा जाना चाहिए क्योंकि निर्मल वर्मा नामवर की कथा समीक्षा की अद्यतन बाधा बने हुए हैं. निर्मल के 'प्रतिक्रियावादी' हो जाने के बाद नामवरजी लगातार उस पाप को धोने की कोशिश में लगे हुए हैं, जो वस्तुतः उनकी एक मात्र मौलिकता थी. यादृच्छिक होने का आत्मदंड है यह.

बहरहाल यह टिप्पणी निर्मल पर नहीं हैं. किंतु इतना तय है कि आज निर्मल अधिक विश्वसनीय लगते हैं और नामवरजी की समीक्षा अधिक अविश्वसनीय. क्या यह सिर्फ रचना की आंतरिक विश्वसनीयता का फल है या आलोचना के केंद्रहीन हो उठने का फल है? हमें लगता है कि नामवरजी की कथा समीक्षा की धुरीहीनता ही उसे अविश्वसनीय बनाती है और कमजोर भी. अन्यथा जिस समीक्षा ने 'परिंदे' को महान कथा उचित ही बताया था, वही आज इसे अपना 'पाप' कहे, यह अंतर्विरोध कैसे मुमकिन है?

निर्मल इसलिए हिंदी के बड़े कथाकार हैं कि एक गिरते हुए, लुढ़कते हुए समय की सबसे मार्मिक खबर उनकी रचनाओं में हमें मिली है. किंतु जिस समीक्षक को उस गिरते हुए समाज की खबर की सार्थकता न मालूम हो, और जो पियानो के संगीत पर कुर्बान हुआ जाता हो, वह आजीवन 'परिंदे' का इंतजार कर सकता है क्योंकि वह निर्मल का नहीं, समीक्षक का अपना परिंदा है. □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी की तीसरी दुनिया के दो तोता मास्टर

□ शैलेश मटियानी

'...जब लेखक का समाज से नाभिनाल संबंध खत्म हो जाय, और वह समाज की धड़कनों को एकाग्रचित्त होकर सुनने की जगह, किसी संगठन या पार्टी से सैद्धांतिक-वैचारिक खुराक लेना ज्यादा बेहतर समझने लगे, तो कैसी भी महान ऐतिहासिक घटनाएं या उथल-पुथल भरी सामाजिक स्थितियां उसे कोई लाभ नहीं पहुंचा सकतीं... क्योंकि रचना में सामाजिक स्थितियों या ऐतिहासिक घटनाओं के दबावों की अनुगूंज भी सिर्फ वही लेखक उत्पन्न कर सकता है, जिसने इनकी दाब को सिद्धांत नहीं, बल्कि संवेदना के स्तर पर झेला हो...' प्रस्तुत है शैलेश मटियानी का विचारोत्तेजक आलेख

'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित लेख में 'हिंदी कहानी की तीसरी नयी दुनिया' के सद्यःजात मसीहा राजेंद्र यादव तीन-तीन नयी बातें एक साथ कही हैं. पहली यह कि—इतना वो भी अच्छी तरह जानते हैं कि 'साहित्य में मौलिकता-जैसी कोई चीज नहीं होती. किंतु नया जरूर होता है.'

दूसरी, नामवरजी की हिंदी कहानी की आलोचना में अब तक की भूमिका को लेकर 'एक राजस्थानी कहावत' के रूप में इस प्रकार है—'जन-जन का मन राखती, वेश्या हो गयी बांझ!'...और तीसरी के बोल हैं—'कहीं ऐसा न हो कि हम कहानी के सौंदर्यशास्त्र, विश्व कहानी की बारीकियों, सांकेतिकता और आंतरिक लयात्मकता इत्यादि-इत्यादि की शास्त्रीय बहसों में नामवर सिंह से कहानी का भविष्य ही पूछते बैठे रहें और पीठ-पीछे से कहानी अपनी नयी और तीसरी दुनिया के लिए जरूरी यात्रा तय करती रहे...

कुछ हर्ज न होगा, अगर पहले उनकी पहली बात को ही लिया और उनसे ही पूछा जाय कि—क्या सचमुच?

चूंकि राजेंद्रजी का जोर 'साहित्य में' पर है, इसलिये जानना जरूरी होगा उनसे यह भी कि मौलिकता—जैसी चीज क्या सिर्फ साहित्य में ही नही होती? यह तो उन्होंने कहा नहीं है कि कहीं नहीं होती. ऐसे में उनको ही यह बताना भी होगा कि साहित्य को छोड़, बाकी हर जगह मौलिकता होती है, या कि जिन कुछ क्षेत्रों में मौलिकता-जैसी कोई चीज नहीं होती, उनमें साहित्य भी एक हैं? हमें समझाने को एक-दो दृष्टांत[देंगे राजेंद्रजी कि मौलिकता-जैसी चीज कहां-कहां होती, या पायी जाती है? ताकि हम भी तो जरा मिलान करके देख सकें कि राजेंद्रजी सच ही कह रहे हैं, या झूठ? और जान सकें कि साहित्य में मौलिकता क्यों नहीं होती.

जाहिर है कि कुछ अद्भुत, अपूर्व तथा चमत्कारिक कहने का शौक राजेंद्रजी को नामवरजी से कम नहीं. चौंकाने और अचंभित करने के इरादे में गढ़ी गयी ऐसी तमाम उक्तियां अपनी निष्पत्ति में सिर्फ हास्यास्पद होती हैं, जिनमें धारणा और अवधारणा के बीच कर सकने का विवेक नदारद है. धारणा कोई भी बना ले सकता है, लेकिन अवधारणा सिर्फ वही कर सकता है, जिसमें वस्तु को देश-काल और समाज के साक्ष्य से देख सकने की क्षमता हो. जो किसी बात को दूसरों को चौंकाने या अचंभित करने के इरादे में नहीं, बल्कि सोच-विचार की एक प्रक्रिया से गुजकर कहे.

जिस साहित्य में मौलिकता-जैसी कोई चीज हो ही नहीं, वह अगर नया होगा भी, तो साहित्य की कसौटी पर नहीं, बल्कि 'नया सुपर रिन' के स्तर पर! 'सुपर रिन' अपने लेबिल तथा आकार-प्रकार अथवा गुणवत्ता में भी बहुत-कुछ नया होने के बावजूद, मौलिक कभी नहीं हो पायेगा, क्योंकि मौलिकता किसी भी वस्तु में 'नया' या 'ताजा' होने के तर्क से नहीं, बल्कि दृष्टि अथवा परिकल्पना के ऐसे संस्पर्श से ही आ सकती है, जो उसे देश-काल और मनुष्य के विराट से जोड़ सके. जिसकी गति इनकी आर-से-पार तक की सरणियों तक हो. जिसमें सृष्टि के आधारभूत सारतत्वों के साक्षात्कार की कौंध मौजूद हो. जो वस्तु को सोच-विचार और संवेदन के तंतुओं से जोड़ और हमें यह आभास करा सके कि इसमें ऐसा इससे पहले नहीं था.

'रामचरितमानस' की वस्तु 'रामायण' से ली गयी है और शिल्प ही नहीं, बल्कि भाषा-शैली अथवा बिंब-विधान तक पर 'पद्भावत' की छाया साफ देखी जा सकती है, लेकिन इसके बाद भी वह नयी नहीं, बल्कि एक संपूर्ण रूप से मौलिक कृति है, क्योंकि साहित्य में मौलिकता दृष्टि, (या कहें कि वस्तु को देखने की भिन्नता) से उत्पन्न होती है, यदि दृष्टि में मौलिकता, तो भाषा, शिल्प, शैली अथवा बिंब-विधान का कैसा भी नयापन किसी कृति को मौलिक नहीं बना सकता, क्योंकि 'नया' का दायरा काल ही नहीं, बल्कि वस्तु की भी सिर्फ तात्कालिक परिधियों तक ही जाता हैं, जबकि मौलिकता के लिये देश-काल और संवेदन तथा सोच-विचार के उन बुनियादी आधारों की समझ जरूरी है, जहां से कि निराकार को आकार मिलने की शुरुआत होती है... और चूंकि निराकार को आकार देने का साधन एक ही है, भाषा—इसलिये मौलिकता को अगर कहीं किसी क्षेत्र में उसकी पूरी अवधारणा और पहचान में देखा जा सकता है, तो सिर्फ साहित्य अथवा उन अन्य कला-माध्यमों में, जो भाषा अथवा भाषा के कारक उत्सों से जुड़े हों.

अगर राजेंद्रजी का तर्क हो कि जो भी नया हो वह पहले मौजूद से कुछ नया ही होता है और पहले ही मौजूद के नये रूप को मौलिक कैसे कहा जा सकता है, तो तब साहित्य ही क्यों, कहीं किसी अन्य क्षेत्र में भी मौलिकता-जैसी किसी चीज की गुंजाइश कैसे होगी? जब संपूर्ण सृष्टि ही पहले से मौजूद है, तब यहां किसी भी दूसरे मौलिक को स्थान ही कहां होगा? जबकि इस बात को हम फिर जोर देकर कहना चाहेंगे कि मौलिकता वस्तु या रूप-गुण नहीं, बल्कि दृष्टि की भिन्नता का प्रत्यय है. साहित्य में मौलिकता की अवधारणा वस्तु, शिल्प या भाषा-विधान के नयेपन नहीं, बल्कि दृष्टि, अनुभव और सरोकारों की भिन्नता से ही की जा सकती है और यही भिन्नता एक देश-काल ही नहीं, बल्कि एक ही भाषा-माध्यम तक के लेखकों की कृतियों में एक ऐसा अंतर उपस्थित करती है, जिसे हम मौलिक के सिवा और कुछ कह नहीं सकते. साहित्य में अनुभव, सरोकार या दृष्टि की भिन्नता से रिक्त 'नया' सिर्फ नकल-मात्र होकर रह जाता है.

विडंबना है यह कि राजेंद्रजी का 'नया' उधार का है और उधार भी उन्हीं डॉ. नामवर सिंह से जिन्हें राजेंद्रजी वर्षों पहले ही 'प्रतिभा और ईमानदारी की जीवित समाधि' घोषित कर चुके थे, लेकिन आज फिर हिंदी कहानी की 'बोफार्स तोप' करार दे रहे हैं और ऐसा करते में हाल उनका भी लगभग वही है, जो श्री राजीव गांधी का! ...संतुलन उनका भी लगभग पूरी तरह गड़बड़ाया हुआ है, क्योंकि अन्यथा वो 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' को नामवरजी पर चस्पा करते हुए, अपना अतीत (या व्यतीत?) भी स्मरण रखते जरूर!

जब नामवरजी 'नयी कहानी' आंदोलन के नामधारी बने हुए, उसे दिग्विजय कराते फिरे, तब तो राजेंद्रजी ने कभी नहीं कहा कि उनका मन रखते कहां तक घूमते रहेंगे? लेकिन 'हमारा मन नहीं रखोगे, तो भुगतोगे' की उनकी भभकी उन नामवरजी पर ही कहां चलेगी, जिन्हें राजेंद्र यादव खुद ही यदुवंश शिरोमणि श्रीकृष्ण की भांति 'विराट' अनुभव कर रहे हैं? राजेंद्रजी का कहना है—'सही है कि हम सब नामवर को बहुत प्यार करते हैं, इसलिए बहुत नाराज हैं. हमें गर्व है कि हिंदी साहित्य के पास एक नामवर भी है. इतना विराट, इतना विद्वान, इतना वाग्मी और इतना खुंदकी, एकदम बोफोर्स तोप. लेकिन पिछले लगभग 35 बरसों से मैं आज तक नहीं पाया कि वह हिंदी कहानी से आखिर क्या चाहते हैं?—

'नवभारत टाइम्स' 13 अगस्त 19..

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम राजेंद्रजी के वक्तव्य में इतना और जोड़ना चाहेंगे कि—हिंदी के पास एक अदद खुद राजेंद्र यादव भी हैं जरूर! और जैसे कहानी की आलोचना में सिर्फ चोंचबाजी से ही नामवरजी मसीहा बन बैठे हैं, तैसे ही सात वर्षों में 'हनीमून'—जैसी घटिया कहानी लिखकर राजेंद्र यादवजी भी हिंदी के भूत, वर्तमान और भविष्य, तीनों पर हेडमास्टरी गांठ रहे हैं. अन्यथा बनें चाहे जितना, लेकिन इतना तो वे भी भली-भांति जानते हैं कि 'नयी कहानी' का आंदोलन भी नामवरजी की उसी विराट छलना की उत्पत्ति था, जिसे उन्हें अपने 13 अगस्त 89 के 'नवभारत टाइम्स' वाले वक्तव्य में 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' करार देने के बाद भी पूरा संतोष प्राप्त हो नहीं सका. लेकिन 'नयी कहानी' का 'छापा' चूंकि, कहानियों की जगह, आंदोलन से स्थापित त्रिमूर्ति में का एक बनाये रखने में बहुत दूर तक खुद राजेंद्रजी के भी काम आता रहा, इसलिये उसकी छाप छुड़ाना है, क्योंकि छापा अगर देर तक बना रह जाय, तो वह दूर तक भी साथ रहेगा जरूर!

साफ शब्दों में कहें, तो ये दोनों ही—नामवरजी और राजेंद्रजी—हिंदी कथा साहित्य के दो ऐसे तोता मास्टर हैं, जो आलोचक या लेखक की जगह 'मठ' (इंस्टीट्यूट!) बनने की हविश में ऐसे बटुकों की तलाश में रहते हैं, जो अपने कंधों पर इनकी कीर्ति ढोते रहें. दोनों के ही पास कुछ नुस्खे हैं, कुछ तरीके और कुछ हैसियत. दोनों दरबार लगाने के शौकीन हैं. देखा जाय, तो नामवरजी और राजेंद्रजी बीच का द्वंद्व, सैद्धांतिक या वैचारिक असहमतियों का न होकर, अपनी-अपनी हैसियत का द्वंद्व ज्यादा है. नामवरजी अगर इस मामले में 'विराट' पड़ रहे हैं, तो इसलिये कि कहानीकारों में उनके हाथों-बंधे गंडे की मान्यता ज्यादा हैं. 'हंस'—जैसी इस समय की अत्यंत महत्वपूर्ण पत्रिका हाथों में होते भी राजेंद्रजी को अगर नामवरजी 'बोफार्स' या 'विराट' नजर आ रहे हैं, तो इसके सूत्र उनके उसी अतीत में हैं, जिस पर से नामवरजी के हाथों की छाप को मिटाना कठिन है. अन्यथा नामवरजी को एक तरफ (मारक्वेज की) नकल और दूसरी तरफ 'विराट' दोनों एक साथ घोषित करना जरूरी नहीं होता.

यहां, राजेंद्रजी की 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' की प्रेरणा से, एक पुरानी कुमाऊंनी कहावत मुझे भी याद हो आयी है. मुहावरा है—'कबबे जोबी कबके जट्टा!' ...अर्थात सीनियौरिटी ऑलवेज़ काउंट्स!' जिसे जोग साथे 35 साल बीत गये और जिसे जोग लिए हुए हों अभी जुमा-जुमा कुल 3 साल—जाहिर हैं कि दोनों की जटाओं में भी फर्क होगा ही. लंबाई ही नहीं, गुंजलकों में भी!

कोशिशें तो राजेंद्रजी ने भी कम नहीं की हैं, हिंदी कहानीकारों को एक नयी दिशा देने की? लेकिन गलती उनसे सबसे बड़ी यही हो गयी कि प्रेमचंद की परंपरा को चुनौती देते हुए 'जनवाद और सेक्स' की जो बहस उन्होंने 'हंस' में चलायी थी, उसका न तो सभारंभ ही नामवरजी से करा पाये और न अंत ही! चलिये, माना कि शुरुआत को नामवरजी पहले ही घपले में डाल देते और अंत में कर डालते सब कुछ मिट्टी, जैसी कि राजेंद्रजी ने उनकी प्रकृति बतायी है, लेकिन 'बीच बहस में' तो कहीं फंसा सकते ही थे? अगर यह काम राजेंद्रजी ने कर लिया होता, तो फिर नामवरजी उनके लिए विराट या बोफोर्स नहीं रह जाते, क्योंकि तब यह दबाव बनाया जा सकता था कि जैसे नामवरजी ने उन्हें 'नयी कहानी' के पाखंड में शामिल रखा, वैसे ही आज नामवरजी को भी 'जनवाद और सेक्स' की बेहूदी और बकवास बहस में सानकर दिखा दिया गया! ... लेकिन, जैसा कि पहले ही कहा, अनुभव की कमी में राजेंद्रजी यह सब कर नहीं पाये और परिणाम हुआ यह कि 'जनवाद और सेक्स' की सारी बहस 'हंस' में 'जनवाद के आवरण में प्रस्तुतद्दीपक किस्म की कहानियों के प्रकाशन का औचित्य सिद्ध कर सकने की निरर्थक ही नहीं, बल्कि वाहियात कोशिशें तक ही सीमित होकर, लगभग हमेशा-हमेशा को समाप्त भी हो गयी. 'जनवादी लेखक संघ' ने राजेंद्रजी पर जितना जनवाद मढ़ा था, बदले में, राजेंद्रजी ने जनवाद पर उतना ही 'सेक्स' थोप दिया!

नामवरजी पर गलतबयानी, गोष्ठी-गाष्ठी और व्यक्ति-व्यक्ति के हिसाब से बोलने के अवसरवाद और अध्यक्ष पद हथियाने के बाद दूसरों के कथनों को मनचाहे ढंग से तोड़ने-मरोड़ने के जितने भी आरोप राजेंद्रजी ने अपने वक्तव्य में लगाये हैं, ये लगभग सभी तथ्यपूर्ण हैं, लेकिन बहस में तो शायद, नामवरजी से कभी पार नहीं पा सकेंगे, क्योंकि इसमें सचमुच संशय की कोई गुंजाइश नहीं कि नामवरजी को राजेंद्र सचमुच बहुत प्यार करते हैं, लेकिन इस प्रीति में 'भय' की भूमिका भी छोटी नहीं. एक हद से आगे वो इस 'विराट' या बोफार्से को छेड़ेंगे ही नहीं! अन्यथा एक तरफ नामवरजी पर 'पुरानी राजस्थानी कहावत' चिपकाना, दूसरी तरफ हिंदी साहित्य का विराट और बोफोर्स करार देना और तीसरी तरफ यह आरोप कि उन्हें कहानी की समझ ही नहीं,—इसे सिवा वाहियात के और क्या कहा जाय?

जैसा कि पहले ही कहा, शब्द और उसके संप्रेष्य के बीच के अंतस्संबंध के प्रति उदासीनता ही गद्यकार को ले डूबती हैं. चौंकाने की प्रवृत्ति की यह नियति है कि ज्यादा जोर फतहेबाजी पर रहता है. अन्यथा न तो नामवरजी पर 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' ही सही कही जा सकती है और न ही वो हिंदी-साहित्य के विराट ही है! बोफोर्स भी, वो राजेंद्रजी को सिर्फ इसलिये दिखाई पड़ रहे हैं कि नामवरजी के चलाये 'नयी कहानी' ट्रेडमार्क को बहुत दिनों तक इस्तेमाल करने के बाद, अब वो इसके 'बाइंड अप चार्जेज' चुकाने तक से साफ इंकार करना चाहते हैं, क्योंकि इस बीच उन्होंने 'जनवाद और सेक्स' तथा 'कहानी की अपनी और नयी तीसरी दुनिया'—इन दो ट्रेडमार्कों का खुद आविष्कार कर लिया है! अन्यथा जहां तक कहानी की समझ का सवाल है, निश्चय ही, राजेंद्र इसमें नामवरजी से बीस ही नहीं, शल्कि, शायद, तीस पड़ेंगे, क्योंकि नामवरजी की कहानी संबंधी समझ इतनी सतही है कि उनका हिंदी कहानी की आलोचना का मसीहा होने का प्रभामंडल तभी तक टिका रह सकेगा, जब तक कि हिंदी कहानी की आलोचना के क्षेत्र में 'यत्रदेशे द्रुमोनास्ति, तत्रैरंडोपि द्रुमायते' की स्थित कायम रहेगी..

कितने भी समृद्ध पाठानुभव, अध्ययन या कैसी भी निष्णात तर्क-प्रणाली से साहित्य में आलोचना की उन पारदर्शी सरणियों तक नहीं ही पहुंचा जा सकता, जहां कि आलोचना रचना की उसकी पूरी व्याप्ति तथा अर्थवत्ता में समझे जा सकने की अपरिहार्य शर्त बन जाती है. एक आलोचक को सबसे पहले जानना जरूरी है यह कि, किसी भी विधा में, रचना के बुनियादी सारतत्व क्या होते हैं और फिर यह कि विधा का संरचनात्मक ढांचा इनको कहां तक और किस रूप में प्रभावित करता है. साथ ही यह भी कि रचना की प्रकृति ही नहीं, बल्कि प्रक्रिया तक लेखक के जीवन में कैसे अंतर्ग्रंथित होती है. लेकिन जाहिर है कि रचना के सारतत्वों की पड़ताल में वक्त लगता है, और जिन्हें तोते पढ़ाने हों, उनके पास न इतना वक्त ही होता है और न ऐसी कोई चिंता ही.

नामवरजी में रचना को उसके मूल उत्सों तक जाकर पकड़ने की चिंता, और ऐसी जिजीविषा या ईमानदारी, कम ही दिखायी पड़ेगी. वो प्रायः आलोचना को रचना की गहराइयों तक ले जाने की जगह, रचना को आलोचना की ऊपरी सतहों तक लाकर, उस पर बोलते, या लिखते हैं. रचना के तलस्पर्शी विश्लेषण की जगह, उदाहृतिपरक व्याख्या की यह पद्धति आलोचक की महत्वाकांक्षा को चाहे जितनी खुराक पहुंचाती हो, रचना के वस्तुगत मूल्यांकन में बाधक ही होती है. नामवरजी की आलोचना की सबसे बड़ी खामी व्यक्तिपरकता में है और यही उन्हें आलोचना के गहरे आवर्त्तों की जगह, उसके उन सतही टोटकों में ले जाती है, जिनकी ओर राजेंद्र ने संकेत किया है. अपने मनोरथ के हिसाब से रचना के अवमूल्यन या अधिमूल्यन के जो भी खतरे हो सकते हैं, उन्हें नामवरजी की कहानी संबंधी आलोचनाओं में साफ-साफ देखा जा सकता है. प्रतिभा के साहित्येतर इस्तेमाल की यह एक स्वाभाविक त्रासदी है कि तब मूल चिंता पढ़नेवालों के गवाक्ष खोलने की जगह, खुद का चौबारा सजाने की हो जाती है. जबकि रचना हो कि आलोचना, उनकी सारी प्रासंगिकता रचना के पाठकों को ओझल अंतःसूत्रों को गोचर करने में है.

नामवरजी को अपनी चिंता हमसे अधिक है. उन्होंने खुद ही कहा है—'अगर आलोचक में बढ़ई की-सी क्षमता हो, तो औजारों के बक्से की कोई जरूरत नहीं हुआ करती, एक पेचकस ही काफी होता है.'

(वाद, विवाद, संवाद, : नामवर सिंह)

हालांकि यह सब उन्होंने अपने बारे में सत्य प्रकट करने नहीं, बल्कि कुछ चमत्कारिक कर रहे होने के मुगालते में ही कहा होगा, लेकिन कम-से-कम जहां तक उनकी कहानी संबंध आलोचना का प्रश्न है, यह उनके सचमुच 'एक पेचकस वाला मिस्त्री' होने की ही गवाही देती है.... कहानी संबंधी उनके सारे लेखों, टिप्पणियों या साक्षात्कारों अथवा वक्तव्यों में एक बड़े आलोचक की कोटि की प्रतिश्रुति, प्रक्रिया या पैठ के अकाल को साफ देखा जा सकता है.

उनसे अगर सिर्फ यही पूछ लिया जाय कि 'नयी कहानी' से उनका मतलब क्या था? या कि काल की अवधारणा चंद लेखकों को केंद्र में रखकर कैसे की जा सकती है? या कि यदि उनके द्वारा बताये गए चिन्हों के आधार पर हिंदी की कहानियां में से नयी कहानियों को. लेखकों के नामो की जगह. अंतर्वस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या शिल्पविधान की पहचान से अलग नहीं किया जा सकता, तो 'नयी कहानी' को सिवा पाखंड के और क्या कहा जाय?... तो वो इन सवालों को लेकर 'नयी कहानी' पर बोलने की जगह, खुद ही बोल जाते है

कहानियों की जगह गुटबाजी से खुद का भविष्य चमकाने को लालायित कहानीकारों, आलोचना की प्रतिभा के अकाल के बावजूद साहित्य में अपना भी नाम चलाने को व्याकुल तथा नामवरजी के प्रभामंडल से हतप्रभ प्राध्यापकों के चलते 'नयी कहानी' का झूठ हिंदी कथा साहित्य में अपनी जड़ें जमाता चला गया! ...और आज हालत है यह कि 'नयी कहानी' किसे कहेंगे, उसकी पहचान के चिह्न क्या होंगे—इसका कोई जवाब न 'नयी कहानी' पर दर्जनों शोधप्रबंध तैयार करवा चुके इन प्राध्यापक आलोचकों के पास है और न ही 'नयी कहानी' के आधाचार्य डॉक्टर नामवर सिंह जी के पास!

झूठ को इतना चला दो कि वह अनेकों को खुद के अस्तित्व की शर्त हो जाय, बस, एक इसी कूटनीति के तहत नामवरजी ने 'नयी कहानी' को एक आंदोलन का रूप दे दिया और जब यह राजेंद्र यादव-जैसे कहानीकारों के वश की बात नहीं कि वो बिना 'नयी कहानी' के झूठ को स्वीकारे नामवरजी को कोई पटखनी दे सकें.

अफसोस कि राजेंद्रजी 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' तो याद रह गयी, लेकिन यह शेर स्मरण नहीं रहा कि—लमहों ने खता की थी, सदियों ने सजा पायी!

अस्तु इतना तो तय है कि नामवरजी को लेकर राजेंद्र अपनी दूर तक कभी नहीं जायेंगे, जहां उनकी बोफोर्सी सचमुच सवालों के घेरे में आ सकती हो, क्योंकि कुल मिलाकर, हैं तो दोनों एक ही जहाज के सिंदबाद!

यह अकारण नहीं कि हिंदी कहानी के ये दोनों ही तोतामास्टर रचना के सारतत्वों और उसकी संभावनाओं को लेखक के समाज के साथ के रिश्तों या झूठ, अन्याय तथा अयथार्थ के विरुद्ध उसके संघर्ष की जगह, सामाजिक स्थितियों अथवा इतिहास में खोजने की सलाह देते पाये जाते है. इतना भली भांति जानते भी कि जब लेखक का समाज से नाभिनाल संबंध खत्म हो जाय, और वह समाज की धड़कनों को एकाग्रचित्त होकर सुनने की जगह, किसी संगठन या पार्टी से सैद्धांतिक-वैचारिक खुराक लेना ज्यादा बेहतर समझने लगे, तो कैसी भी महान ऐतिहासिक घटनाएं या उथल-पुथल—भरी सामाजिक स्थितियां उसे कोई लाभ नहीं पहुंचा सकतीं, क्योंकि रचना में सामाजिक स्थितियों या ऐतिहासिक घटनाओं के दबावों की अनुगूंज भी सिर्फ वही लेखक उत्पन्न कर सकता है, जिसने इनकी दाब को सिद्धांत नहीं, बल्कि संवेदना के स्तर पर झेला हो!

'हंस' की त्रिवार्षिकी वाली संगोष्ठी में भी कहानी की बहस को या 'नेहरू युग' के यूटोपिया, या आर्थिक-सामाजिक क्रांति के बसा गये नुस्खों और या दूरदर्शन के रुपहले पर्दे से जोड़ने की कोशिशों के, और किसी बात पर इनका जोर दिखा नहीं. जाहिर है कि इस सबके पीछे कहीं-न-कहीं यह डर मौजूद रहा होगा कि बहस को वहां तक हर्गिज नहीं जाने देना चाहिये, जहां से हमारा छद्म टूटता हो. जहां विचारधारा या जनवाद को साहित्य की कसौटी बनाने को लेकर यह सवाल उठ खड़ा हो कि जब साहित्य की शर्तों पर राजनीति नहीं की जा सकती, जब राजनीति की शर्तों पर साहित्य का तर्क क्या होगा? जहां पूछ लिया जाय कि जब घटनाओं और स्थितियों से ही कहानियां बनती हैं, तो आपको किस डॉक्टर ने कह दिया कि—खबरदार, तुम मत बनाना! जहां नयी पीढ़ी के कहानीकार खुद कहानी लिखने में चुक गये लोगों की हेडमास्टरी में कहानी कला के नुस्खे सीखने से इंकार कर दें...

आज की सचाई है यह कि साहित्य में कलावाद, प्रगतिवाद या जनवाद के नुस्खे पूरी तरह निरर्थक हो चुके हैं और कहानीकारों को जानना जरूरी है यह भी कि कहानी महाविद्यालयों या नामवरजी अथवा राजेंद्र यादवजी—जैसे तोतामास्टरों से सीखने की चीज नहीं. साहित्य की पहली शर्त झूठ को झूठ कह सकने की ताब है और अगर यह ताब नहीं, तो कहानी में आब आना असंभव है. जिन कहानीकारों में डॉ. नामवर सिंह और राजेंद्र यादव के झूठ से लड़ने का ही नैतिक साहस नदारद हो, उनसे व्यवस्था के झूठों के खिलाफ संघर्ष की उम्मीदों का हश्र क्या होगा, इतना अनुमान तो लगाया ही जा सकता है.

इतना तो निश्चित है कि हिंदी कहानी की बहस अब एक कदम भी आगे सही दिशा में तभी बढ़ सकती है, जब खुद लिखने में चुक जाने के बाद, दूसरे कहानीकारों के भविष्य को सेंक रहे होने का भ्रम बनाये रखने में जुटे इन तोतामास्टरों का टेंटुआ जरा कस के दबाया जाय ताकि इतना अहसास तो इन्हें हो ही जाय कि इनकी 'टें-टें' अब उतनी प्रामाणिक रही नहीं!

राजेंद्र की एक त्रासदी यह भी है कि वो बोलने में नामवरजी से बहुत कमजोर है. अन्यथा इलाहाबाद में भैरवजी के सम्मान-समारोहवाली कहानी-गोष्ठी में नामवरजी की अध्यक्षता से गुजर चुकने के बाद, वो 'हंस' वाली संगोष्ठी में नामवरजी को इस नैतिक दबाव में बिलकुल घेर सकते थे कि अवसर को फिर नामवरजी ही न ले उड़ें! वो चाहते, तो अंत में 'धन्यवाद' के निमित्त से ही सही, नामवरजी की उस तमाम अवसरवादिता पर वहीं आक्षेप कर सकते थे. तब 'नवभारत टाइम्स' में 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' के जरिये भड़ास निकालना जरूरी नहीं होता. क्योंकि कोई भी व्यक्ति हिंदी साहित्य का विराट और पुरानी रास्थानी की 'जन-जन का मन रखती' नायिका, दोनों एक साथ हो नहीं सकता!

नामवरजी हिंदी कहानीकारों के भविष्य निर्माता की-सी छवि इसलिये पा गये कि कहानियों की जगह गुटबाजी या आलोचकीय फतवों के जरिये स्थापित होने को छटपटाते कहानीकारों की एक पूरी कतार को वो बाकायदे काफी नजदीक से देख और उनकी नब्जें टटोल चुके थे. इसी बूते उन्होंने, बहुत जल्दी ही, यह धाक जमा ली कि कहानीकार को अपने भविष्य की संभावनाएं, कहानियां लिखने से कहीं ज्यादा, नामवरजी द्वारा खुद के कंधे थपथपवाने में खोजनी होंगी.... लेकिन 'हंस' वाली गोष्ठी में तो 'कहानी का भविष्य' विषय, नामवरजे ने नहीं, बल्कि खुद राजेंद्रजी ने प्रस्तावित किया था. तब नामवरजी के 'भविष्यवाचन' पर आपत्ति उठाने का हक उन्हें कैसे होगा?

लगता है, 'हंस' के संपादक की हैसियत से राजेंद्र हिंदी कहानीकारों के भविष्य-निर्माण के ठेके में नामवरजी से 'बड़ी पत्ती' अपनी चाहते हैं, क्योंकि अब उनके पास 'हंस' है! ...और इसी [illegible] 'पशु-पक्षियों के जीवन में सेक्स' की तर्ज पर 'जनवाद और सेक्स' की बहस चलाने के अलावा, 'हंस' की संपादकीय टिप्पणियों में हिंदी कहानी के हेडमास्टर होने की-सी हरकतें उन्होंने जाने कितनी बार की है, ... बिना यह फिक्र किये कि कहानी में 'मार्क्सवाद और सेक्स' के 'टू इन वन' सिद्धांत को तो कौन जाने खुद महाशय फ्रायड भी पचा पाते, या नहीं!

हालांकि 'तिरिया चरित्तर' को 'जनवादी कहानी' माननेवाले राजेंद्रजी ने 'कामरेड का कोट' को 'जनवादी कहानी' कहीं नहीं कहा है, फिर भी इसमें शक नहीं कि राजेंद्र, नामवरजी की तुलना में, कहानी की बेहतर समझ ही नहीं रखते, बल्कि बेईमान भी कम हैं और साहित्य के सवालों के प्रति बेचैनी भी उनमें नामवरजी से ज्यादा है. नामवरजी तो दूसरों को बेचैन करके चैन की वंशी बजाने की कला में दक्ष हैं, हालांकि पलड़ा यहां (यानी बंशी बजाने में) राजेंद्रजी का भारी होना चाहिये था, क्योंकि संगीत में घराने की भूमिका अहम मानी जाती है!

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'हंस' के पूरी भव्यता और स्तरीयता में प्रकाशन का जोखिम उठाकर हिंदी कहानी जगत में राजेंद्रजी ने एक ऐतिहासिक महत्व का काम किया है, और इसके लिये उनको [illegible] साधुवाद भी कम ही पड़ेंगे, लेकिन इसका क्या करें कोई कि कहानी पर बोलने ही नहीं, बल्कि लिखने के मामले में भी उनका नामवरजी से पार पाना कठिन ही होगा. हालांकि जहां तक अध्ययन और स्मृति का सवाल है, और उदाहृतियां उपस्थित करने की क्षमता का, राजेंद्र भी कुछ कम नहीं. गद्य की धार को भी वो खूब समझते हैं और, इसीलिये, उसकी [illegible] को भी, लेकिन उनमें शब्द और विचार को समतान या समरस करने की चिंता प्रायः नदारद ही मिलती है. तर्क या विचार की बेफांक निरंतरता के अभाव को भी उनके गद्य में साफ देखा जा सकता है, जबकि रचना ही नहीं, बल्कि आलोचना की भाषा में भी शब्द और विचार अथवा शब्द और संप्रेष्य के बीच दरारों का होना इस बात का स्पष्ट सबूत होता है कि अभी दिल्ली दूर है! राजेंद्रजी के पास शब्दों के भंडार में कमी नहीं, लेकिन इतना तय है कि शब्दों के [illegible] इस्तेमाल की चिंता उनमें कम है. शब्दावली और भाषा एक ही चीज नहीं हैं. भाषा में स्फटिकता [illegible] और अनुभव के टटकेपन में से आती है, ऊपरी [illegible] पर प्रभावी दिखती शब्दावलियों से नहीं.

राजेंद्र यादव बताते हैं कि—'बात यहां होनी चाहिये थी कि जिंदगी और कहानी के आपसी द्वंद्वात्मक रिश्ते क्या है.' कैसे रचनाकार अपनी कला में यथार्थ का अतिक्रमण करता है, या विरूपण के द्वारा वृहत्तर यथार्थ तक पहुंचता है. जाहिर है कि इस पर नामवरजी भी, पान चुभलाते हुए, सिर्फ मुस्कुरा ही सकते हैं.

राजेंद्रजी को क्या इतना भी पता नहीं कि 'जिंदगी और कहानी के आपसी द्वंद्वात्मक रिश्तों'—जैसी कोई चीज कहीं नहीं होती. होती भी हो, तो कहानी से इसका कोई वास्ता कतई नहीं होता. कहानी में द्वंद्वात्मक रिश्तों की भूमिका जरूर होती है, लेकिन कहानी लिख लिये जाने के बाद पलटकर, जिंदगी से खुद के द्वंद्वात्म रिश्ते कायम करते फिरने का [illegible] कभी नहीं करती. कहानी में जिंदगी के द्वंद्वात्मक रिश्तों या रिश्तों के जीवन में उपस्थित होने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वंद्वों का चित्रण जरूर होता है, लेकिन यह काम कहानी नहीं करती, लेखक करता है. कहानी तो कृति की जगह व्यक्ति की शक्ल में पेश करना ठीक नहीं. यह एक तरह का छलावा है.

दूसरी बात, रचनाकार अपनी कला में गहराई यथार्थ नहीं, बल्कि यथार्थ की खुद की समझ के सीमित दायरों का अतिक्रमण करके लाता है. यथार्थ की खुद की समझ के सीमित दायरों का अतिक्रमण करके लाता है. यथार्थ के अतिक्रमण का मतलब तो सीधे शून्य (गड्ढे) में जा गिरना ही हो सकता है. कहानी की समझ के मामले में इस तरह के गड्ढे खतरनाक ही कहे जा सकते हैं. यथार्थ कभी भी अलग-अलग, स्वच्छंद टुकड़ों में नहीं हुआ करता. स्वयं के अनुभव को यथार्थ के एक व्यापक फलक से जोड़, या नहीं जोड़ पाने में ही रचनाकार की परीक्षा हुआ करती है. लेकिन विरूपण के द्वारा यह कार्य असंभव है, क्योंकि विरूपण से सिर्फ विकृति उत्पन्न होती है, जबकि यथार्थ के विस्तार को किसी बड़े संदर्भ या प्रसंग में पकड़ने की दृष्टि सिर्फ तभी आ सकती है किसी रचनाकार में, जब वह अपनी समझ, संवेदना और अनुभूति के सीमित दायरों के अतिक्रमण ही प्रक्रिया से गुजर रहा हो.

भाषा को व्याकरण ही नहीं, बल्कि संप्रेषण की दृष्टि से भी संगत, प्रभावी तथा अचूक बनाने के लिये शब्दावलियों की सिर्फ ऊपरी परत को ही देख लेना काफी नहीं होता. बिना अर्थ की स्फटिकता के, शब्दों में, अन्विति कभी नहीं आ सकती. 'वाक्' को 'अर्थ' के समतोल बनाये बिना सही भाषा लिखना असंभव है.

राजेंद्रजी से अब सिर्फ एक सवाल और कि यह कहानी की 'अपनी नई तीसरी दुनिया' कौन-सी होगी? क्या कहानी की भी सचमुच कई-कई दुनियाएं हुआ करती हैं? या कि यह राजनीति के 'तीसरी दुनिया' के नारे की ही प्रतिच्छाया-मात्र है? लेकिन तब नामवरजी पर मारक्वेज की नकल के आरोप का क्या होगा?

राजेंद्रजी इन सवालों का जवाब देने की तैयारी करें, इसके पहले यह एक बात और कह देना जरूरी जान पड़ता है कि मारक्वेज आदि के 'तीसरी दुनिया के साहित्य' का मतलब भी 'साहित्य की तीसरी दुनिया' कतई नहीं होता!

सवाल, लगे हाथों, यह भी कर लिया जाय कि—'कहानी की इस अपनी नयी तीसरी दुनिया' की शुरुआत कहां से मानी जाय? क्या खुद राजेंद्रजी की 'हनीमून' से ही?

सवाल, लगे हाथों, यह भी कर लिया जाय कि—'कहानी की इस अपनी नयी तीसरी दुनिया' की शुरुआत कहां से मानी जाय? क्या खुद राजेंद्रजी की 'हनीमून' से ही?

एक बात और. कहानी की 'अपनी नयी तीसरी दुनिया' की उद्घोषणा करते वक्त, शायद, राजेंद्रजी को ध्यान रहा नहीं कि कहानी की पहली दुनिया हो, दूसरी-तीसरी हो कि आखिरी नयी दुनिया—जहां भी कहानी के साथ 'नयी' शब्द जुड़ेगा, 'नयी कहानी' आंदोलन के तात जनक नामवरजी की छाया भी वहां विद्यमान रहेगी जरूर! वैसे, हमारी राय में इन दिनों की दुनियाओं में ज्यादा फर्म नहीं. एक कहानी की आलोचना में की दुनिया में बांझ होता जा रहा है, तो दूसरा कहानी के लेखन की दुनिया में!

जहां तक हिंदी कहानी पर बहस का सवाल है, इतना तो अब साफ देखा जा सकता है कि सिवा चोंचलेबाजियों के, न गंभीरतापूर्वक आलोचना लिखने में नामवरजी को कोई दिलचस्पी है और न दूसरे कहानीकारों पर हेडमास्टरी गांठने की जगह, खुद कहानियां लिखने में राजेंद्रजी की. ...राजेंद्र भी जानते हैं कि अगर कहानीकारों के द्वारा, कहानी के तोतामास्टरों के गुरुडम में खुद को भी स्थान खोजने की जगह, इसके प्रति सवाल उठाने की पहल की गयी होती, तो कम-से-कम चर्चा और बहस की स्रोतस्विनी तो जाने कब की या इन दोनों को किनारे की रेत में फेंक चुकी होती और यह इनके गुरुडम को!... किंतु चूंकि हिंदी कहानी के दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है, और चूंकि अपनी-अपनी 'स्रोतस्विनी', यानी दूसरों पर सवारी गांठने की हैसियत, दोनों के ही पास मौजूद है, इसीलिये बरकरार हैं, गाहे-बगाहे अपना-अपना नाम और नेतागिरी चमकाने को मनचाहे भाषण झाड़ते चलने की सहूलियतें भी! अस्तु, इस प्रसंग में, हमारी तरफ से एक और पुरानी कुमाउंनी कहावत इन दोनों तोताचार्यों के 'पेशेखिदमत' है...

कहावत इस प्रकार है—पूंछ झड़ गयी, नाम चंवरिया! □

साहित्य के प्रति चाव

पहली बात तो यह कि साहित्य के प्रति चाव अभी भी है, विरल हो, यह अलग बात है और यह चाव साहित्य के अध्यापकों या साहित्य जीवियों में उतना नहीं, जितना अन्य लोगों में है. मुझे कई डाक्टर मित्र मिले, इंजीनियर मित्र मिले, वकील मिले, अधिकारी मिले, दूरदराज देहातों में काम करने वाले सिंचाई कर्मी मिले, वे पुस्तक खरीदते हैं, बैठकखाने की शोभा बढ़ाकर पुस्तक संपत्ति का भी नजारा प्रस्तुत करने लिए नहीं, पढ़ने के लिए. उनसे मैंने पूछा आपको क्यों साहित्य का चाव है? दूरदर्शन तो सारी जरूरतें पूरी कर देता है, एक अधपढ़ पाठक का उत्तर था दूरदर्शन तो आंख को टिकने नहीं देता, किताब की पंक्ति पर तो आंखें विलम सकती हैं, पीछे पलट कर देख सकती हैं, पढ़ते-पढ़ते आंखें नम हो जायें तो किताब तो प्रतीक्षा कर सकती है, दूरदर्शन यंत्र कहां करेगा! मैंने सोचा, ये बिचारे पाठक महानगरीय चूहा दौड़-की गिरफ्त में नहीं आये हैं. इसलिए इत्मीनान से पढ़ने की बात करते हैं, पर मैंने श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी जैसे पाठक को देखा, जो भारत सरकार के महालेखा नियंत्रक होते हुए भी किताब की दूकान पर नयी किताब की खोज में चले जाते हैं, तो लगा कि साहित्य के लिए चाव संस्कार से बनता है, वह संस्कार हमारे देश में अभी भी है, कई वर्ष हुए मेरे एक अमरीकी कवि मित्र ने कहा, (उस समय अमरीका में राष्ट्रपति पद के चुनाव का माहौल गर्म था और समूह संचार साधनों में प्रचार की गंदगी उड़ेली जा रही थी), तुम लोग भाग्यशाली हो, तुम्हारे यहां भाषा की पवित्रता की चिंता है, तुम्हारी स्रोत-भाषा का नाम ही संस्कृत है, तुम्हारे यहां भाषा कॉलगर्ल नहीं होने पायेगी. आज उनकी बात विचारता हूं तो बावजूद भाषा के प्रति असावधानता के और भाषा के निरूपीकरण के प्रति तथाकथित सर्जनात्मक उत्साह के अभी भी भाषा हमारे देश में पवित्र है, वचन का अभी भी मोल है और इसलिए जो वाचिक परंपरा के जितना ही समीप है, उतना ही वह, कितना ही अनपढ़ क्यों न हो, संस्कारी है. आज भी गांव में एक दो ऐसे प्रश्नकर्ता मिल जाते हैं जो रेडियो पर सुनी मेरी वार्ता से उद्धरण देते हुए अर्थ पूछते हैं, अपका अभिप्राय यहां क्या है. जिस जनता ने कबीर रैदास को अपने धंधे को करते-करते गाया, धंधे को धन्य किया, चक्की पर सूर-तुलसी के पद गाये, खेत खलिहान में ब्रजभाषा के छंद सुनाये, उसकी श्रवण-मनन-स्मरण शक्ति अभी भी क्षीण नहीं है. उसने भारत-भारती अपने कंठ में उतारी थी, जाने कितने राष्ट्रप्रेम के गीत उसके कंठ से मुखरित होकर दिशाओं को निर्भय करते हुए गूंजे थे, वह क्या अज्ञेय, मुक्ति बोधा, केदार, नागार्जुन को नहीं रख पायेगी अपने कंठ में? इस पर गहराई से विचार करें तो लगेगा कि चाव पैदा करने के लिए नहीं उपक्रम हम लोग नहीं कर रहे हैं. अंग्रेजों की नौकरशाही के जमाने में प्राइमरी स्कूल तक मध्ययुग का ही साहित्य नहीं, बीसवीं सदी के उत्तम लेखकों कवियों का साहित्य पहुंच सका था, मैंने स्वयं एक प्राइमरी स्कूल से ही 'उद्धवशतक' और 'आंसू' लेकर पढ़ा था, जब मैं दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था. आज बजट की वृद्धि के अनुपात में अच्छे साहित्य को गांव तक पहुंचाने के लिए क्या किया जा रहा है? □

['अक्षरा-15' में श्री विद्यानिवास मिश्र के लेख 'साहित्य का भविष्य' से]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी : एक नया प्रयोग

□ डा. रामजन्म शर्मा

'देवनागरी : एक नया प्रयोग'
लेखक-महेश्वर प्रसाद
मूल्य : 75 रुपये
प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

पुस्तक 'देवनागरी : एक नया प्रयोग' नागरी लिपि के वर्तमान स्वरूप की प्रासंगिकता का तर्कपूर्ण विवेचन प्रस्तुत करती है. विद्वान लेखक ने नागरी लिपि संबंधी वर्षों के अपने चिंतन को बहुत ही श्रम पूर्वक लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करने की चेष्टा की है. वस्तुतः देवनागरी लिपि को लेकर उसकी वैज्ञानिकता और प्रयोग आदि पर समय-समय पर विवाद चलता रहा है. इसी क्रम में कुछ विद्वानों ने रोमन लिपि की भी चर्चा की है. रोमन एक विदेशी लिपि है अतः रोमन के पक्ष में बहुत कम भाषा शास्त्रियों ने सहमति प्रकट की है. भारत में ही प्राचीन और आधुनिक लिपियों की संख्या लगभग 22 है जिनका प्रयोग भारत में लिखने के लिए होता है. इनमें ब्रहमी, खरोष्टी, गुप्त कुटिल, देवनागरी, शारदा, बांगला, तेलुगु, कन्नड़, ग्रंथ, कलिंग, तमिल, वहलुचु, मलयालम, गुरुमुखी, गुजराती, मैथिली, मोड़ी, कैथी, महाजनी तथा फारसी और अंग्रेजी की रोमन लिपि आदि प्रमुख हैं.

इन लिपियों में कुटिल, गुप्त,खरोष्टी, ब्राहमी लिपियों का लेखन समाप्त हो गया है किंतु इन लिपियों का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है. महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक शिलालेखों एवं ऐतिहासिक दस्तावेजों को पढ़ने के लिए इन लिपियों के विशेषज्ञ आज भी हमारे देश में मौजूद हैं.

आज देवनागरी लिपि का संसार में तीसरा स्थान है. देवनागरी में हिंदी, संस्कृत, मराठी और नेपाली भाषा को लिखा जाता है. इस प्रकार दुनिया में करीब 25-30 करोड़ लोग लेखन में देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं. यदि इनमें बोलियों का लिखना भी शामिल कर लिया जाए तो इसके प्रयोग करनेवालों की संख्या काफी बढ़ जाएगी. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि का संसार की लिपियों में अपना एक विशेष स्थान है.

पुस्तक के लेखक महेश्वर प्रसाद ने नागरी लिपि के गुण-दोषों का इस पुस्तक में सम्यक विवेचन करने का प्रयास किया है. बात उन्होंने रोमन से प्रारंभ की है, किंतु इस संदर्भ में उन्होंने न तो नागरी लिपि को अस्वीकार किया है और न रोमन को ही स्वीकार किया है. फिर भी अनुसंधानकर्ता लेखक ने रोमन के पक्ष में कुछ बातों का उल्लेख किया है.

प्रायः विद्वानों ने एक स्वर से रोमन को दोषपूर्ण लिपि बताया है. कहा जाता है कि प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्ड शा ने तो अपनी सारी रायल्टी ही रोमन को अच्छा और वैज्ञानिक बनाने के लिए दे दी थी.

पुस्तक के खंड तीन से नागरी लिपि के विकास एवं गुण दोषों का विस्तृत विवेचन किया गया है. वस्तुतः नागरी लिपि को लेकर समय-समय पर उसके सुधार की संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया जाता रहा है. सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय बात तो यह है कि "क्या नागरी लिपि में सचमुच कुछ विशेष कमियां हैं?"

कमियों के नाम पर जिन बातों का प्रायः उल्लेख होता रहा है उन्हीं की ओर इस पुस्तक में भी संकेत किया गया है. पांचवें दशक के अंतिम वर्षों में नागरी लिपि के संदर्भ में कुछ सुझाव लागू किए गए थे, जिन्हें बाद में वापस ले लिया गया था. जैसे बड़ी ई (की) छोडी इ की. दीर्घ और ह्रस्व के स्थान पर 'कि' के स्थान पर 'की'.

इस पुस्तक में नागरी लिपि की जिन कमियों का उल्लेख किया गया है, उनमें कुछ निम्नलिखित हैं–

"नागरी वर्णों में यह भी कमी है कि कुछ के -रूप दूसरे वर्णों से इतने मिलते-जुलते हैं कि अगर सफाई से लिखे या छापे नहीं जाते हैं तो भ्रम पैदा हो सकता है–जैसे घ, ध, भ, म, ख र व आदि."

"रोमन और विशेषकर फारसी लिपियों की तुलना में यह भी मानना पड़ता है कि नागरी में हाथ से लिखे जाने में गति बहुत कम हो जाती है और केवल एक शब्द लिखने के लिए भी कलम कई बार कागज से उठाना पड़ता है."

इसके साथ ही आशुलिपि और टंकण आदि में असुविधा की ओर संकेत किया गया है.

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार द्वारा देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण 1983 पर विचार-विमर्श किया गया है उसे लागू करने का प्रयास भी किया जा रहा है. उनके सुझावों से नागरी लिपि की कुछ भ्रांतियों का निराकरण भी हो रहा है. पुस्तक के लेखक ने स्वयं ही इस बात को स्वीकार भी किया है.

पुस्तक में नागरी लिपि के सुधारों के बारे में जो प्रश्न उठाए गए हैं, उनमें से कुछ सुझाव इस प्रकार हैं–

"अगर अलग स्वरों के लिए स्वतंत्र चिह्न छोड़कर मात्रा ही लिखें, उदाहरण के लिए 'ई' की जगह 'अी' लिखें और अगर कोई ऐसी प्रथा हम अपनाएं कि मात्रा ऊपर नीचे लिखने की जगह हमेशा व्यंजन के बाद लिखें जैसे अब भी 'ा', 'ि' और 'ी' की मात्रा लिखी जाती है तो नागरी और किसी भी अल्फाबेटिक लिपि में कोई अंतर नहीं रह जाता है."

"सभी स्वतंत्र स्वरों को दर्शाने के लिए अलग चिह्नों को छोड़कर 'अ' के साथ संबंधित मात्रा लिखा जाए. अर्थात 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ', 'ऋ', 'ए', 'ऐ' की जगह 'आ', 'ओ', 'औ' की तरह 'अि', 'अी', 'अु', 'अू', 'अृ', 'अे' और 'अै'."

"संयुक्त व्यंजनों की प्रथा को बिल्कुल समाप्त करके हलंत का प्रयोग करें. संयुक्त के स्थान पर संयुक्त, व्यंजनों के लिए व्यंजनों. समाप्त के समाप्त और प्रयोग के प्रयोग आदि."

उदाहरण स्वरूप इसी पुस्तक में खंड छह, खंड सात, खंड आठ और खंड नौ में लेखक द्वारा सुझायी गयी प्रयोगिक लिपि का ही प्रयोग किया गया हैं–

मात्राओं के लिअे नये प्रस्तावित करने से पहले यह बेहतर होगा कि हम नागरी को आधुनिक, पूर्ण विकसित लेकिन फिर भी सरल बनाने के अनुद्देशय से अुसमें क्या-क्या चिह्न आवश्यक समझते हैं, अुस ओर ध्यान दें."

इसी प्रकार के अन्य कई सुझाव नागरी लिपि को अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रस्तुत पुस्तक में दिए गए हैं. पुस्तक में ऐतिहासिक महत्त्व के अनेक चार्ट है. पुस्तक में नागरी लिपि का इतिहास द्रष्टव्य है. पुस्तक पठनीय है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेखव की कहानियां

□ काला पुरोहित : चेखव की कहानियां
□ अनुवादक : अमृतलाल नागर
□ प्रकाशक : राजपाल एंड संज कश्मीरी गेट, दिल्ली.
□ मूल्य : 25 रुपये.

चेखव की कहानियों के बारे में लिखते हुए गोर्की ने एक जगह कहा है, ''चेखव की कहानियां पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो तुम शरद ऋतु के उदास अंतिम दिनों में टहल रहे हो, जब वायु इतनी पारदर्शी होती है कि उसमें बचे पेड़, तंग मकान और धूमिल से लोग स्पष्ट दिखायी देते हैं.''

गोर्की की यह टिप्पणी कितनी सटीक है इसे चेखव की मृत्यु के 84 वर्ष बाद हिंदी में प्रकाशित हुए उनके कहानी संग्रह 'काला पुरोहित' की कहानियों को पढ़कर हिंदी भाषी पाठक सहजता से जान सकते हैं. ये कहानियां शरद ऋतु के अंतिम दिनों की वायु जितनी ही पारदर्शी हैं, जिनमें जीवन के सच व सच को खोजने की कोशिश को अंतरंगता से महसूस किया जा सकता है.

चेखव की कहानियां आम जिंदगी के इतना अधिक करीब हैं व उससे इतना अधिक जुड़ाव स्थापित करती हैं कि किसी भी देश के किसी भी समाज में उनकी प्रासंगिकता पर कोई विशेष फर्क पड़ता नहीं दीखता. और शायद यही कारण रहा कि उनके जीवनकाल में ही यूरोप की इक्कीस भाषाओं में उनकी कहानियां अनुवादित हो चुकी थीं और आज वे पूरी दुनिया में पढ़े जाते हैं.

'काला पुरोहित' संग्रह के साथ एक खास बात यह है कि इसका अनुवाद हिंदी के वरिष्ठ कथाशिल्पी अमृतलाल नागर ने किया है. एक लंबी व छह छोटी कहानियों को नागरजी ने इस संग्रह में सम्मिलित किया है. हर कहानी अपने एक खास रंग में मौजूद है. एक मामूली घटना के माध्यम से एक बड़े उद्देश्य की पूर्ति कहानी में कैसे की जा सकती है चेखव इसे बखूबी जानते थे. संग्रह में सम्मिलित कहानी '**शिक्षा**' को पढ़कर इस बात को आसानी से समझा जा सकता है. शिक्षा तभी अधिक प्रभावी व आकर्षक हो सकती है जब उसका रूप ग्रहण करने वाले की रुचि व मनोभावों के अनुकूल हो, इस बात को उक्त कहानी में निहायत सादगी व रोचकता के साथ निरूपित किया गया है. पिता अपने पुत्र को जब एक बात उपदेश के रूप में समझाना चाहता है तो पुत्र उसे सुनना ही नहीं चाहता, किंतु वही बात कहानी के रूप में कहने पर वह उसे तुरंत ग्रहण कर लेता है. इसी तरह एक अन्य कहानी '**समस्या**' में कुछ चरित्रों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों का उकेरा जाना भी काफी प्रभावशाली है. इस कहानी को पढ़कर चेखव के शिल्प के इस पहलू पर भी गौर जाता है कि वे खुद कहानी में उपस्थित रहने की कोशिश करने के बजाय पात्रों के मनोभावों को उन्हीं के जरिये प्रदर्शित करवाकर उन्हें अधिक जीवंतता प्रदान करते हैं. '**बिल्ली के बच्चे**' कहानी में यह बात पुनः पुष्ट होती है. निहायत उम्दा कहानी है यह, जो चेखव की व्यापक जीवनदृष्टि को भी चिन्हित करती है.

'**दो घटनाएं**' नाम से चेखव की एक अन्य महान कहानी भी संग्रह में शामिल है. एक डाक्टर, जिसका बेटा इन्हीं क्षणों में मृत्यु का ग्रास बना है, के पास एक व्यक्ति आता है और उससे निवेदन करता है कि वह उसकी प्रेमिका को मौत के मुंह से बचाने के लिए उसके साथ चले. डाक्टर की मनःस्थिति अनुकूल न होने के बावजूद वह मनुष्यता की दुहाई तथा उस व्यक्ति के तमाम प्रयत्नों के फलस्वरूप अंततः उसके साथ जाता है. किंतु गंतव्य पर पहुंचने पर पता चलता है कि व्यक्ति की प्रेमिका उसे छोड़कर उसके ही एक परिचित के साथ चली गयी है. उसके बाद डाक्टर उस व्यक्ति को कोसता है कि उसने उसे उतनी दूर लाकर व्यर्थ ही परेशान किया. सामान्य मानवीय लक्षणों की उम्दा पहचान इस कहानी में लेखक ने की है.. चाहे आदर्शवाद के आईने में देखा जाये अथवा वैज्ञानिक तर्कों की कसौटी पर परखा जाये, किंतु परदुख के समक्ष निजी दुख ही अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है. इस बात को लेखक ने सरलीकृत न करते हुए पूरी ऊंचाई पर जाकर पहचानने की कोशिश की है तथा बिना किसी संदेश अथवा उपदेश की भाषा में कहे एक विचार के रूप में पुष्ट किया है.

संग्रह की सबसे बड़ी कहानी '**काला पुरोहित**' एक दार्शनिक की कहानी है. आसपास के जीवन से निर्विकार अनादि सत्य की खोज में लीन, एकांगी जीवन जीते और खुद के अंतर्द्वंदों से जूझते हुए एक प्राणी की कहानी, जो अंत में एक निहायत एकाकी मौत का शिकार होता है. यह कहानी एक खास समुदाय के संदर्भ में समसामयिक कहानी है, जिसकी एक विशेषता यह है कि यह चेखव की अन्य कहानियों से अलग स्वभाव की कहानी है. कुछ महान बनने के इच्छुक लोगों की कहानी, जिनके लिए सत्य आसपास के जीवन में न होकर कहीं अमूर्तन में विद्यमान है. कहानी के नायक के ऐसे अलौकिक चिंतन से जन्य असहजता ही अंत में उसे नष्ट करती है.

चेखव की कहानियों के इस अनुवाद की एक विशेषता यह है कि अमृतलाल नागर ने इसमें अनुवाद के चलताऊ ढर्रे से बचने की खास कोशिश की है. मसलन शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार किया गया है कि पात्रों के नामों के अलावा कुछ भी विदेशी-सा न लगे. किंतु अपने इस प्रयास के लिए नागरजी को भले ही कितना भी परिश्रम क्यों न किया हो लेकिन अपनी इस क्षेत्र में ख्याति के अनुरूप भाषागत् सहजता वे इन अनुवादों में नहीं ला पाये. मगर इसके बावजूद चेखव की कहानियों को पढ़ने का जो सुख है, वह इस संग्रह की कहानियों में ज्यों का त्यों बरकरार है. एकरसता कहीं छू भी नहीं पाती है. □

□ संगम पांडेय

ओरछा में केशव जयंती समारोह

महाकवि केशव की जन्म स्थली ओरछा (टीकमगढ़) में पिछले 3 अप्रैल को केशव जयंती समारोह का आयोजन किया गया. समारोह का उद्घाटन पूर्व मुख्यमंत्री श्री कैलाश जोशी ने किया और अध्यक्षता कृषि एवं सहकारिता मंत्री लक्ष्मी नारायण शर्मा ने थी. खजुराहो क्षेत्र की सांसद कु. उमा भारती ने उपस्थित साहित्यकारों का स्वागत किया.

इस अवसर पर डा. राममूर्ति त्रिपाठी ने केशव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला. मुख्य अतिथि ने साहित्य का पांच सौ एक रुपये का केशव पुरस्कार डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी को उनके बुंदेली शब्द कोष के लिए तथा संगीत का इतनी ही राशि का राय प्रवीण पुरस्कार श्री पन्नालाल जैन को सितारवादन के लिये दिया.

□ रामस्वरूप दीक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मिनखखोरी' की कहानियां

कहानी संग्रह : 'मिनखखोरी'
कथाकार : यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'
प्रकाशक : अरुण प्रकाशन, ए-47, अमर कालोनी, लाजपत नगर, नई दिल्ली-110024 मूल्य : 40 रुपये

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' लंबे समय से कथा लेखन करते चले आ रहे हैं. **'मिनखखोरी'** उनकी राजस्थानी कहानियों का संकलन है. चूंकि यहां अनुवाद का काम स्वयं कथाकार ने किया है इसलिए रचना और एक तरह से पुनर्रचना का, पठनीय आनंद एक साथ मिलता है. यह कहना ठीक नहीं होगा कि सभी कहानियां नारी चरित्रों को करीब से देखती हैं... पर अधिकांश ऐसी ही रचनाएं हैं जो औरत को उसके समूचेपन में समझने की नज़र देती हैं.

'गोमली' जैसी कहानी की औरत अपने पति को छोड़ विधुर प्रेमी की पत्नी बनने का निर्णय लेती है तो इसलिए कि उसका पति उसे 'वस्तु' समझ बैठा है.

यहां धांधू नाम का साईस गोमली से प्रेम जरूर करता है पर गोमली उसे सहज ही में स्वीकार नहीं कर लेती. अपने होने का एहसास बराबर उसके साथ बना रहता है. पर यही चीज **'सतलड़ा हार'** की केसरदे के व्यक्तित्व में नहीं है जिसे विनिमय की वस्तु समझ लिया गया है. सामंती परिवेश की गंध यहां भी मौजूद है पर कथाकार उसके टूटने की ओर भी संकेत करता दिखाई दे रहा है. इस कहानी का सामंत चरित्र ठाकुर भुर्जसिंह अपनी ही बेटी के बदले तीन विलायती पंखे लेकर समाज में अपनी इज्जत बढ़ी महसूस करता है. बाद में यही व्यक्ति अपनी पत्नी केसरदे को सतलड़े हार के बदले दे देता है. इस कहानी में गौरतलब चीज यह है कि बूढ़ी ठकुरानी को जैसे ही इस गलीज हरकत की जानकारी मिलती है, वह ठाकुर के पास आकर अपना विरोध प्रदर्शित करती है. यह विरोध सफल भले ही न रहा हो, पर इस बात की सूचना तो देता ही है कि औरत पर हो रहे हर तरह के अत्याचार को औरत मुंह सिये बरदाश्त ही नहीं करती चली जायेगी. जिस हार को लेकर ठाकुर फूला नहीं समाता उस पर बूढ़ी ठकुराइन थूकने की बात करती है. सामंती व्यवस्था के भरभराकर टूटने का संकेत कहानी के अंतिम अंश में आया जरूर है पर वह संकेत भर ही है... कहानी का अंग बन कर नहीं छा सका है. जब कि ठीक इसके विपरीत **'दीवारें ही दीवारें'** कहानी में औरत मानसिक तौर पर निर्णय के बहुत करीब पुहुंचकर भी सिर्फ सोचकर रह जाती हैं. हां, उसे यह विश्वास जरूर है कि एक दिन, उसे घेर कर खड़ी तमाम दीवारें टूटेंगी अवश्य. उसे हर उस चीज से प्यार की चाह है जो स्वच्छंद है. कहानी का यह अंत इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह उस मानसिक तैयारी की ओर संकेत करता है जो सहज रूप में क्रमशः व्यवहार में बदलेगी. यहां भी औरत पुरुष के उसी सामंती रवैये के विरोध में खड़ी है जो उसे मनचाहे तौर पर इस्तेमाल करना चाहता है.

'एक और नगर में' की पत्नी एक खुशमिजाज औरत है... पर सैडिस्ट पति से निजात मिलने की कोई आशा उसे नहीं दिखती. विद्रोह की चिंगारी उसके भीतर फूटने को है.... पर यथार्थ इसके ठीक विपरीत है.... ऐसे में अपनी ओर से जबर्दस्ती उस पर कोई निर्णय न थोपकर कहानीकार ने बड़ा काम किया है.

शीर्षक कहानी **'मिनखखोरी'** एक ऐसी औरत से परिचित कराती है जो हवा और धूप बनकर जीना चाहती है. उसे मरद जात के उस व्यवहार से सख्त घृणा है जो औरत को महज नफे के तौर पर इस्तेमाल करने का रास्ता खोलता है. दरअसल, यह औरत जीवन में समर्पण को विशेष महत्व देती है. वह स्वयं तो प्रेमी के प्रति समर्पिता है ही, उससे भी उसी रूप में समर्पण चाहती है. पर प्रेमी उसकी इस स्थिति में अतिरेक के दर्शक करता है... यही वजह है कि वह घबरा भी उठता है. इस कहानी में औरत अपने आप में स्पष्ट है—न वह झूठ बोलती है, न सतियों का स्वांग रचती है. वह जानती है कि लोगों के बीच उसे जरूर छिनाल माना जाता है.... पर अपने हिये के बीच वह सती है. वह निधड़क साफगोई में यकीन करती है.

कुछ कहानियां संग्रह में महज दृश्य संयोजन करती दीखती हैं.... पर कुछ प्रतीक कथा की तर्ज पर (**'आखिरी पुतली'**) इस बड़े सच को रेखांकित भी करती हैं कि बिना बहुमत के सिंहासन पर कोई नहीं बैठ सकता. **'खोल'** इस संग्रह की ध्यान आकर्षित करने वाली कहानी है. जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति करने की गर्ज से हिप्पी जीवन-शैली में एक दिन गुजारने के लिए घर से निकले युवक की कहानी है 'खोल'. बेहद सहज अंदाज में प्रभावित करने वाली यह कहानी इस सच को गहराई से रेखांकित करती है कि संस्कृति ओढ़ लेने की चीज नहीं है.

यादवेंद्र शर्मा चंद्र के पास वह शक्ति तो है ही कि कहानी पाठक को बांधकर रख ले... पर शायद यही कारण है कि उनसे अपेक्षाएं भी बढ़ जाती हैं कथा-जगत की. बौद्धिक बोझिलता से एकदम अलग हटकर उनकी कहानियां यदि अपना विशेष प्रभाव बना सकी हैं, तो यह उनके कहानीकार की सहजता का प्रमाण है. पर साथ ही वे कहीं-कहीं सतह पर चलते भी दीखते हैं... जिससे कहानियों की एकरेखीयता के बढ़ने का खतरा रहता है. **'बदलते संबंध'** और **'ग्रहण करती दृष्टि'** इस तरह की ही कहानियां हैं. बावजूद इसके, यह भी सच है कि यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' के पास विराट अनुभव संपदा है और अभिव्यक्ति के अलग-अलग अंदाज भी.

संभवामि युगे युगे

गोकुल मथुरा द्वारिका

यानी महाभारत के कथा नायक युग पुरुष कृष्ण के जीवन, दर्शन और कर्म की जीवन्त प्रस्तुति

गुजराती के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार रघुवीर चौधरी का बहुचर्चित उपन्यास गोकुल मथुरा द्वारिका अब हिंदी में भी उपलब्ध 'राधाकृष्ण' का गौरवशाली प्रकाशन

ऐतिहासिक, अविस्मरणीय, संग्रहणीय

आकर्षक छपाई, मजबूत जिल्द
डिमाई आकार में लगभग 800 पृष्ठ
मूल्य : 250 रुपये

विशेष छूट

30 जून 1990 तक मात्र 150 रुपये भेज कर यह उपन्यास रजिस्टर्ड डाक द्वारा घर बैठे प्राप्त करें.
यानी डाक खर्च भी हम देंगे.

राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
2/38 अंसारी रोड, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहरीले नश्तर की याद

□ अलका पांडे

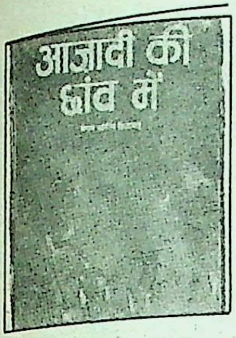

'आजादी की छांव में' : बेगम अनीस किदवाई
हिंदी अनुवाद : नूरनबी अब्बासी
प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली.
मूल्य : पैंतीस रुपये.

'आजादी की छांव में' बेगम अनीस किदवाई की एक ऐसी कृति है जो लंबे रिपोर्ताज की शक्ल में समूचे समय को एक जिम्मेदार नजर से प्रस्तुत करती है. इस रूप में यह उस इतिहास लेखन के करीब भी है कि जिसे पढ़कर समय की तस्वीर आंखों के सामने हू-ब-हू खिंच आती हैं. सन् 1947 के शुरुआती दौर से ही दंगों की खबर के जिक्र से शुरू होने वाली यह किताब दरअसल इतनी पठनीय और प्रभाव पूर्ण है कि पढ़नेवाला घटनाओं के जाल में बंधा महज पढ़ता ही नहीं चला जाता... बल्कि ठहरकर उन सूत्रों के बारे में भी सोचने को विवश हो जाता है जो इंसानियत को बरबाद करके रख देने के लिए भारत की धरती पर जड़ें जमा रहे थे. यह वह समय था जब आजादी हासिल होने को थी, हासिल हुई भी... पर कैसा रहा होगा वह मंजर जब लोगों को जबरन खुश होने की कोशिश करनी पड़ी होगी! आजादी के तुरंत बाद ही, एक पखवाड़े के भीतर हुए दिल्ली के दंगे, शफी अहमद किदवाई (जो तब मसूरी में थे) की शहादत, गांधीजी के हुजूर में और मुस्लिम पनाह गुजीनों के कैंपों की आंखों देखी खबर देते हुए लेखिका जिस तरह उस वक्त की अव्यवस्थित व्यवस्था का जिक्र करती हैं उससे यह जाहिर हो जाता है कि आजादी की खुशी की छांव में किस तरह, कितनों की खुशियां दम भी तोड़ रही थीं. लावारिस बच्चों का जिक्र हो या कब्रिस्तानी माहौल में कव्वाल की अदा, भाईचारा कायम करने के लिए समझदारों द्वारा किये गये प्रयत्न हों या भगायी गयी लड़कियों की दास्तान, राजनीतिक उठा-पटक और पैंतरेबाजी हो या अफवाहों का बाजार, काम करनेवालों की मुश्किलें हों या 'ऊ खेशतन गुमस्त कि रा रहबरी कुनद' (यानी जब खुद ही गुमराह हो गये तो दूसरों को भला क्या दिखायेंगे राह) की स्थिति... बेगम अनीस किदवाई की कलम का कमाल ही है कि दम साधे पाठक किताब के सफों के साथ बढ़ा चला जाता है. हिंदी के पाठकों को नूर नबी अब्बासी साहब का शुक्रिया अदा करना चाहिए कि इतनी मेहनत और संलग्नता से इस किताब का अनुवाद उन्होंने किया. मौजूदा हालात को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि नेशनल बुक ट्रस्ट ने इस किताब का प्रकाशन बहुत जरूरी समय पर किया है. यह किताब हमें न केवल निकट अतीत से जोड़ती है... बल्कि हमारी उन ऐतिहासिक भूलों को भी बेनकाब करती है... जिनके चलते देश कई दशक पीछे चला गया था. स्थितियां आज फिर वही हैं... क्यों न हम इस किताब के चीखते शब्दों की आवाज सुनें! □

नंबर दो का दिल

नंबर दो का दिल : गोपाल शेखरन
प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन
मूल्य : पचास रुपये

उपन्यास का कथानक ऐसे व्यक्ति के पतन का है जो जिंदगी के शुरूआती दौर में आदर्शवादी रहा है. नायक, विशाल, महत्वाकांक्षी है, लेकिन उसके पास न तो असाधारण प्रतिभा है और न ही धन जिससे वह अपना मनोवांछित पा सके. कुछ भी न पा सकने की हीन भावना भ्रष्ट समाज में उसे नैतिक पतन के मार्ग पर उस समय धकेल देती है जब वह संयोगवश बिक्री कर इंसपेक्टर बन जाता है. इसके बाद शुरू होता है झूठ, फरेब, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, चापलूसी का वह सिलसिला जिसमें विशाल पैसा कमाने की मशीन बन जाता है. वह पुत्र है न पति, भाई है न दोस्त है... महज बिक्री कर इंसपेक्टर है. सारे मानवीय संबंधों को वह पैसे से ही तौलता है. इस चक्र के चलते कभी उसकी आत्मा धिक्कारती भी है तो उसकी आवाज़ सफलताओं की गड़गड़ाहट में दब जाती है. नंबर दो का पैसा उसके दिल और दिमाग दोनों को पंगु बना देता है.

'नंबर दो का दिल' का कथानक भ्रष्टाचार और अय्याशी से घिरे हुए नायक के आसपास घूमता है. आदमी के पतन का निकृष्टतम रूप लेखक ने इसमें दिखाया है. किसी व्यक्ति के अंदर से नैतिक मूल्यों का क्रमशः समाप्त होते चले जाना सिर्फ उसी व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि सारे समाज के लिए खतरनाक है. उपन्यास में यही ध्वनित होता है कि इसके लिए पूरा समाज, अर्थ व्यवस्था शासन तंत्र सभी कुछ जिम्मेदार है. लेखक ने व्यक्ति और समाज के अंदर खत्म होती हुई मानवीयता की ओर इशारा किया है. उपन्यास पढ़ते हुए बेचैनी-सी बनी रहती है. व्यक्ति और समाज के अधःपतन का जैसे का तैसा चित्रण सीधी-सपाट शैली में है अतः रोचकता नहीं रह पाती. सामाजिक आदर्शों के ढकोसलों का जो चित्रण उसमें है इसमें अपनी शक्ल तो दिखायी पड़ती है, किंतु साथ ही उपन्यास के अंत तक मानसिक असुरक्षा हर समय घेरे रहती है. उपन्यास में उस संघर्ष के लिए कतई प्रेरणा नहीं मिलती जो विषम परिस्थितियों में जूझने का साहस दे और जीवन मूल्यों को बचाने के लिए मनोबल भी दे. घटनाओं का यथातथ्य विवरण एवं एकरसता उपन्यास को ज्यादा प्रभावी नहीं बनने देते. प्रारंभ में कथानक और अलग-अलग चरित्रों की आवाजाही बांधे रखती है पर बाद में जल्दी-जल्दी एक के बाद एक दृश्य बदलने से नाटकीयता अधिक आ गयी है. भ्रष्टाचार के हथकंडों की सजीव प्रस्तुति यहां है. विशाल और आरती के प्रेम प्रसंग भी चुटीलेपन के कारण रोचक हैं. उपन्यास में दो प्रमुख नारी चरित्र हैं—नायक विशाल की पत्नी आरती और विशाल से आर्थिक और शारीरिक संबंध रखने वाली विधवा औरत पम्मी. दोनों चरित्र विशाल के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं. अंत में पत्नी आरती के महान त्याग के बावजूद दोनों सशक्त नहीं बन पाए. इस सबके बाद भी उपन्यास आज की दुनिया से निकला हुआ है इसीलिए हमें अपने आसपास आंख खोलकर देखने और खुले दिमाग से सोचने के लिए आगाह तो करता ही है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों के अर्थ को आप पहुंचाना कहां तक चाहते हैं?

'लेखकीय स्वतंत्रता पर मीडिया के दबाव' विषय को केंद्र में रखते हुए '**साहित्यिकी**' के तत्वावधान में एक दिवसीय विचार संगोष्ठी प्रबुद्ध वक्ताओं व उत्साही श्रोताओं की उपस्थिति के कारण चर्चा का विषय बनी रही. दो सत्रों में विभाजित यह संगोष्ठी, पहले सत्र से ही, विचारोत्तेजक चर्चा के साथ आगे बढ़ी. **डा. रणधीर रांग्रा** के स्वागत भाषण के बाद **डा. मोतीलाल जोतवाणी** व **चित्रा मुद्गल** ने आलेख पाठ किया. मोतीलाल जोतवाणी का कहना था कि जो लेखक दबाव में न आकर स्वतंत्र लेखन करते हैं, उन्हें फर्क नहीं पड़ता. दबाव को महसूस करते हुए भी वे उसके प्रभाव से अपने को बचा ले जाते हैं. रास्ता यह लंबा सही, पर है सही रास्ता. चित्रा मुद्गल का आलेख दृश्य माध्यमों से उत्पन्न खतरे को रेखांकित कर रहा था. प्रकाशन माध्यम में तो विकल्प हैं भी पर दृश्य माध्यम ऐसी छूट नहीं देता. क्या अपने शोषण के विरोध में हिंदी के लेखक एकजुट हुए हैं? जो अपने प्रति हो रहे शोषण का विरोध नहीं कर सकते वे जन-मानस के शोषण के विरुद्ध क्या आवाज उठाएंगे!

विषय प्रवर्तन करते हुए **जोगिंदर पॉल** ने कहा लिखने वाला वही लिखता है जिसे समाज डिजर्व करता है. कहानी तो संघर्ष से ही बनती है, यदि क्राइसिस है ही नहीं तो लिखना क्या! अखबारों में साहित्य को 'फिलर' बतौर इस्तेमाल किये जाने का उन्होंने विरोध किया. **डा. नरेंद्र कोहली** ने स्पष्टतः कहा कि खतरा मीडिया से नहीं, उसमें काम कर रहे अक्षम लोगों से है. प्रचार प्रसार से अलग रहकर साहित्यकार को सृजनरत रहना चाहिए. स्वतंत्र यदि रहना चाहता है लेखक, तो उसे मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा. **हिमांशु जोशी** ने इस बात पर जोर दिया कि मीडिया चूंकि सार्वजनिक होता है अतः उसे व्यक्ति हित में काम करना चाहिए. शॉर्टकट संस्कृति से साहित्य का अवमूल्यन होता है. इतना समर्थ हमने स्वयं को नहीं बनाया कि हम अपनी शर्तों पर जी सकें. **डा. कमल किशोर गोयनका**, **कांति चंद्र सौनरिक्सा** और **पद्मा सचदेव** ने भी अपने विचार व्यक्त किये.

सत्र के अध्यक्ष **डा. रामदरश मिश्र** ने दूरदर्शन को प्रभावी माध्यम बताया. पत्र-पत्रिकाओं के साथ लेखक का पूरा सरोकार बताते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि इस रूप में तो लेखक स्वतंत्र है ही कि वह अपनी रचना दृश्य या श्रव्य माध्यम के दे या न दे. अतः वह दबावमुक्त है.

भोजनोपरांत दूसरा सत्र प्रारंभ हुआ **डा. मस्तराम कपूर** के आलेख से. लेखकीय स्वतंत्रता के वर्तमान अर्थ को प्राचीन काल की अवधारणा से अलग स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सतत यातना को सहना हर किसी के वश का नहीं होता. लेखक, चिंतक व कलाकार की भूमिका के महत्व को रेखांकित करते हुए डा. कपूर ने रेडियो, टी.वी. व फिल्म के साहित्य का माध्यम न होने की बात सामने रखी. उनका कहना था, साहित्य लिखित शब्द का माध्यम है. बाजारू संस्कृति में साहित्यकार अपनी अस्मिता की रक्षा कैसे करेगा! दूसरा आलेख **मनमोहन चड्ढा** का था. उनका कहना था कि पिछले कुछ वर्षों में रचनात्मक लेखन पर टेलीविजन का दबाव बढ़ता ही जा रहा है. उन्होंने दृश्य श्रव्य माध्यमों के भीतरी अंतर को समझने की जरूरत पर भी बल दिया. महत्वपूर्ण बात उन्होंने यह सामने रखी कि हिंदी का रचनात्मक लेखन तभी जीवित रह सकता है जब विश्व के रचनात्मक लेखन के पैमाने पर खुद को तोलता रहे. एक संपूर्ण रचनात्मक विधा को घटिया करार दे देने वाले रवैये की भी उन्होंने निंदा की. विधा विशेष को अछूत या अपने स्तर से नीचा मानकर चलने का भी विरोध करते हुए उनका कहना था कि इससे हम समाज से कटते चले जायेंगे. विषय प्रवर्तन करते हुए **सुधीश पचौरी** ने मीडिया को सामाजिक प्रक्रिया के पर्याय के तौर पर समझने को कहा. उनका कहना था कि संस्कृति की कोई भी बातचीत माध्यम से कटकर नहीं की जा सकती. आप इस मीडिया को पुराने ढंग से नहीं भरमा सकते. **चिरंजीत** ने कहा कि कौन लेखक है जिसकी स्वतंत्रता पर चोट हो रही है! 'दूरदर्शन को तीसरी दुनिया पर थोपा गया है' कहना भी सही नहीं है.

ब्रजेश्वर मदान ने इस खतरे की ओर संकेत किया कि मीडिया का पूर्ण स्वीकार कहीं उपभोक्तावाद का स्वीकार तो नहीं है! फोक कल्चर पर टेक्नोलॉजी के दबाव को भी उन्होंने स्पष्ट किया. लेखक की स्वतंत्रता को अलग से देख पाने में उन्होंने असमर्थता जाहिर की. वे इस बात पर जोर दे रहे थे कि दूरदर्शन से डरने की जरूरत नहीं है. प्रदीप पंत ने लेखक के लिए प्रिंट मीडिया को सबसे बड़ा मीडिया बताते हुए कहा कि लेखकीय स्वतंत्रता का हनन भी वहीं ज्यादा होता है.

वक्ताओं के वक्तव्यों का गंभीर व संक्षिप्त सार प्रस्तुत करते हुए संगोष्ठी के संचालक **सुरेश उनियाल** ने अंत में दूसरे सत्र के अध्यक्ष कमलेश्वर को आमंत्रित किया.

कमलेश्वर ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भाषा को समझने की सलाह देने के साथ-साथ ही कहा कि लेखक चाहे तो वह किताबों के कब्रिस्तान में दफन हो सकता है. साहित्य में बौद्धिकता के बढ़ाव को उन्होंने गलत और अहितकर बताया. उनका कहना था कि इस तंत्र में लड़ाई शब्दों की नहीं है... सवाल यह है कि आप शब्दों के अर्थ को कहां तक पहुंचाना चाहते हैं. क्या आपने लिखने की आजादी अब तक अर्जित की है... माध्यम का इस्तेमाल हम करना नहीं चाहते... सीखना नहीं चाहते... यह माध्यम आपके लिए रुकेंगे नहीं! आते हुए औद्योगिकरण को एक जागरूक लेखक के रूप में हमें समन्वित करना होगा. अभी ये माध्यम क्रियेटिव नहीं हैं. उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दूरदर्शन को शब्दों के इस्तेमाल की तमीज लेखक ही देंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा लेखक समीक्षक सम्मेलन

बिहार की राजधानी पटना से लगभग चालीस कि.मी. पूरब स्थित रा.उ. विद्यालय, फतुहा (पटना) के प्रांगण में 13 एवं 14 अप्रैल, 1990 को महान कथाशिल्पी अमृत लाल नागर को समर्पित तृतीय 'अ.भा. लघुकथा लेखक-समीक्षक सम्मेलन 1990' का भव्य आयोजन किया गया.

सम्मेलन का उद्घाटन 'सारिका' के संपादक अवधनारायण मुद्गल द्वारा दीप जलाकर संपन्न हुआ. इस अवसर पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए अवध नारायण मुद्गल ने कहा, "वर्तमान में लघुकथा का कोई प्रवक्ता नहीं है, यही कारण है कि लघुकथा एक लंबी यात्रा तय करने के पश्चात् भी हाशिये पर जी रही है. आगे उन्होंने कहा कि मैं 'सारिका' के द्वारा इस विधा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास कर रहा हूं. पहले भी 'सारिका' में लघुकथाएं प्रकाशित होती रही हैं, जब कमलेश्वरजी इसके संपादक थे.

उद्घाटन के पश्चात् श्री मुद्गल द्वारा लघुकथा संबंधी कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों का विमोचन किया गया. विमोचन के बाद अ.भा. प्रगतिशील लघुकथा मंच के महासचिव डा. पुष्करणा ने अपने स्वागत भाषण में कहा, "हमारा प्रयास व्यर्थ के विवादों को जन्म देना नहीं, बल्कि व्यर्थ के विवादों को मिल-बैठकर सार्थक विचारों के आदान-प्रदान द्वारा समाप्त करके लघुकथा को एक सही दिशा देना है."

इस सत्र में जहां मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथि पद की जिम्मेवारी को क्रमशः डा. कमल किशोर गोयनका एवं जिया लाल आर्य तथा प्रो. निशांतकेतु ने निभायी, वहीं अध्यक्ष पद को सुशोभित किया डा. भगवतीशरण मिश्र ने. धन्यवाद ज्ञापन किया बाबूनंद प्रसाद ने और संचालन से विमुग्ध किया युवा कवि-कथाकार शिवनारायण ने.

द्वितीय सत्र की शुरुआत में डा. पुष्करणा ने 'हिंदी लघुकथा की रचना-प्रक्रिया' विषयक आलेख पढ़ा. पढ़े गये आलेख पर देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आये हुए प्रतिनिधि विद्वानों ने अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की तथा मुद्दों पर सहमति-असहमति भी व्यक्त की. इस सत्र के मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथि पद को गौरवान्वित किया सर्वश्री राजकुमार निजात एवं डा. स्वर्ण किरण ने. अध्यक्ष पद की गरिमा को बढ़ाया शिवेंद्र नारायण (सम्पादक 'ज्योत्स्ना') ने. अपने अध्यक्षीय भाषण में शिवेंद्र नारायण ने कहा, "जब कोई विधा साहित्य की मुख्य धारा से जुड़ने की प्रक्रिया में होती है तो ऐसे समय में सम्मेलनों का महत्वपूर्ण योगदान हुआ करता है." इस सत्र का संचालन युवा आलोचक निशांतर ने किया और धन्यवाद ज्ञापन बांके दास ने.

तृतीय सत्र में प्रतिष्ठित एवं नवोदित लेखकों ने अपनी-अपनी प्रतिनिधि लघुकथाओं से श्रोताओं को बेहद प्रभावित किया. इस सत्र का संचालन युवा कथाकार रामयतन प्रसाद यादव ने किया तथा पढ़ी गयी लघुकथाओं पर समीक्षात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की डा. स्वर्ण किरण ने. सम्मलेन के चतुर्थ सत्र में युवा आलोचक निशांतर ने 'समकालीन लघुकथा की प्रवृत्तियां' शीर्षक आलेख पढ़ा. पठित आलेख पर जमकर बहस हुई जिसमें अनेक रचनाधर्मियों एवं समीक्षकों ने हिस्सा लिया. इस सत्र में मुख्य वक्ता का दायित्व डा. स्वर्ण किरण ने पूरा किया. किंतु महेंद्र जायसवाल के विचारों ने श्रोताओं को बेहद प्रभावित किया. इस सत्र के अध्यक्ष प्रो. निशांतकेतु ने ऐतिहासिक महत्व के अपने भाषण में बहुत ही विद्वता व शालीनता से मुख्य वक्ता डा. स्वर्ण किरण द्वारा लघुकथा में स्थापित मान्यताओं की नींव को जड़ से हिलाकर रख दिया. इस सत्र का सफल संचालन डा. पुष्करणा ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन की औपचारिक्ता का निर्वाह करते हुए डी.के. राय ने कहा, "लघुकथा की रचना प्रक्रिया, उसकी प्रवृत्तियां तथा अन्य अनेक शास्त्रीय पहलुओं पर आज प्रोफेसर निशांतकेतुजी ने जो विचार व्यक्त किये हैं उससे निसंदेह रचनाधार्मियों की काफी लाभ होगा."

इस सत्र की समाप्ति के तुरंत बाद पंचम सत्र की शुरुआत हुई जिसमें डा. सतीशराज पुष्करणा के संपादन में प्रकाशित वृहद लघुकथा संकलन 'कथादेश' की लघुकथाओं पर खुलकर चर्चा हुई. इस सत्र के मुख्य वक्ता राधिकारमण अभिलाषीजी ने कहा, "कथादेश एक मानक लघुकथा ग्रंथ है. इसके अध्ययन से निश्चय ही रचनाधार्मियों को काफी लाभ पहुंचेगा." पंचम सत्र का संचालन निशांतर ने तथा धन्यवाद ज्ञापन डा. ए.के. सुमन ने किया.

इस भव्य सम्मेलन का समापन सत्र रात्रि के आठ बजे से प्रारंभ होकर एक बजे तक चला. इस सत्र में पूर्णियां के ख्यातिलब्ध हास्य कवि डा. परमेश्वर गोयल की अध्यक्षता में एक भव्य कवि सम्मेलन हुआ जिसमें इस सत्र के उद्घाटन कर्त्ता डा. तेजनारायण कुशवाहा तथा भागलपुर के ही महेंद्र जायसवाल, सुनिल कौशिक, अनिरूद्ध प्रसाद विमल, विक्रमादित्य विहंगम, पाकुड़ के इ. केदारनाथ, मुंगेर की श्रीमती सुशीला सितारिया, पाकुड़ की श्रीमती आशा किस्कू एवं अर्जून मंडल अनुरागी, सिरसा के राजकुमार निजात, चुनार के रामदुलार सिंह 'पराया' पटना के सिद्धेश्वर, निशांतर एवं डा. पुष्करणा तथा जमालपुर के विनोद कुमार आदि ने अपनी कविताओं, गजलों और गीतों की सरस फुहार से श्रोताओं के मन को सराबोर कर दिया. इस सत्र का संचालन युवा शायर कासिम खुरशीद ने किया. अंत में धन्यवाद ज्ञापन तृतीय अखिल भा. लघुकथा लेखक समीक्षक सम्मेलन 1990 के संयोजक रामयतन प्रसाद यादव ने किया. छः सत्रों में विभक्त इस सम्मेलन में राजकुमार चौधरी के सौजन्य से 'लघुकथा पोस्टर प्रदर्शनी' और अयन प्रकाशन द्वारा 'पुस्तक प्रदर्शनी' का आयोजन भी किया गया. □

□ रामयतन प्रसाद यादव

कहानी की दशा-दिशा

□ कृष्ण कुमार

राजस्थान की प्रमुख साहित्यिक संस्था भारतेंदु समिति (कोटा) की ओर से बिहार के चर्चित हिंदी कथाकार रामधारी सिंह दिवाकर का सम्मान किया गया. इस अवसर पर 'समकालीन हिंदी कहानी की दशा-दिशा' विषय पर विचार गोष्ठी आयोजित की गयी. विषय प्रवर्तन समिति के साहित्य मंत्री प्रुरुषोत्तम पंजोली ने किया. परिचर्चा को आगे बढ़ाते हुए प्रो. कृष्ण कुमार ने समकालीन हिंदी कहानी की इस विडंबना की ओर संकेत किया जिसमें दो-चार कहानियां लिखकर नये लेखक स्वयं को स्थापित मानने लगते हैं. दलगत राजनीतिक दृष्टि को उन्होंने साहित्य मात्र के लिए घातक बताया. स्थानीय कवि व आलोचक महेंद्र नेह ने किंचित प्रतिवाद करते हुए कहा कि बिना स्पष्ट दृष्टि और तत्ववादी चिंतन के अच्छी कहानियां लिखी ही नहीं जा सकतीं. कहानी का कंटेंट यदि राजनीतिक है तो कहानीकार की राजनीतिक विचारधारा का होना भी आवश्यक है. लगभग आधे दर्जन अन्य वक्ताओं ने रचना और विचारधारा पर अपने-अपने विचार व्यक्त किए. ऐसा लगा, जैसे समकालीन हिंदी कहानी की दशा-दिशा पर आधारित 'विचार गोष्ठी' हिंदी कहानी और राजनीतिक विचारधारा पर केंद्रित हो गयी.

मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए समकालीन हिंदी कथा के ख्याति प्राप्त हस्ताक्षर रामधारी सिंह दिवाकर ने समकालीन हिंदी कहानी की प्रवृत्तियों पर विस्तार से चर्चा की. गुलशननंदावादी प्रवृत्ति को उन्होंने व्यावसायिक प्रवृत्ति बताया और कहा कि यह प्रवृति फार्मूलावादी गौण धारा है. लाल कहानियों की समाप्त प्राय प्रवृति के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने ऐसी कहानियों मे जीवनाकांक्षा की दहकती आग को स्वीकार किया. इस संदर्भ में उन्होंने काफ्का, सार्त्र और खासतौर से लैटिन अमरीकी लेखक मार्क्वेज के प्रभाव से लिखी जानेवाली जादुई यथार्थवाद की कहानियों की चर्चा करते हुए प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' और क़िस्फेट कहानियों की विशेष रूप से चर्चा की और कहा कि लगभग तमाम कथारूपों की कहानियां लिखनेवाले प्रेमचंद ने कहीं भी अपने को जादुई यथार्थवाद का लेखक नहीं कहा.

जनसंघर्षों से जुड़ी समकालीन हिंदी कहानी की वामपंथी धाराओं-उपधाराओं के विमाजन को दिवाकर ने दलगत विमाजन से दूर रखने पर जोड़ दिया. समकालीन यथार्थ के प्रवक्ता और कलाकार को और कलाकार को युग यथार्थ का प्रवक्ता होना चाहिए. कोटा के ऐतिहासिक चंबल उद्यान में आयोजित उक्त संगोष्ठी में अध्यक्ष पद पर बोलते हुए डा. प्रेमचंद वर्गीय ने शाश्वत मानव मूल्यों और यथार्थ वादी युग सत्य के बीच संतुलन बनाए रखने पर जोर दिया □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

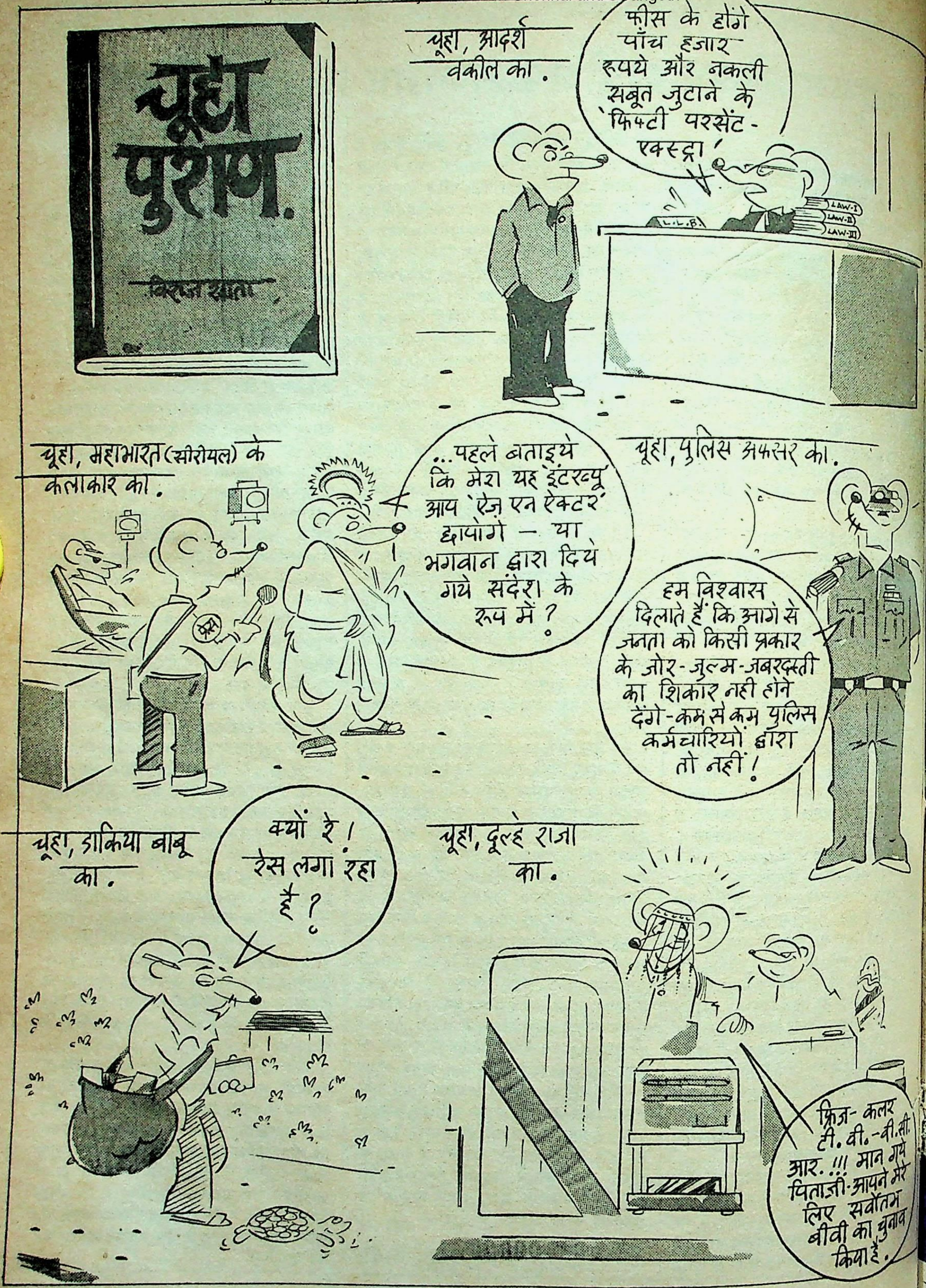

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैनेट कोलमैन एंड कं. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेश चन्द्र [illegible] नौरोजी रोड, बम्बई-400001. शाखाएं. 7 बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139 आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7 ए. एस.एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014; एस.एंड.बी. टावर्स, 88, महात्मा गांधी रोड, बंगलोर-560001; 8-9 अनुपम चेम्बर्स, टोंक रोड, जयपुर- 302004.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

...शुल्क के बिना डाक में डालने
...अनुमति सं. U-89
RNI No. 6254/60
Regn. No. KRN/BG...
RJ 2954
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar